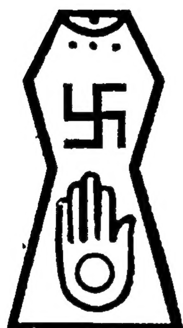
मंगल स्तोत्र



परस्परोपग्रहो
जीवानाम्

सौजन्य

रिखबचंद सोनावत
भीनासर (बीकानेर)
फोन 0151-2271091

पुस्तक : मगल स्तोत्र

सकलन सपादन : चैनरूप भूरा

प्रकाशक : रिखबचन्द सोनावत
भीनासर (बीकानेर)
फोन 0151-2271091

मुद्रित प्रतिया : 1000

प्रथम अनावरण : नवम्बर, [illegible]

द्वितीय अनावरण (सशोधित, परिवर्द्धित) . जनवरी, [illegible]

मुद्रक : सुराणा उद्योग,
बी-7 रीको रोड न. 1, रानी बाजार
औद्योगिक क्षेत्र, बीकानेर फोन 2541207

मूल्य : 21 रु.

प्राप्ति स्थान

रिखबचंद सोनावत

भीनासर (बीकानेर) फोन : 0151-2271091

जय महावीर

जय गुरु नाना

जय गुरु राम

जीवन का हर कण-कण

जिनकी कृपा किरण से

अनुप्राणित

है

उन्ही

श्रीवाल प्रतिबोधक शास्त्रज्ञ

तपःपूत व्यसन मुक्ति के प्रणेता

शासन गौरव

१००८ आचार्य प्रवर

श्री रामलाल जी म. सा.

के

सच्चरणों में

मंगल स्तोत्र

सादर समर्पित

जय गुरुनाना जय महावीर जय गुरुराम

परम श्रद्धेय आचार्य श्री रामेश की 51वी

जन्म जयन्ति पर शत शत वन्दन अभिनन्दन

मुमुक्षु श्री मनीषजी समदड़िया के जैन भागवती दीक्षा उपलक्ष्य मे

सप्रेम भेंट : रिखब चन्द धापू देवी सोनावत

प्राक्कथन

इस यात्रिक युग मे चहु ओर अशाति का वातावरण परिलक्षित हो रहा है। मानसिक सघर्ष भी दिन-प्रतिदिन उत्तरोत्तर प्रबल होता जा रहा हे। सघर्ष और अशाति के विषम प्रवाह मे झूलता मानव आज इतना तनावग्रस्त हो चुका है कि जिसका निदान खोजना वर्तमान अनुसन्धित्सु के लिए अशक्य हो रहा है, क्योकि अशाति का कारण भीतर है और उसे बाहर खोजा जा रहा हैं।

ऐसी स्थिति मे यह स्वाभाविक है कि शाति और सतोष के नये आयाम की खोज किस प्रकार की जाए? जैन सस्कृति मे ध्यान योग का महत्त्वपूर्ण स्थान हे, अगर मनुष्य ध्यान योग मे पूर्णतया निमज्जित हो।

भगवान् महावीर अपने साधनाकाल मे अधिकतर ध्यानस्थ एव मोनरथ ही रहे। उनके निर्वाण के बाद हरिभद्रसूरि आदि जैनाचार्यो ने जेन योग साधना को अपनाया। भद्रबाहु स्वामी ने महाप्राण ध्यान की साधना की, आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, जिनभद्रगणि, देवनदि आदि ने भी ध्यान योग का विशद वर्णन किया। ये उनके ग्रन्थ अवलोकन से ज्ञात हो सकता है।

वीतराग धर्म के उपासक होने से हमारा मुख्य ध्येय मोक्ष है और मोक्ष का अभिलाषी, राग द्वेष रहित जिनेश्वर देव के अलावा अन्य देवो की उपासना मुक्तिदाता समझ कभी भी नही करता, फिर भी कुछ लौकिक सुख के अभिलाषी जीव, स्वहित के साथ परमार्थ साध सके इस हेतु अन्योन्य स्तोत्रो की रचनाए पूर्वाचार्यो ने की है।

प्रस्तुत कृति मगल स्तोत्र मे पूर्व जैनाचार्यो द्वारा परिस्फुटित निर्झरिणी हे, जिनमे प्रवाहित है उनकी पीयूष वाणी। इसमे अवगाहन कर कोई भी साधक व पाठक चेतना का ऊर्ध्वारोहण करने मे समर्थ हो सकता हे। आवश्यकता हे अपने भीतर की सुषुप्त चेतना को जागृत करने की, जडता को भगा और क्रोध, मान, मोह, राग-द्वेष, ममत्व की ग्रन्थिया तोड निर्ग्रन्थता की ओर अग्रसर होने की।

पूर्वाचार्यो के द्वारा गुम्फित स्तोत्रो को शब्दार्थ-भावार्थ सहित आपके समक्ष प्रस्तुत करने की धृष्ठता इसी मगल भावना से की है कि श्रद्धालु साधक अपने क्ष्यो से लाभान्वित हो सके। पुस्तक के प्रकाशन मे शुद्धता का ध्यान रखा गया है, फिर भी मानव गत त्रुटि के कारण मुद्रण मे किसी भी प्रकार की गलती के लिय मै अपने पाठको से विनम्र क्षमायाचना करता हू। प्रस्तुत कृति के सकलन सम्पादन मे सहयोगी महापुरुषो, चरित्र आत्माओ का भी आभार प्रकट करता हू और आशा करता हू कि भविष्य मे भी मुझे इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहगा।

चनन्प भृग

अर्थ सहयोगी एक परिचय

प्रस्तुत कृति "मगल स्तोत्र" का प्रकाशन धर्म सघ समर्पित, उदारमना, शासननिष्ठ सुश्रावक स्व श्री सूरजमल जी सोनावत के सुपुत्र श्री रिखबचन्द जी सोनावत, धापूदेवी सोनावत धर्मपत्नी श्री रिखबचन्द जी सोनावत निवासी भीनासर द्वारा प्रदत्त अर्थ सहयोग से किया है। "मगल स्तोत्र" के प्रथम सस्करण का प्रकाशन भी पूर्व मे सोनावत परिवार के आर्थिक सौजन्य से किया गया। सत्साहित्य प्रकाशन व समाज सेवा मे समर्पित सोनावत परिवार की भूमिका सदा समाज सेवा मे अग्रणी रही है। आपका सम्पूर्ण परिवार परम श्रद्धेय आचार्य श्री रामलालजी म सा के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ है।

सुश्रावक श्री रिखबचन्द जी सोनावत सरलता, सादगी व सहजता की प्रतिमूर्ति रूप मे जीवन व्यतीत करते हुए, धर्माचरण को सदैव प्राथकिता देते है। प्रतिदिन प्रवचन श्रवण से लाभान्वित होते हुए व 2-3 सामायिक साधना करना आपका अनिवार्य अग है।

वैसे ही सुश्राविका श्रीमती सोनावत का जीवन भी साधु-साध्वियो के प्रति कम महत्त्वपूर्ण नही है। सामायिक साधना, व्रत पच्चक्खाण व प्रतिदिन प्रवचन सुनने मे सदैव अग्रसर रहना आपक विशेष अग है। इनका सम्पूर्ण जीवन धार्मिक सस्कारो से ओतप्रोत है।

जैन जगत के महान् स्तोत्रो का यह द्वितीय सस्करण सोनावत परिवार के अर्थ सहयोग से प्रकाशित होकर स्वाध्यायी पाठको के हाथो मे प्रस्तुत करते हुए अति प्रसन्नता अनुभव हो रहा है। महान स्तोत्रो के पठन से भव्य प्राणी अपने जीवन का उत्थान करेगे तभी प्रकाशक के प्रकाशन की सार्थकता सिद्ध होगी। इन्ही शुभ कामना से।

अर्थ सहयोग के लिए सोनावत परिवार के प्रति आभार।

चैनरूप भूरा

अनुक्रमणिका

: परमेष्ठि महिमाष्टक :

य. सर्व दु:ख दलने किल कल्पवृक्ष:,
चिन्तामणि: शुभ मनोरथ पूरणे स:।
कन्दर्प दर्प दहनैक विधौ दवाग्नि.,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ।।1।।

शब्दार्थ–**सर्व दु ख दलने**=समस्त दु खो को नष्ट करने मे, **य: किल कल्पवृक्ष**=जो सचमुच कल्पवृक्ष है, **स शुभ मनोरथ पूरणे**=शुभ कामनाओ को पूर्ण करने मे वह, **चिन्तामणि.**=चिन्तामणि है, **कन्दर्प दर्प दहने**=कमारूपी दर्प को जलाने मे, **एक विधौ दवाग्नि**=एक प्रकार का दावानल है, **लोकत्रये विजयते**=त्रिभुवन विजयी, **परमेष्ठि मंत्र**=परमेष्ठि महामत्र नमस्कार है।

भावार्थ–समग्र दु खो को नष्ट करने मे जो सचमुच कल्पवृक्ष रूप, शुभ चिन्तन सकल्पो को पूर्ण करने मे चिन्तामणि, काम रूपी दर्प को जलाने मे दावानल है, ऐसा इच्छित फलदाता परमेष्ठि महामत्र नवकार त्रिजगत विजित है।

सर्वागम श्रुतसमुद्र सुधेन्दु सारा.,
चारित्र चन्दन वनं सदन सुखानाम्।
कल्याण कुन्दन खनिर् दमन दराणा,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ।।2।।

शब्दार्थ–**सर्वागम श्रुत समुद्र**=सम्पूर्ण आगमो का श्रुत रूपी समुद्र, **सुधेन्दु सारा**=चन्द्रकला सदृश सारभूत, **चारित्र चन्दन वनं**=चारित्र रूपी चन्दन वन, **सुखानां सदनं**=सुखो का भवन, **कल्याण कुन्दन खनि**=आत्मोद्धार के स्वर्ण खदान के, **दराणा दमन**=छिद्रो को रोकने वाला, **परमेष्ठि मत्र. लोकत्रये विजयते**=परमेष्ठि महामत्र त्रिलोक मे विजित है।

भावार्थ–समस्त आगमो के श्रुत ज्ञान का जो सागर, चन्द्रकला सम सारभूत, चारित्र रूप चन्दन वन है, सुखो का भव्य भवन है, आत्म रूप विशुद्ध स्वर्णखान के छिद्रो को रोकने वाला परमेष्ठि महामत्र त्रिजगत मे विजयशील है।

संसार सागर निमज्जद-पूर्व नौका,
सिद्धौषधिर् विविध रोग विनाशनेय ।

नि.शेष लब्धि बल बोध तरोश्च बीजं,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ।।3।।

शब्दार्थ–**संसार सागर निमज्जद**=संसार सागर मे डूबने वालो के लिए, **अपूर्व नौका**=अद्‌भुत नैय्या-बेडा, **विविध रोग विनाशने**=नाना प्रकार के रोगो को नष्ट करने मे, **य सिद्धौषधिः**=जो अकसीर दवा है, **निःशेष लब्धि बल**=सम्पूर्ण शक्तियो का बल, **बोध तरु. च बीज**=ज्ञान रूपी वृक्ष का बीज है वह, **लोकत्रये विजयते**=त्रिभुवन मे जय प्राप्त, **परमेष्ठि मंत्रः**=परमेष्ठि मत्र है।

भावार्थ–जो ससार सागर मे डूबते हुए के लिए नौकायान है, अनेक प्रकार के रोगो को नष्ट करने मे रामबाण औषधि रूप, जो सम्पूर्ण शक्तियो के बल और ज्ञान वृक्ष के बीज है, ऐसा त्रिभुवन मे विजय प्राप्त परमेष्ठि महामत्र है।

सूर्यः सहस्त्रः किरणैर् हरति तमासि,
सिहो यथा गज गणाश्च नखैर् निहन्ति।
संसार वर्ति दुरितानि तथैष मन्त्र,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ।।4।।

शब्दार्थ–**यथा**=जिस प्रकार, **सूर्यः सहस्त्र किरणै.**=सूर्य हजार किरणो से, **तमांसि हरति**=अधकार को हरता है, **सिंहो**=सिह, **गज गणाश्च नखै निहन्ति**=हस्ति समूह को नखो से मारता है, तथा **एष मन्त्र**=उसी प्रकार यह मत्र, **ससार वर्ति**=ससार मे होने वाले, **दुरितानि**=पाप कर्मो को नष्ट करने वाला, त्रिभुवन विजयी परमेष्ठि महामत्र है।

भावार्थ–जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्त्र किरणो के द्वारा अधकार समूह को हरता है, सिह, करि समूह को नखो से चीर डालता हैं, उसी प्रकार यह परमेष्ठि महामंत्र नवकार ससार मे होने वाले पापकर्मो के समूह को नष्ट करने वाला है, यह तीन लोक मे अजेय-अपराभूत परमेष्ठि महामत्र है।

पद्माकरे रुचिर् रश्मिरि वौषधीशः,
शीघ्र प्रबोधयति निद्रित कैरवाणि।
अन्तः सुषुप्त गुण पद्मदलानि चैव,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मत्र.।।5।।

शब्दार्थ–**पद्माकरे**=तलाब के भीतर **रुचि**=सुन्दर, **रश्मि इव औषधीशः**=औषधियो का स्वामी मानो प्रकाश किरणो से, **निद्रित**=सोए

हुए, **कैरवाणि**=श्वेत कमलो को, **शीघ्र प्रबोधयति**=शीघ्र जगा देता है, **एव च**=और इसी प्रकार **अन्त सुषुप्त**=अन्तकरण मे सोए हुए, **गुण पद्म दलानि**=गुण रूपी कमलदल को विकसित करने वाले **परमेष्ठि मत्र लोकत्रये विजयते**=तीन जगत मे विजय पाता है।

भावार्थ–सरोवर मे औषधियो का स्वामी स्वेच्छानुसार मानो अपनी किरणो से सोए हुए श्वेत कमलो को शीघ्र जगा देता है, इसी प्रकार अन्तकरण मे सोए हुए आत्मा के दिव्य गुण रूप कमल दल को विकसित करने वाला परमेष्ठि महामत्र अखिल जगत मे विजय पाता है।

भूमण्डलेषु शुभ वस्तु न विद्यते तद्,
ध्यानेन यस्य ननु यन् न हि साधनीयम्।
दुख न तद भवति यस्य विनाशन नो
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मत्र ।।6।।

शब्दार्थ–**भू मण्डलेषु**=पृथ्वीतल पर, **तद् शुभ वस्तु**=वह शुभ वस्तु, **न विद्यते**=नही है, **यन्**=जो, **यस्य ध्यानेन**=परमेष्ठि महामत्र के ध्यान से, **ननु**=निश्चय, **साधनीय न हि**=साधी नही जा सके, **नो**=हमारे को, **यस्य विनाशन**=जिसके नष्ट होने पर, **तद्**=वह, **न दुख भवति**=दुख नही होता है, **परमेष्ठि मंत्र**=परमेष्ठि महामत्र, **लोकत्रये विजयते**=तीन लोक मे विजय पाता है।

भावार्थ–चौदह राजू प्रमाण अधो, मध्य, उर्ध्व इन तीनो लोक मे ऐसी कोई शुभ वस्तु नही है जिसे परमेष्ठि महामत्र के ध्यान से नही पाया जा सके? जब अतुलनीय असीम शक्तिधारक त्रिलोक विजय प्रदाता परमेष्ठि महामत्र पास मे है, उसे अन्य वस्तुओ के नष्ट होने से दुख नही होता क्योकि परमेष्ठि महामत्र है।

श्रीपाल देवधरणेन्द्र सदुर्शनाद्या,
पल्लीपतिश्च शिव कम्बल शम्बलाद्या
ध्यात्वा हि य पद्मगु परम पवित्र,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मत्र ।।7।।

शब्दार्थ–**श्रीपाल**=श्रीपाल नरेश्वर, **देव धरणेन्द्र**=धरणेन्द्र देव, **सुदर्शन**=सेठ सुदर्शन, आद्या इत्यादि, **पल्लीपति**=डाकुओ का स्वामी, **च शिव**=और शिव, **कम्बल शम्बलाद्या**=कम्बल शम्बल आदि, **परम पवित्रं पद्मगु**=परम पवित्र पदो को, **य ध्यात्वा हि**=ध्यान करके ही जो तिर गए वह, **लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मत्र**=परमेष्ठि महामत्र तीन लोक

मे अपराजेय है।

भावार्थ—श्री पाल नरेश्वर, नागकुमार जाति के देवो का स्वामी धरणेन्द्र, सुदर्शन सेठ, डाकुओ का सरदार, शिव, कम्बल-शम्बल आदि परम पवित्र परमेष्ठि पदो को ध्याकर के तिर गए वह महामत्र परमेष्ठि तीन लोक मे विजय पाता है, सर्वत्र सर्वकालिक दशा मे अपराजेय है।

भक्त्या दधाति हृदि यो ननु मन्त्रराजं,
दिव्यां गतिं व्रजति नूतन मुक्तिं मोदं।
चूर्णी करोति भव संचति कर्म शैल,
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्रः।।8।।

शब्दार्थ—मंत्रराजं=मत्राधिराज नमस्कार महामत्र को, हृदि भत्तया=हृदय मे भक्ति सहित, यो दधाति=जो धारण करता है, ननु दिव्यां गति=निश्चय ही दिव्य गति को, व्रजति=प्राप्त होता है, भव सचति कर्म शैलं=जन्मदायक उपार्जित कर्म रूपी पर्वत को, चूर्णी करोति=चूर्ण करता है, नूतन=नवीन, मुक्ति मोदं=मुक्ति के आनन्द को प्राप्त होता है वह, परमेष्ठि मंत्रः=परमेष्ठि महामत्र, लोकत्रये विजयते=तीन लोक मे विजय पाता है।

भावार्थ—अपराजेय शक्ति धारक मत्राधिराज महामंत्र नवकार को हृदय मे भक्ति भाव से जो धारण करता है, वह अवश्यमेव दिव्य गति को पाता है, जन्म-मरण के हेतु दु ख के मूल कर्म पर्वत को नष्ट कर हे 'नवीन चन्द्र' मुनि वह मुक्ति के आनन्द को प्राप्त होता है। वह परमेष्ठि महामत्र तीन लोक मे विजयशील है।

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठ, अहिसा संजमो तवो।"

धर्म उत्कृष्ट मगल रूप है, जो अहिसा, सयम और तप नीरूपित है। संयम और तप तो उपचार से धर्म हैं, वास्तव मे तो धर्म स्व मे स्थित होना है।

: सिद्ध स्वरूप दर्शन :

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया।
कहि बोन्दिं चइत्ताणं, कत्थ गतूण सिज्झई।।1।।

शब्दार्थ–**सिद्धा कहिं पडिहया**=सिद्ध कहा पर रूकते है, **कहि सिद्धा पइट्ठिया**=कहा सिद्ध स्थित होते है, **कहिं बोन्दिं**=कहा इस शरीर को, **चइत्ताणं**=छोडकर, **कत्थ गतूण**=कहा जाकर, **सिज्झइ**=सिद्ध होते है।

भावार्थ–हे भगवन्! चतुर्गति ससार का अन्त कर निर्वाण को प्राप्त होने वाली सिद्धात्मा किस स्थान पर रूकती है, कहा प्रतिष्ठित होती है, इस शरीर का परित्याग करके वह कहा जाकर सिद्ध होती है?

अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोन्दिं चइत्ताण, तत्थ गतूण सिज्झइ।।2।।

शब्दार्थ–**सिद्धा**=सिद्ध, **अलोगे पडिहया**=अलोक मे जाने से रुक गये, **य लोयग्गे पइट्ठिया**=और लोकग्र भाग मे स्थित है, **इह बोन्दिं चइत्ताणं**=इस नश्वर शरीर का परित्याग करके, **तत्थ**=उस सिद्ध क्षेत्र मे, **गंतूण सिज्झइ**=जाकर सिद्ध होते है।

भावार्थ–हे गौतम! गति मे सहायक धर्मास्तिकाय का अभाव अलोक मे होने से कर्मो को क्षय कर कृत-कृत्य अवस्था प्राप्त करने वाली सिद्धात्माए अलोक मे नही जाकर लोक के अग्रभाग पर ही रुक जाती है, वही स्थित हो जाती है। वह सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होने वाली सिद्ध आत्माए अपने अन्तिम औदारिक देह को यही छोड कर लोकाग्र भाग सिद्ध क्षेत्र मे स्थित हो जाती है।

जं संठाणं तु इहं भवं, चय-तस्स चरिम-समयमि।
आसी य पएसं-घणं, त सठाणं तहिं तस्स।।3।।

शब्दार्थ–**भवं चयं तस्स**=ससार का परित्याग करते समय सिद्ध जीव का, **चरिम समयमि**=अन्तिम समय मे, **इह तु**=इसलोक मे, **जं सठाणं**=जो सस्थान होता है, **तस्स**=उसका, **तं सठाणं**=वही सस्थान, **तहिं**=उस सिद्ध क्षेत्र मे, **पएस घण**=प्रदेश घन रूप, **आसी**=होता है।

भावार्थ–सिद्ध गति को सप्राप्त होने वाले जीवो का अन्तिम देह छोडते समय जो सस्थान मनुष्य लोक मे होता है, वही संस्थान उनका उस

सिद्ध क्षेत्र मे आख कान आदि इन्द्रियो के रिक्त स्थान भर जाने से प्रदेश घन के रूप मे होता है।

दीहं वा हस्स वा जं, चरिम-भवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो त्तिभाग-हीणं, सिद्धा-णोगाहणा भणिया।।4।।

शब्दार्थ—दीहं वा=चाहे सस्थान दीर्घ हो, हस्स वा=अथवा ह्रस्व हो, जं चरिम भवे सठाणं=जो अन्तिम भव का सस्थान होगा, तत्तोतिभाग हीणं=उससे तीसरा भाग हीन, सिद्धाणं ओगाहणा-भणिया=सिद्ध भगवन्तो की अवगाहना कही गई है।

भावार्थ—चाहे मनुष्य की उत्कृष्ट अवगाहना पाच सौ धनुष की अथवा जघन्य दो हाथ की व मध्य सात हाथ की हो, अन्तिम भव के समय जो अवगाहना शरीर की रही है उसका तीसरा भाग ही सिद्धात्माओ की अवगाहना-ऊँचाई सिद्ध क्षेत्र मे रही है।

तिण्णि-सया-तेत्तीसा धणु, त्ति भागो य होइ बोधव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्को-सोगाहणा भणिया।।5।।

शब्दार्थ—तिण्णि सया तेत्तीसा=तीन सौ तेतीस, धणुत्ति भागो य होइ=धनुष तीसरा भाग होता है, बोधव्वा=ऐसा जानना चाहिए, एसा खलु सिद्धाण=यह सिद्ध भगवन्तो की निश्चय, उक्कोस ओगाहणा= उत्कृष्ट ऊँचाई, भणिया=कही गई है।

भावार्थ—एक हाथ, चौबीस अगुल प्रमाण होता है ओर एक धनुप अगुल का होता है। इस अपेक्षा से धनुष का तीसरा भाग बत्तीस अगुल होता है। जिनका शरीर पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला है, उनकी सिद्धावस्था मे तीन सौ तैत्तीस धनुष और बत्तीस अगुल ऊँचाई रूप है। यही सिद्ध भगवन्तो की उत्कृष्ट अवगाहना है ऐसा जानना चाहिए।

चत्तारि य रयणीओ रयणि, तिभागूणिया य बोधव्वा।
एसा खलु सिद्धाण, मज्झिम ओगाहणा भणिया।।6।।

शब्दार्थ—चत्तारि रयणीओ य=चार हाथ ओर, रयणितिभागूणिया=एक हाथ का तीसरा भाग कम, य बोधव्वा=ओर जानना चाहिए, एसा खलु सिद्धाण=यह निश्चय ही सिद्ध भगवन्तो की मज्झिम ओगाहणा भणिया=मध्यम अवगाहना कही गई है।

भावार्थ—सात हाथ की शारीरिक ऊँचाई वाले जो जीव सिद्ध होते है। उन जीवो की चार हाथ सोलह अगुल अवगाहना सिद्ध क्षेत्र मे रहती

है। यही सिद्ध भगवन्तो की मध्यम अवगाहना कही गई है, ऐसा जानना चाहिए।

एक्का य होइ रयणी, साहीया अगुलाइ अट्ठ-भवे।
एसा खलु सिद्धाण, जहण्ण ओगाहणा भणिया।।7।।

शब्दार्थ–**एक्कायहोइरयणीसाहीया**=एक हाथ से कुछ अधिक, **अगुलाइ अट्ठ भवे**=आठ अगुल होती है, **एसा खलु सिद्धाण**=यह निश्चय ही सिद्धो की, **जहण्ण ओगाहणा भणिया**=जघन्य अवगाहना कही गयी है।

भावार्थ–जिनके शरीर की ऊँचाई दो हाथ प्रमाण है, वे जीव जब अपना अन्तिम समय शरीर छोडकर सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं, तब उनकी सिद्धावस्था मे अवगाहना एक हाथ आठ अगुल की रहती है, यह सिद्ध भगवन्तो की सबसे जघन्य अवगाहना है।

ओगाहणाए सिद्धा, भव-त्तिभागेण होइ परिहीणा।
सठाण-मणित्थ-त्थ, जरा-मरण विप्प-मुक्काण।।8।।

शब्दार्थ–**सिद्धा**=सिद्धात्मा, **भव**=अन्तिम भव की, **ओगाहणाए**= अवगाहना से, **त्ति भागेण परिहीणा**=इस प्रकार तृतीय भाग हीन, **होई**= होते है, **सठाण अणित्थत्थ**=उनका आकार-परिमण्डल या यहा के लौकिक आकार का सा नही है, **जरा मरण विप्प-मुक्काण**=जरा और मरण से रहित है।

भावार्थ–सिद्ध स्वरूप मे अवस्थित सिद्ध अपने अन्तिम शरीर की ऊँचाई से तिहाई भाग ही कम है और उनका आकार परिमण्डल आदि लौकिक आकार जैसा नही है। वे जन्म जरा-मरण आदि अवस्थाओ से सर्वथा रहित होते है।

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणता भवक्खय विमुक्का।
अण्णोण्ण समोवगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगन्ते।।9।।

शब्दार्थ–**जत्थ**=जिस क्षेत्र मे, **एगो सिद्धो**=एक सिद्ध है, **तत्थ अणन्ता**=वहा पर अनन्त सिद्ध है, **भवक्खय विमुक्का**=ससार के आवागमन के चक्र से मुक्त, **अण्णोण्ण समोवगाढा**=सिद्धात्माए परस्पर सम्यक्तया अवगाढ रूप मे, **पुट्ठा**=स्पृष्ट होकर, **सव्वे य लोगन्ते**=और सभी लोकाग्र भाग मे रहते है।

भावार्थ–जिस स्थान पर एक सिद्धात्मा है उसी सिद्ध क्षेत्र मे अनन्त

सिद्ध भवो का अन्त करने से रहते है। जैसे एक ही स्थान पर धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य परस्पर एकमेक होकर रहते है, उसी प्रकार समस्त सिद्धात्मा लोक के अग्रभाग सिद्ध क्षेत्र मे एक ही स्थान पर अवगाढ रूप मे एक दूसरे को स्पृष्ट किये रहती है। परन्तु अपने अस्तित्व का परित्याग नही कर भिन्न-भिन्न सत्ता धारण किये रहती है।

फुसइ अंणते सिद्धे, सव्व पएसेहिं णियमसो सिद्धो।
ते वि असंखेज्ज गुणा, देस-पएसेहिं जे पुट्ठा।।10।।

शब्दार्थ—**सो सिद्धो**=वे सिद्ध, **णियमा सव्व पएसेहिं**=नियम से सर्वात्म प्रदेशो से, **अणंत सिद्धे फुसई**=अनन्त सिद्धो का स्पर्श करते हैं, **ते वि असंखेज्ज गुणा**=वे भी असख्यात आत्म प्रदेशो से, **देस पएसेहिं**=देश-प्रदेशो से, **जे पुट्ठा**=जो स्पर्शित है।

भावार्थ—वह सिद्धात्मा नियम से सम्पूर्ण आत्म प्रदेशो के द्वारा अनन्त सिद्ध भगवन्तो का स्पर्श करती है और वे सिद्ध भगवन्त भी असख्यात आत्म प्रदेशो से देश प्रदेशो को स्पर्श किये हुए रहते हैं।

असरीरा जीव-घणा, उवउत्ता दसणे य णाणे य।
सागार-मणागारं, लक्खण-मेयं तु सिद्धाणं।।11।।

शब्दार्थ—**असरीरा जीव घणा**=औदारिक आदि शरीर से रहित घनरूप आत्म प्रदेश वाले, **उवउत्ता दंसणे य णाणे य**=केवल ज्ञान और केवल दर्शन से उपयुक्त है, **सागारं**=केवल ज्ञान से साकार उपयोग वाले, **अणागारं**=केवल दर्शन की अपेक्षा निराकार उपयोग वाले है। **तु एयं** ... **सिद्धाण**=निश्चय ही यह लक्षण सिद्ध भगवन्तो का है।

भावार्थ—शरीर से रहित घन आत्म प्रदेश वाले सिद्ध भगवन्त केवल दर्शन और केवल ज्ञान से सम्पन्न है। वे सिद्ध भगवन्त ज्ञान की अपेक्षा साकार और दर्शन की अपेक्षा निराकार उपयोग वाले होते हैं। यही सिद्ध भगवन्तो का लक्षण है।

केवल णाणुव-उत्ता, जाणंति सव्वभाव गुण भावे।
पासंति सव्वओ खलु, केवल दिट्ठी अणंताहिं।।12।।

शब्दार्थ—**केवल-णाण उवउत्ता**=केवलज्ञान के उपयोग से, **जाणंति सव्व भाव**=जानते है सम्पूर्ण अवस्था पदार्थो की, **गुण भावे**=गुण, पर्याय को एक साथ, **खलु**=निश्चय ही, **केवल दिट्ठीहि**=केवल दृष्टि से, **पासंति**=देखते है, **सव्वओ अणंताहिं**=सब अविनाशी को।

भावार्थ–अनन्त केवलदर्शन से सम्पन्न वे सिद्ध प्रभु अनन्त पदार्थो की गुण पर्याय रूप सर्व अवस्थाओ को देखते है और केवल ज्ञान के उपयोग से एक साथ समस्त भावो को जानते है क्योकि पदार्थो मे, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप गुण त्रैकालिक सम्बन्ध वाले होते है।

णविअत्थिमणुसाण, त सोक्खणविय सव्व-देवाण।
जं सिद्धाण सोक्ख, अव्वाबाह उवगयाण।।13।।

शब्दार्थ–**उवगयाणं सिद्धाण**=मोक्ष प्राप्त हुए सिद्ध भगवन्तो को, **अव्वाबाहं**=सर्व विघ्नो से रहित, **ज सोक्ख**=जो सुख है, **सोक्ख**=वह सुख, **माणुसाण वि**=मनुष्यो को भी, **ण अत्थि**=नही है, **य सव्व देवाण वि**=और सर्व देवताओ को भी, **ण**=नही है।

भावार्थ–जन्म, जरा, मरण रूप ससार परिभ्रमण के सर्व दु खो का अन्त कर निर्वाण प्राप्त हुए सिद्ध भगवन्त को जो अव्याबाध सुख की उपलब्धि हुई है, वैसा सुख न किसी मनुष्य को मिला है और न ही देवताओ मे से किसी देव को प्राप्त है।

जं देवाण सोक्ख, सव्वद्धा पिण्डिय अणतगुण।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, अणताहि वग्ग-वग्गूहि।।14।।

शब्दार्थ–**ज देवाण सोक्ख**=जो देवताओ को सुख है, **सव्वद्धा पिंडिय**=उनके उस त्रैकालिक सुख पिड को, **अणत गुण**=अनन्त गुणा करे तो भी, **ण पावइ**=नही पाता है, **मुत्ति सुह**=निर्वाण के सुख को, **अणंतेहि वग्ग वग्गूहिं**=अनन्त वर्गो से वर्गित देवता का सुख।

भावार्थ–समस्त देवो के त्रैकालिक सुख को एक-एक आकाश प्रदेश पर स्थापित करे, उस सुख से आकाश के अनन्त प्रदेश भर जाए फिर सम्पूर्ण आकाश प्रदेशो के सुख को परस्पर गुणा करे तो उन देवताओ का वह सुख अनन्त गुणित हो जाता है। वह अनन्त गुणा दैविक सुख भी सिद्ध भगवन्त के मुक्ति सुख के समक्ष एक क्षण के बराबर भी नही है।

सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वद्धा पिण्डिओ जइ हवेज्जा।
सोऽणत वग्ग भइओ, सव्वागासे ण माएज्जा।।15।।

शब्दार्थ–**सिद्धस्स सुहो रासी**=सिद्ध भगवन्तो की सुख राशी को, **सव्वद्धा पिडिओ जइ हवेज्जा**=सर्वकाल के समय से गुणित अगर होवे तो, **सो**=उस सुख को, **अणंत वग्ग भइओ**=अनन्त वर्गो से भाग दे तो, **सव्वागासे**=सम्पूर्ण आकाश प्रदेशो मे, **ण माएज्जा**=नही समा सकता हैं।

भावार्थ–ससार जिसे सुख मानता है, उस इन्द्रिय सुख मे एक एक गुण क्रमश वृद्धि करते जाए, जब वह सुख अनन्त गुण वृद्धि पाकर अन्तिम अवधि को प्राप्त हो, तब वह सुख अत्यन्त अनुपम, उत्कण्ठा वृत्ति से रहित प्रशान्त सागर सम गभीर चरम चक्षु रूप होता है। उस चरम सुख के पहले और प्रथम सुख के बाद जो तरतमता विशेष सुख के मध्यम मे है। वह सुख राशि समस्त आकाश प्रदेशो से भी अधिक इसीलिए कही गयी है कि सिद्ध भगवन्त का अनन्त वर्गो मे बटा हुआ सुख समस्त आकाश प्रदेशो मे नही समा सकता है।

जहणाम कोइ मिच्छो, णयर गुणे बहुविहे वियाणतो।
ण चएइ परि-कहेउ, उवमाए तहि असतीए।।16।।

शब्दार्थ–**जह णाम कोइ**=यथा नाम कोई, **मिच्छो**=मलेच्छ, **णयर बहुविहे गुणे वियाणतो**=नगर के अनेक प्रकार के गुणो को जानता हुआ भी, **न चएइ**=नही कह सकता, **परिकहेउ**=वर्णन करने के लिए **उवमाए**= उपमा का, **तहि असतीए**=वहा अभाव है।

भावार्थ–जिस प्रकार कोई म्लेच्छ, अनेक प्रकार के नगर के गुणो को जानने पर भी उसका यथार्थ वर्णन कर नही सकता क्योकि वहा उपमा का अभाव है। इसी प्रकार सिद्ध स्वरूपी आत्मा के अनन्त सुखो का वर्णन किसी भी उपमा द्वारा वर्णित नही किया जा सकता है।

इय सिद्धाण सोक्ख, अणोवम णत्थि तस्स उवम्म।
किचि विसेसेणेत्तो, उवम्म-मिण सुणह वोच्छ।।17।।

शब्दार्थ–**इय सिद्धाणं सोक्ख**=इस प्रकार सिद्धो का सुख, **अणोवमं**=अनुपमेय है, **तस्स ओवम्मं णत्थि**=उसकी उपमा नही है, **किचि विसेसेणेत्तो**=कुछ विशेषताओ के द्वारा, **इण**=इसको, **ओवम्म**= उपमित कर समझाया जाता है, **सुणह**=सुनो, **वोच्छ**=कहता हू।

भावार्थ–ऐसे सिद्ध 'स्वरूपी आत्मा का सुख यद्यपि अनुपम है, सासारिक पदार्थो के सुख से तुलना हो नही सकती है फिर भी अज्ञानी जीवो को बोध कराने के लिए कुछ विशेष ढग से सिद्ध भगवान् के सुख को उपमा देकर कहता हू सुनो।

जह सव्व कामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयण कोई।
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो।।18।।

शब्दार्थ–**जह कोई पुरिसो**=जैसे कोई पुरुष, **सव्वकाम गुणिय**= सर्वेन्द्रियो को तृप्त करने वाले, **भोयण भोत्तूण**=कामभोगादि को अच्छी

तरह से भोगकर, **तण्हा छुहा विमुक्को**=प्यास और भूख से रहित, **अमियतित्तो**=अमृत से तृप्त, **जहा**=जैसे, **अच्छेज्ज**=रहता है।

भावार्थ–कोई पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियो को तृप्त करने वाले श्रोतेन्द्रिय के शब्द विषय व चक्षु इन्द्रिय के रूप विषय जन्य काम लालसा और घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी गध, रसनेन्द्रिय सम्बन्धी स्वाद और स्पर्शनेन्द्रिय जनित स्पर्श रूप भोग वासना का छक्कर इच्छानुसार भोग करके, उस सुख की चेष्टा से रहित बना हुआ वह अमृत सी तृप्ति अनुभव करता है।

इय सव्व कालति त्ता, अउल णिव्वाण-मुवगया सिद्धा।
सासय-मव्वाबाह, चिट्ठति सुही सुह पत्ता।।19।।

शब्दार्थ–**इय णिव्वाणं उवगया**=इस प्रकार अपुनरावृति रूप मोक्ष को पाए हुए **सव्वकाल तित्ता**=सदाकाल तृप्त, **सिद्धा**=सिद्ध प्रभु **अउलं**=अतुलनीय, **सासय**=शाश्वत, **अव्वाबाह**=बाधा रहित, **सुह पत्ता**=सुख को प्राप्त, **सुही चिट्ठति**=सुखी रहते है।

भावार्थ–चतुर्गति ससार के नानाविध दु खो का अन्त कर अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष पाने वाली कृत कृत्य सिद्धात्मा सदा काल तृप्त रहती है, उस अनुपम, शाश्वत सुख का भोग निर्विघ्न करते हुए सिद्ध प्रभु सिद्ध क्षेत्र मे सुख से सुखी सदाकाल रहते है।

सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य पारगयत्ति य परम्पर-गयत्ति।
उम्मुक्क-कम्म कवया, अजरा अमरा असंगया।।20।।

शब्दार्थ–**सिद्धत्ति**=कृतकृत्य होने से सिद्ध है, **बुद्धत्ति**=सर्वलोक और अलोक जानने से बुद्ध है, **पारंगयत्ति य**=भवसागर को पार करने से पारगत है, **परम्पर गयत्ति य**=मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो और मनुष्यादि सुगतियो को लाघने से परम्परागत है, **कम्म कवया उम्मुक्क**=कर्म कवच से रहित होने से, **अजरा अमरा**=अजर अमर है, **असगया**=और सक्लेशो से रहित होने से असग है।

भावार्थ–निर्वाण प्राप्त सिद्ध भगवन्तो को कोई भी कार्य करना शेष नही रहने से वे कृतकृत्य कहलाते है, वे सर्वज्ञ होने से लोकालोक की सर्वकालीन सम्पूर्ण अवस्थाओ को जानने एव अपने स्वरूप मे सदा जागृत होने से भी बुद्ध है, भव सिधु को तैरने से वे पार पहुचे हुए है, मिथ्यात्व आदि चतुर्दश गुणस्थानो और ससार भ्रमण की गतियो का उच्छेद कर देने से परम्परागत है। कर्म कवच से सर्वथा रहित होने से वे अजर-अमर और असग कहलाते है।

णिच्छिण्ण सव्वदुक्खा, जाइ-जरा-मरण-बंधण विमुक्का।
अव्वाबाहं सुक्ख, अणुहोंति सासयं सिद्धा।।21।।

शब्दार्थ—**सिद्धा**=सिद्ध भगवन्त, **णिच्छिण्ण सव्वदुक्खा**=सम्पूर्ण दु ख का अतिक्रमण करने, **जाइ जरा मरण बंधण विमुक्का**=ज्ञाति जन्म, बुढापा व मृत्यु के बन्धनो से रहित **सासयं सुक्खं अणुहोति**=शाश्वत सुख का अनुभव करते है।

भावार्थ—शिव स्वरूप को सप्राप्त सिद्धदेव समस्त दु खो के कारणो से रहित होने से, जन्म-जरा-मृत्यु के बन्धनो से रहित हो जाने से नित्य, स्थायी, निर्विघ्न सुख का सदाकाल अनुभव करते हैं।

अउल-सुह-सागर गया, अव्वाबाहं अणोवमं पत्ता।
सव्व-मणागय-मद्धं चिट्ठिंति सुही सुहं पत्ता।।22।।

शब्दार्थ—**अउलसुह सागरगया**=अनुपम सुखसागर को प्राप्त, **अणोवमं अव्वाबाहं**=अनुपमेय निर्विघ्नता रूप, **पत्ता**=सुख प्राप्त किये, **सव्व अणागयअद्ध**=समस्त भविष्य काल तक, **चिट्ठिति**=रहते है।

भावार्थ—अतुलनीय सागर मे निमग्न बने, वे सिद्ध भगवन्त बाधा रहित अनुपम सुख का सिद्ध क्षेत्र मे अनन्तानन्त काल तक सुखोपभोग करते हुए सुखी रहते है।

मासे-मासे उ जो बालो कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सुअक्खाय धम्मस्स, कल्लं अग्घइ सोलसिं।।

—उत्त सूत्र 9-44

कोई साधक एक माह तक निरन्तर उपवास रखे और पारणे पर केवल कुश के अग्र भाग पर आवे जितना-सा आहार ग्रहण करके पुन एक मास का निराहार व्रत स्वीकार कर लेता है। यह क्रम उसका जीवन पर्यन्त चले लेकिन वह बाल-अज्ञानी अर्थात् बोधि-बीज से रहित है, तो उसका वह उग्र तपश्चरण शुद्ध चारित्र धर्म की सोलहवी कला के बराबर भी नही होता।

श्री भक्तामर स्तोत्र :

भक्तामर प्रणत मौलि मणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलित पापतमो वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।1।।

शब्दार्थ–भक्त=भक्तिमान्, **अमर प्रणत**=देवो के झुके हुए, **मौलिमणि प्रभाणा**=मुकुट की मणि प्रभा को, **उद्योतक**=प्रकाशित करने वाले, **पाप तमो वितान**=पाप प्रसरित अज्ञ अधकार को, **दलित**=नष्ट करने वाले, **भवजले**=ससार सागर मे, **पततां जनाना**=गिरते हुए मनुष्यो को, **युगादौ**= युग के प्रारम्भ मे, **आलम्बन**=आधार रूप, **जिनपादयुग**=जिनेन्द्र के चरण युगल को, **सम्यक् प्रणम्य**=अच्छी तरह प्रणाम करके।

भावार्थ–जिनके चरण कमल, भक्ति वश झुके हुए देवो के मुकुट मणियो को ज्योतिष्मान बनाने वाले है, प्रसृत मोहान्धकार पाप-वासना की कालिमा को नष्ट करने वाले है, ससार सागर मे निमज्जित बनने वाले लोगो के लिए आधार भूत है। अत ऐसे आदिनाथ भगवान् के चरण सरोजो मे विधि सहित नमस्कार।

य सस्तुत सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्भूत बुद्धि-पटुभि· सुरलोक नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत् त्रितय चित्तहरै रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।2।।

शब्दार्थ–**य**=जो, **सकल वाङ्मय**=सम्पूर्ण द्वादशागी के, **तत्त्व बोधात्**=तत्त्व ज्ञान से, **उद्भूत बुद्धि पटुभि**=प्रत्युत्पन्न मति कौशल से, **सुरलोक नाथै**=देवलोक के स्वामी इन्द्रो ने, **जगत् त्रितय**=त्रि जगत के, **चित्तहरै**=चित्त को हरने वाले, **उदारै स्तोत्रै**=महान स्तोत्र द्वारा, **सस्तुत**=सम्यक्तया स्तवन किये गए, **त प्रथमं**=उन प्रथम, **जिनेन्द्रं**=जिनेश्वर देव का, **किल अह अपि**=निश्चय से मै मानतुग भी, **स्तोष्ये**=स्तवन करूगा।

भावार्थ–सम्पूर्ण वाङ्मय के बोध से उत्पन्न तीक्ष्ण प्रज्ञा देवाधिपति इन्द्रो ने त्रिभुवन के चित्त को हरने वाले महामहिम स्तोत्रो से जिनकी स्तुति की। उन्ही युगपुरुष आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की मै भी स्तुति करूंगा।

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित पादपीठ।
स्तोतुं समुद्यत मतिर् विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थित-मिन्दु बिम्ब
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

शब्दार्थ–**विबुध. अर्चित पादपीठ**=देवो से पूजित चौकी, **बुद्धया विना अपि**=बुद्धि न होने पर भी, **अहं स्तोतुं**=मैं स्तुति के लिए, **विगत त्रपः**=लज्जा रहित, **समुद्यत मतिः**=तत्पर मति बना हू, **बालं विहाय**=बालक को छोडकर, **अन्य क जन**=दूसरा कौन मनुष्य, **जल सस्थित इन्दु बिम्ब**=जल मे स्थित चन्द्रबिम्ब को, **सहसा ग्रहीतु**=एकाएक पकडने की, **इच्छति**=चाहना करता है।

भावार्थ–हे अन्तर्यामी प्रभो! आपका चरणासन विशिष्ट धीमानो से पूजित है, और मै बुद्धिविहीन हू तथापि निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने तत्पर बना हू। यह मेरी निरी बाल चेष्टा है, क्योकि जल मे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को नासमझ भोले बालक के सिवाय पकडने का साहस और कौन कर सकता है? कोई नही।

वक्तु गुणान् गुणसमुद्र! शशाक कान्तान्,
कस्ते क्षम सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल पवनोद्धत नक्रचक्र
को वा तरीतु-मलमम्बु निधि भुजाभ्याम्।।4।।

शब्दार्थ–**गुणसमुद्र**=हे गुणसागर, **बुद्धया**=बुद्धि से, **सुरगुरु प्रतिम अपि**=बृहस्पति के समान भी, **क**=कौन, **ते शशाक कान्तान्**=चन्द्रकाति सम उज्ज्वल, **गुणान्**=गुणो को, **वक्तु क्षम**=कहने के लिए समर्थ हे, **कल्पान्त काल**=प्रलय काल की, **पवन उद्धत**=वायु से उछलते, **नक्रचक्र**=विक्षुब्ध मगरमच्छो से युक्त, **अम्बुनिधि**=समुद्र को, **भुजाभ्या तरीतु**=भुजाओ के द्वारा तैरने के लिए **को वा अलम्**=कौन पुरुष समर्थ है?

भावार्थ–हे प्रभो! प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु से उछलते विक्षुब्ध मगरमच्छो वाले भीषण महासागर को दोनो भुजाओ से पार करने मे कौन समर्थ हो सकता है? कोई नही। इसी प्रकार हे गुण सागर! बौद्धिक विकास मे चाहे कोई बृहस्पति तुल्य हो फिर भी वह आपके उज्ज्वल गुणो को कहने मे समर्थ कैसे हो सकता है?

सोऽह तथापि तव भक्ति वशान् मुनीश!
कर्तु स्तवं विगत शक्तिरपि प्रवृत्तः।

प्रीत्याऽऽत्म वीर्य-मविचार्य मृगो मृगेन्द्र,
नाभ्येति कि निज शिशो परिपालनार्थम्।।5।।

शब्दार्थ–**मुनीश**=हे मुनीश्वर, **विगत शक्ति अपि**=शक्ति विहीन होने पर भी, **अहं तव भक्ति वशान्**=मैं तुम्हारी भक्ति के अधीन होकर, **स. स्तवं**=उस स्तुति को, **कर्तुं तथापि**=करने के लिए फिर भी, **प्रवृत**=प्रवृत हुआ हू, **मृग प्रीत्या**=हिरणी प्रेमवश, **आत्मवीर्य**=अपनी शक्ति को, **अविचार्य**=बिना विचारे, **निजशिशो परिपालनार्थ**=अपने बच्चे की रक्षा के लिए, **कि मृगेन्द्रं**=क्या सिह के सम्मुख, **न अभ्येति**=नही अड जाती है।

भावार्थ–हे मुनीन्द्र! जैसे हिरणी शक्ति न होने पर भी प्रीतिवश अपने बच्चे को बचाने के लिए सिह का सामना करती है, वैसे ही हे गुणाकर! मुझ मे शक्ति नही है फिर भी आपकी भक्ति मुझे स्तुति के लिए बाध्य कर रही है। उससे प्रेरित हुआ मै स्तुति कर रहा हू।

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहास-धाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान् माम्
यत् कोकिल किल मधौ मधुर विरौति,
तच्चाम्र चारु कलिका निकरैक हेतु।।6।।

शब्दार्थ–**अल्पश्रुत**=अल्प ज्ञानी, **श्रुतवतां**=श्रुतधर विद्वानो की, **परिहास धाम**=हसी के पात्र, **माम्**=मुझको, **त्वद् भक्ति एव**=आपकी भक्ति ही, **बलात्**=जबरन, **मुखरी कुरूते**=वाचाल कर रही है, **किल**=निश्चय ही, **मधौ**=वसन्त ऋतु मे, **यत् मधुर विरौति**=कि मधुर स्वर मे कुहुकती है, **कोकिल**=कोयल, **तत**=वह, **चारु**=सुन्दर, **आम्रकलिका**=आम्र मजरी का, **निकर**=समुदाय ही, **एक हेतु**=एक कारण है।

भावार्थ–हे आनन्द धाम! बसन्त ऋतु मे आम्र वृक्षो पर मौर आते है, तब कोयल स्वयमेव सुरीले स्वर मे कुहुकने लगती है, उसी प्रकार हे नाथ! मुझ जैसा अल्पज्ञ, ज्ञानियो के समक्ष उपहास का पात्र है, फिर भी आपकी भक्ति ही मुझे वाचाल बना रही है।

त्वत् सस्तवेन भव संतति सन्निबद्धं,
पाप क्षणात् क्षयमुपैति शरीर भाजाम्।
आक्रान्त लोकमलि नीलमशेष-माशु,
सूर्यांशु भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम्।।7।।

शब्दार्थ–**त्वत् संस्तवेन**=आपके स्तवन से, **शरीर भाजाम्**=देहधारी प्राणियो के, **भव सतति**=भव परम्परा से, **सन्निबद्धं**=बधे हुए, **पापं क्षणात्**

क्षय उपैति=पाप क्षण भर मे विनष्ट हो जाते है, **आक्रान्त लोक**=सम्पूर्ण लोक मे छाया, **अलि नीलं**=भवरे के समान स्याह, **शार्वरं**=रात्रि विषय के, **अशेषम्**=सम्पूर्ण, **अन्धकारं**=अन्धकार **सूर्यांशु**=सूर्य किरणो से, **आशु**=शीघ्रता से, **भिन्न मिव**=हट जाता है उसी तरह।

भावार्थ–हे जगत्पते! आपकी स्तुति से, अनादि काल के सचित पाप कर्म प्राणियो के क्षण भर मे नष्ट हो जाते है। जैसे सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त भौरे के समान काला अमावस्या का घोर अधकार प्रातकालीन सूर्य की तेजस्वी किरणो के आते-आते ही नष्ट हो जाता है।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु धियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता फल-द्युति मुपैति ननूद बिन्दु।।8।।

शब्दार्थ–**नाथ**=हे नाथ!, **इति मत्वा**=ऐसा मानकर, **तनुधिया अपि मया**=स्वल्प बुद्धि होने पर भी मेरे द्वारा, **इदं तव संस्तवनं**=यह आपका स्तोत्र, **आरभ्यते**=प्रारम्भ किया जाता है, **तव प्रभावात्**=आपके प्रभाव से, **सतां चेत**=सज्जनो के चित्त को, **हरिष्यति**=हरेगा, **ननु उद बिन्दु**=निश्चय ही जल की बूद, **नलिनी**=कमलिनी के, **दलेषु**=पत्तो पर, **मुक्ता फल द्युतिं**=मोती की चमक को, **उपैति**=प्राप्त होती है।

भावार्थ–हे त्रिलोकीनाथ! कमलिनी के पत्तो पर पडी जल की बूद मोती सदृश शोभा पाती है, उसी प्रकार हे अद्वितीय महिमधर! मुझ अल्पज्ञ की यह साधारण रचना आपके प्रभाव से सज्जन पुरुषो के चित्त को आकर्षित करने वाली बनेगी। यह जानकर ही मैं मन्द बुद्धि के सहारे आपका स्तवन रचने को तैयार हुआ हू।

आस्तां तव स्तवन-मस्त समस्त दोषं
त्वत् संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्त्र किरण कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास भाञ्जि।।9।।

शब्दार्थ–**तव**=तुम्हारा, **अस्त समस्त दोषं**=सर्व दोषो से रहित, **स्तवनं**=स्तवन को, **दूरे आस्तां**=दूर ही रहे, **त्वत् सन् कथामपि**=तुम्हारी चर्चा भी, **जगतां दुरितानि हन्ति**=ससार के पापो को नष्ट कर देती है, **सहस्त्र किरण**=सूर्य, **दूरे**=दूर रहे, **प्रभा एव**=प्रभी ही, **पद्माकरेषु जलजानि**=सरोवर के कमलो को, **विकास भांजि कुरुते**=विकसित कर

देती है।

भावार्थ–हे अखिलेश्वर! सूर्योदय तो दूर, उसकी आभा ही सरोवर के सरोजो को विकसति कर देती है, उसी प्रकार हे पतित पावन! आपका स्तवन तो दूर सिर्फ आपकी सम्यक् कथा, नाम गुण चर्चा ही ससारी प्राणियो के पापो को नष्ट कर देतो इसमे जरा भी सदेह नही है।

नात्यद् भुत भुवन भूषण! भूतनाथ!
भूतै-र्गुणैर् भुवि भवन्त मभिष्टु-वन्त.।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म संमं करोति।।10।।

शब्दार्थ–भुवन भूषण=हे त्रिलोक भूषण, **भूतनाथ**=हे प्राणियो के स्वामिन्, **भूतै गुणै**=विद्यमान यथार्थ गुणो से, **भवन्तं अभिष्टुवन्त**=आपकी स्तुति करने वाले, **भुवि**=पृथ्वी पर, **भवत**=आपके, **तुल्या भवन्ति**=समान हो जाते है, **अति अद्भुत न**=अति विस्मयजनक नही, **वा ननु**=अथवा निश्चय से, **तेन किं**=उससे क्या, **य इह**=जो इसलोक मे, **आश्रितं**=अपने आश्रित सेवक को, **भूत्या**=वैभव से, **आत्म समं न करोति**=अपने समान नही करता।

भावार्थ–हे जगत् भूषण! हे जगन्नाथ! जो भव्य पुरुष आपकी स्तुति करते है, वे सज्जन आपके समान उच्चावस्था को पा लेते है। इसमे आश्चर्य करने वाली कोई बात नही है। ससार मे जो स्वामी अपने अधीन सेवक को ऐश्वर्य देकर अपने सदृश नही बनाता, उस मालिक की सेवा से क्या लाभ?

दृष्टवा भवन्त-मनिमेष विलोकनीय,
नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पय· शशिकर द्युति दुग्ध-सिन्धो·,
क्षार जलं ·जलनिधे-रसितुं क· इच्छेत्।।11।।

शब्दार्थ–अनिमेष विलोकनीयं=अपलक देखने योग्य, **भवन्त दृष्टवा**=आपको देखकर, **जनस्य चक्षु**·=मानव की आखे, **अन्यत्र**=दूसरी जगह, **तोषं न उपयाति**=सतोष को नही पाती, **दुग्ध सिन्धो**.=क्षीर सागर के, **शशिकर द्युति**=चन्द्र किरण सम शुभ्र काति वाले, **पय· पीत्वा**=जल को पीकर, **क· जलनिधे क्षारं**=कौन सागर के खारे, **जल**=जल को, **असितु इच्छेत्**=पीने के लिए इच्छा करेगा?

भावार्थ–हे दिव्य देव्! अनिमेष दृष्टि से, पलक झपकाए बिना देखने योग्य आपके अनिर्वचनीय स्वरूप को जिसने देख लिया, उनकी आखे अन्य

देवो के दर्शन से तृप्त कैसे नही होगी? आपके आलौकिक दर्शन की प्यासी आपको खोजती रहती हैं। हे आनन्द सागर! किसी ने क्षीर सागर का शुभ्र मधुर जल पी लिया, वह लवण समुद्र के खारे जल को पीने की इच्छा कैसे कर सकता है?

यैः शान्तराग रुचिभिः परमाणुभिस्त्व,
निर्मापित-स्त्रि भुवनैक ललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान मपरं न हि रूपमस्ति।।12।।

शब्दार्थ–**त्रिभुवनैक ललामभूत**=हे त्रिभुवन के अनुपम अलकार, **यैः**=जिन, **शांत राग रुचिभि**=प्रशात भाव की काति वाले, **परमाणुभि**=परमाणुओ से, **त्वं निर्मापितः**=तुम्हारा निर्माण हुआ, **खलु ते अणव**=निश्चय ही वे परमाणु, **अपि तावन्त**=भी उतने, **एव**=ही थे, **यत् पृथिव्यां**=क्योकि भूतल पर, **ते समानं**=तुम्हारे समान, **अपरं**=दूसरा, **रूपं नहि अस्ति**=अवश्य रूपवाला नही है।

भावार्थ–हे त्रिभुवन अलकार! प्रशात-सौम्य कान्तिमय जिन सर्वोत्तम मनोहर परमाणुओ से आपका शरीर बना है, वे परमाणु इस भूतल पर उतने ही थे, क्योकि आपके समान दूसरा कोई भी रूप सम्पदा का स्वामी नही है। यदि अन्य परमाणु होते तो दूसरा कोई रूप सम्पदा वाला अवश्यमेव होता।

वक्त्रं क्व ते सुर नरोरग नेत्रहारि,
निःशेष निर्जित जगत् त्रितयोप मानम्।
बिम्बं कलंक मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश कल्पम्।।13।।

शब्दार्थ–**सुर नर उरग नेत्र हारि**=देव मनुष्य और भवनवासी नाग कुमार आदि के नेत्रो को हरने वाले, **निःशेष निर्जित**=सम्पूर्ण जीत लिया, **जगत् त्रि तय उपमान**=तीन जगत की उपमाओ को, **ते वक्त्र**=तुम्हारा मुख, **क्व**=कहा, **निशाकरस्य**=चन्द्रमा का, **कलंकमलिन**=काले धब्बो से मलिन, **बिम्बं क्व**=मण्डल कहां, **यत् वासरे**=जो दिन मे, **पाण्डु पलाश कल्प**=फीके ढाक के पत्ते के समान, **भवति**=होता है।

भावार्थ–हे त्रिलोक नेत्रहारि! आप ऊर्ध्वलोक के देव, देवेन्द्रो, मध्य लोक के नर-नरेन्द्रो, अधोलोक के नागेन्द्र आदि के नेत्रो के अत्यधिक आकर्षण केन्द्र बने हुए है। ससार की समस्त उपमाए आपके लिए अपूर्ण हैं। कहा आपका शुभ्र ज्योत्सना से परिपूर्ण एकसा मुखचन्द्र और कहा काले

धब्बो से युक्त चन्द्र मण्डल। जो दिन मे ढाक के पीले पत्तो के समान कातिहीन बन जाता है।

> सम्पूर्ण मडल शशाङ्क कला कलाप,
> शुभ्रा गुणास् त्रिभुवनं तव लघयन्ति।
> ये सश्रितास् त्रि जगदीश्वर! नाथमेकं,
> कस्तान्निवारयति सचरतो यथेष्टम्।।14।।

शब्दार्थ–त्रिजगदीश्वर=हे तीन लोक के ईश्वर, **सम्पूर्ण मण्डल शशांक कला कलाप**=पूर्णचन्द्र मण्डल की कलाओ के सदृश, **शुभ्रा**= अत्यन्त उज्ज्वल, **तव गुणाः**=आपके गुण, **त्रिभुवन लघयति**=तीन लोक को लाघ रहे हैं, **ये एक**=जिन्होने एक, **नाथं संश्रिता**=स्वामी का आश्रय लिया, **तान् यथेष्ट**=उन्हे स्वेच्छानुसार, **सचरत**=विचरण करते **क**=कौन, **निवारयति**= रोक सकता है?

भावार्थ–हे त्रिलोक स्वामिन्! पूर्णिमा की चन्द्रकला के समान आपके निर्मल कातिमान् उज्ज्वल गुण तीन लोक मे सर्वत्र फैले हुए है। उन गुणो ने एकमात्र आपकी शरण ली है, वे इस सृष्टि मे स्वेच्छानुसार भ्रमण करे तो उन्हे कौन रोक सकता है? अर्थात् कोई नही।

> चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग-नाभिर,
> नीत मनागपि मनो न विकार मार्गम्।
> कल्पान्त काल मरुता चलिताचलेन,
> कि मन्दराद्रि शिखर चलित कदाचित्?।।15।।

शब्दार्थ–यदि=अगर, **ते मन**=तुम्हारा मन, **त्रिदशाग नाभि**= अप्सराओ के द्वारा, **मनाक् अपि**=किचित भी, **विकार मार्ग**=विकार भाव को, **न नीत**=प्राप्त नही हुआ, **अत्र कि**=इसमे क्या, **चित्र**=आश्चर्य, **कल्पान्त काल**=प्रलय काल के, **मरुता**=पवन के, **चलिताचलेन**=चलने से अचलायमान, **कि मदाराद्रि शिखरं**=क्या सुमेरु गिरि, **कदाचित्**=कभी, **चलितं**=चलायमान हुआ।

भावार्थ–हे कामजयी वीतराग प्रभो! अप्सराओ ने काम वासना को उत्तेजित करने वाले हाव भाव से आपको विचलित करने का अथक प्रयास किया परन्तु आप, अपने लक्ष्य से विचलित नही हुए तो इसमे क्या आश्चर्य है? पर्वतो को चलायमान करने वाले प्रलयकाल के प्रचण्ड वायु वेग से क्या सुमेरु कभी चलायमान हुआ? नही।

निर्धूम वर्ति-रप वर्जित तैलपूर.,
कृत्स्नं जगत्-त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरूतां चलिता चलानां,
दीपोऽपरस् त्वमसि नाथ जगत प्रकाशः।।16।।

शब्दार्थ—**नाथ**=हे स्वामिन्, **त्वं निर्धूमवर्तिः**=आप धूए, बत्ती से रहित, **अपवर्जित तैलपुर**=तैल पूर्ति से रहित, **इद कृत्स्न**=इस सम्पूर्ण, **जगत्त्रयं प्रकटी करोषि**=त्रिभुवन को प्रकाशित करते हो, **चलिता चलाना मरुतां**=पर्वतो को कपायमान करने वाले पवन की, **न गम्यः**=गति नही है, **जातु**=कभी भी, **जगत्प्रकाशः**=हे जगत प्रकाशक, **अपर दीप. असि**=अपूर्व दीप हो।

भावार्थ—हे परम ज्योतिमान्! आप धुएं वाली बत्ती से रहित और तैल पूर्ति से सर्वथा विहीन होकर भी त्रिभुवन को पूर्णत प्रकाशित कर रहे हो, मिट्टी के दीपक को वायु का साधारण-सा झोका बुझा सकता है मगर पर्वतो को चलायमान करने वाले प्रचण्ड वायु वेग मे भी आपके आत्म दीप की अखण्ड ज्योति एक सरीखी जलती रहती है, अत आप अपूर्व दीप हो।

नास्तं कदाचि-दुपयासि न राहुगम्यः
-स्पष्टी करोषि सहसा युगपज्ज गन्ति।
नाम्भो धरोदर निरुद्ध महाप्रभाव.,
सूर्याति-शायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके।।17।।

शब्दार्थ—**मुनीन्द्र**=हे मुनियो के इन्द्र!, **कदाचित्**=कभी, **न अस्तं उपयासि**=न अदृश्य होते हो, **न राहुगम्यः**=न राहु द्वारा ग्रसित होते हो, **न अम्भोधरोदर**=न मेघ उदर से, **निरुद्ध महाप्रभाव**=अवरुद्ध होता है महान तेज, **युगपत्**=एक साथ, **जगन्ति सहसा**=त्रिभुवन को एकदम, **स्पष्टीकरोषि**=साक्षात् करते हो, **लोके**=ससार मे, **सूर्यातिशायि**=सूर्य से बढकर, **महिमा असि**=महिमा वाले हो।

भावार्थ—हे त्रिभुवन दिवाकर! हे मुनिनाथ! आप सूर्य से बढकर महिमाशाली है, सूर्य प्रात काल उदय हो, सायकाल अस्त हो जाता है पर आपका केवल ज्ञान रूपी सूर्य न कभी अस्त होता है, न उसे राहु तुल्य-वैभाविक शक्तिया ग्रास बना सकती है, सूर्य परिमित क्षेत्र को प्रकाशित करता है मगर आप ऊर्ध्व, मध्य, अध लोक को प्रकाशित करते हैं। सूर्य बादलों से आच्छादित हो जाता है, किन्तु आपका अमित तेज ज्यो का त्यो सर्वोवस्थाओ मे बरकरार रहता है।

नित्योदयं दलित मोह महान्धकार,
गम्य न राहु वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्प कान्ति
विद्योतयज् जगदपूर्व शशाङ्क बिम्बम्।।18।।

शब्दार्थ–**नित्योदय**=सदैव उदयमान, **मोह महान्धकार**=मोह रूप महान्धकार को **दलित**=नष्ट करने वाला, **राहु वदनस्य न गम्यं**=राहु के मुख को नही जाने वाला, **न वारिदाना**=न मेघो मे छिपता है, **अनल्प काति**=अत्यन्त दीप्तिवान्, **जगत यत् विद्योत**=सम्पूर्ण चराचर विश्व को प्रकाशित करता, **तव मुखाब्ज**=आपका मुखकमल, **अपूर्व शशाङ्क बिम्ब**= अलौकिक चन्द्र बिम्ब के रूप मे, **विभ्राजते**=शोभायमान होता है।

भावार्थ–हे सौम्य सुधाकर! (आपका ज्योतिर्मय मुखकमल अपूर्व चन्द्र मण्डल के रूप मे अखिल सृष्टि को आलोकित करता हुआ व्यामोहित रखने वाले मोह रूप घोर अधकार को नष्ट करता है।) आपका मुख चन्द्र सदैव उदित ही रहता है। वह राहु के मुख मे कभी प्रवेश नही करता और न कभी बादलो मे ही छिपता है।

कि शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा!,
युष्मन् मुखेन्दु दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न शालि वनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्-जलधरैर् जलभार नम्रै.।।19।।

शब्दार्थ–**नाथ**=हे स्वामिन्!, **युष्मन् मुखेन्दु**=आपके मुखचन्द्र से, **दलितेषु तमस्सु**=अधकार नष्ट हो जाने पर, **शर्वरीषु**=रात्रि मे, **शशिना**= चन्द्रमा से, वा **अह्नि**=अथवा दिन मे, **विवस्वता**=सूर्य से, **कि**=क्या प्रयोजन? **निष्पन्न शालि**=पैदा हुए धान्य के, **वन शालिनि**=वन से शोभायमान, **जीवलोके**=ससार मे, **जलभार नम्रै**=जल के भार से झुके हुए, **जलधरै**=बादलो से, **कियत्**=कितना-सा, **कार्यं**=काम।

भावार्थ–हे अद्भुत ज्योतिर्धर! आपके मुख चन्द्र ने अधकार को नष्ट कर सर्वलोक को आलोक से भर दिया, तब रात्रि मे चन्द्रमा और दिन मे सूर्य की क्या आवश्यकता है? हे प्रकाश पुज! परिपक्व धान्यो से वन श्री शोभायमान हो फिर जल से परिपूर्ण झुके हुए मेघो का कितना प्रयोजन रहता है? अर्थात् कुछ नही।

ज्ञान यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैव तथा हरि हरादिषु नायकेषु।

तेजः स्फुरन् मणिषु याति यथा महत्त्व,
नैव तु काच शकले किरणा कुलेऽपि।।20।।

शब्दार्थ—त्वयि=आप मे, कृतावकाशं=किया अवकाश, ज्ञानं=ज्ञान, यथा विभाति=जिस प्रकार शोभित होता है, एवं तथा=वैसा ही, हरि हरादिषु नायकेषु=विष्णु, महेश आदि देवो मे, न=नही, यथा स्फुरन् मणिषु=जैसे चमकती मणियो मे, तेज. महत्त्व याति=तेज महत्त्व को पाता है, तु एवं=वैसा महत्त्व तो, किरणाकुले अपि=रश्मियो से व्याप्त होने पर भी, काच शकले=काच के टुकडो मे, न याति=नही पाता।

भावार्थ—हे दिव्य ज्ञान पुञ्ज! जिस प्रकार आप मे सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय की त्रिकालिक अवस्था को प्रकट करने वाला केवल ज्ञान शोभायमान हो रहा है, वैसा विष्णु महादेव आदि देवो मे नही। जो प्रकाशमान तेज बहुमूल्य रत्नो मे मिलता है, वह काच के टुकडो मे कहा? चाहे वे सूर्य किरणो से चमकते क्यो न हो?

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य,
कश्चिन् मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि।।21।।

शब्दार्थ—नाथ=हे स्वामिन्, हरिहरादय एव=विष्णु महादेव आदि ही, दृष्टा वरं मन्ये=देखे गए श्रेष्ठ मानता हू, येषु दृष्टेषु=जिनको देख लेने पर, हृदय त्वयि=हृदय तुझ मे, तोष-एति=सतोष पाता है, भवता वीक्षितेन=आपको देखने से, किं=क्या, भुवि अन्य=भूमण्डल पर अन्य, कश्चित् भवान्तरेऽपि=कोई देव भवान्तर मे भी, येन मनो न हरति=जिससे मन को हर नही सकता।

भावार्थ—हे देवाधिदेव! आपको देखने से पहले हरि हरादि देवो को देखना अच्छा मानता हू। उनके सराग जीवन चारित्र को देखने के बाद ही आपके वीतराग चारित्र से हृदय सतुष्ट हुआ, जिससे संसार मे अब अन्य कोई देव इस जन्म मे तो क्या जन्म-जन्मान्तर मे भी मेरे मन को अपनी ओर नही खीच सकता?

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र रश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशु जालम्।।22।।

शब्दार्थ–**स्त्रीणा शतानि**=सैकडो स्त्रिया, **शतश पुत्रान्**=सैकडो पुत्रो को, **जनयन्ति**=जन्म देती है, **तदुपम सुत**=आप जैसे पुत्र को, **अन्या जननी**=अन्य कोई माता, **न प्रसूता**=उत्पन्न नही कर सकी, **भानि** =नक्षत्रो को, **सर्वा दिशो**=सब दिशाए, **दधति**=धारण करती है, **स्फुरदंशु जाल**=देदीप्यमान किरणो के समूह वाले, **सहस्त्र रश्मि**=सूर्य को, **प्राची एव दिग्**=पूर्व दिशा ही, **जनयति**=जन्म देती है।

भावार्थ–हे महामगल प्रभो! ससार मे अनेक स्त्रिया पुत्रो को जन्म देने की अधिकारिणी बनती है परन्तु आप जैसे परम प्रतापी आलौकिक पुत्र रत्न को अन्य किसी माता ने जन्म नही दिया! क्योकि सभी दिशाए नक्षत्र एव ताराओ को धारण करती है, मगर सूर्य को केवल एक पूर्व दिशा ही प्रकट करती है।

त्वामा-मनन्ति मुनय परमं पुमास-,
मादित्य-वर्ण-ममल तमस परस्तात्।
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्यु,
नान्य शिव शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्था।।23।।

शब्दार्थ–**मुनीन्द्र**=हे मुनियो के नाथ, **मुनय**=मुनिगण, **त्वा**=तुम्हे, **परम पुमास**=श्रेष्ठ पुरुष, **आदित्य वर्ण**=सूर्य सदृश तेजस्वी, **अमल**=मल रहित, **तमस परस्तात्**=अधकार से परे, **आमनन्ति**=मानते है, **त्वा एव**= तुमको ही, **सम्यक् उपलभ्य**=भलीभाति प्राप्त करके, **मृत्यु जयति**=मृत्युजयी हो जाते है, **शिव पदस्य**=मोक्ष पद का, **अन्य**=दूसरा **शिव पन्था न**= कल्याणकारी पथ नही है।

भावार्थ–हे शिव प्रणेता! श्रेष्ठ सत आपको सूर्य से अधिक तेजस्वी, स्फटिक रत्न के समान निर्मल, मिथ्यात्व मोहान्धकार से रहित परम पुरुष मानते है। वे आपका अपने अन्त करण मे दर्शन पाकर मृत्युजयी बन जाते है। इसलिए आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मोक्ष का प्रशस्त मार्ग द्रष्टा नही है।

त्वा-मव्यय विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्य,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनंगकेतुम्।
योगीश्वर विदित-योग-मनेक-मेक,
ज्ञान-स्वरूप-ममल प्रवदन्ति सन्त।।24।।

शब्दार्थ–**सन्त त्वा**=सन्त आपको, **अव्ययं**=क्षय रहित, **विभु**= उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान्, **अचिंत्य**=कल्पनातीत **असख्य**=असख्य, **आद्य**=आदि

पुरुष, **ब्रह्माणं**=ब्रह्मा, **ईश्वरं**=ईश्वर, **अनन्तं**=अन्त रहित, **अनंग केतुम्**=मदन नाशार्थ केतु, **योगीश्वरं**=योगियो के स्वामी, **विदितयोग**=योगवेत्ता, **अनेकं**=गुण प्रर्याय की अपेक्षा अनेक, **एकं**=एक, **ज्ञान स्वरूपं**=ज्ञानमय, **अमलं प्रवदन्ति**=निर्मल कहते है।

भावार्थ–हे अध्यात्म पथ अधिनायक! विशिष्ट ज्ञानी, महात्मा आपको चयापचय से रहित-अक्षय स्वभाव वाले, व्यापक ज्ञान वाले, असख्य गुणो के धारक, इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थंकर, जीवन विधाता होने से ब्रह्मा, अनन्त आत्मिक ऐश्वर्य के स्वामी होने से ईश्वर, स्वरूप का अन्त न होने से अनन्त, कामदेव के सहार हेतु केतु ग्रह, योगियो के स्वामी होने से योगीश्वर, मनादि योगो के ज्ञाता है, गुण पर्याय की अपेक्षा से अनेक और द्रव्य की अपेक्षा एक है, ज्ञान स्वरूप वाले हैं, दोष रहित होने से निर्मल हैं। इस प्रकार आपका वर्णन करते है, अनेक रूपो मे एक रूप होने पर भी आपको देखते है।

बुद्धस्त्व मेव विबुधार्चित! बुद्धि बोधात्-,
त्व शङ्करोऽसि भुवनत्रय शङ्कर त्वात्।
धाताऽसि धीर! शिवमार्ग-विधेर् विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषो-त्तमोऽसि।।25।।

शब्दार्थ–**विबुधार्चित**=शीर्षस्थ विद्वजनो से पूजित, **बुद्धि**=ज्ञान के, **बोधात्**=विकास से, **त्वं एव बुद्ध**=आप ही बुद्ध है, **भुवन त्रय**=तीन लोक के, **शंकरत्वात्**=सुख या कल्याण करने वाले होने से, **त्व शंकर असि**=आप शकर हो, **धीर**=हे धीर, **शिव मार्ग**=मोक्ष मार्ग के, **विधे. विधानात्**=विधि का विधान करने से, **धाता असि**=विधाता हो, **त्वं एव**=आप ही, **भगवन्**=भगवन्, **व्यक्तं**=स्पष्टत, **पुरुषोत्तम. असि**=पुरुषोत्तम हो।

भावार्थ–हे त्रिलोक शिरोमणि! कैवल्य बोध होने से बुद्ध है, देवो, बुद्धिमानो से पूजित है, त्रिभुवन मे कल्याणकारी वीतराग भावो का सचार करने से शंकर हैं। मोक्ष मार्ग के विधि का विधान करने से विधाता हैं। भगवन्! इस ससार मे आप स्पष्टत. पुरुषो मे उत्तम नारायण हैं।

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्य नम क्षितितला मल भूषणाय।।
तुभ्यं नमस्त्रि जगत. परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि शोषणाय।।26।।

शब्दार्थ–**नाथ**=हे स्वामिन्, **त्रिभुवनार्ति हराय**=त्रिलोक की पीडा हरने वाले, **तुभ्यं नम**=तुम्हे नमस्कार, **क्षितितल अमल**=हे भूतल के निर्मल, **भूषणाय**=अलकार, **तुभ्य नम**=तुमको नमस्कार, **त्रिजगत परमेश्वराय तुभ्यं नम**=हे तीन जगत के परमेश्वर आपको नमस्कार, **भवोदधि शोषणाय**=भव सागर जल को सोखने वाले, **जिन**=हे जिनेश्वर, **तुभ्यं नम**=तुम्हे नमस्कार है।

भावार्थ–हे तिरण तारण प्रभो! आप तीन लोक की व्यथा-यातनाओ को हरने वाले है। निर्मल आदर्श जीवन के अलकार हो, सर्व श्रेष्ठ ऐश्वर्य के स्वामी हो। हे जिनेश्वर! भव सागर जन्म-जरा-मरण को सोखने वाले अगत्स्य हैं, इसलिए आपको हमारा बारम्बार नमस्कार है।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर-शेषै,
त्व सश्रितो निरवकाश तया मुनीश!
दोषैरुपात्त विविधाश्रय जात-गर्वै,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोऽसि।।27।।

शब्दार्थ–**मुनीश**=हे मुनीश्वर, **यदि त्व**=अगर आप, **निरवकाशतया** =आश्रय रहित उन, **अशेषै गुणै**=सम्पूर्ण गुणो द्वारा, **सश्रित**=आश्रित हो, **अत्र क. विस्मय**=इसमे कौनसा आश्चर्य है, **विविधाश्रय**=अनेक स्थानो पर आश्रय, **उपात्त**=पा लेने से, **जात गर्वै**=गर्वित हुए, **दोषै**=दोषो ने, **कदाचित अपि**=कभी भी, **स्वप्नान्तरे अपि**=स्वप्नावस्था मे भी, **नाम**=नाम से आमत्रित, **न ईक्षित असि**=नही देखते हो तो कौनसा आश्चर्य है।

भावार्थ–हे आराध्य प्रवर! अनाश्रित बने जीव के समस्त सद्गुणो के आश्रय भूत है लेकिन अवगुणो को किचित् भी स्थान मिलने की गुजाईश नही है। और सर्वत्र स्थान पाने से गर्व से अहकारी बने दोषो मे रमणशीलो ने स्वप्न मे भी आपकी ओर नही देखा, न नाम सुनना चाहा तो इसमे आश्चर्य कौनसा है? वे क्यो आयेगे दोषो को अनाश्रय देने वाले के पास?

उच्चैरशोक तरुसश्रित मुन्मयूख-,
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टो-ल्लसत् किरण मस्त तमोवितान,
बिम्बं रवेरिव पयोधर पार्श्व वर्ति।।28।।

शब्दार्थ–**उच्चै अशोक तरु सश्रितं**=ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, **उन्मयूख**=ऊपर की ओर किरणो को फैलाने वाला, **भवत अमल रूप**=आपका निर्मल रूप, **स्पष्ट उल्लसत् किरण**=स्पष्टत चमकती

किरणो वाले, **अस्त तमो वितानं**=नष्ट किया अधकार के विस्तार को, **पयोधर पार्श्व वर्ति**=सघन मेघ के समीप रहे, **रवे बिम्ब इव**=सूर्य बिम्व की तरह, **नितान्त आभाति**=अत्यन्त शोभित होता है।

भावार्थ—हे निशोक! अशोक वृक्ष के नीचे, ऊपर की ओर दिव्य किरणो को विकीर्ण करने वाला आपका निर्मल रूप अत्यधिक भव्य मालूम होता है। जैसे-स्पष्ट रूप से चमकती किरणो वाला और अधकार के समूह को नष्ट करने वाला सूर्य मण्डल सघन बादलो के समीप शोभायमान हो रहा है।

सिंहासने मणि मयूख शिखा विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकाव-दातम्।
बिम्बं वियद् विलस दंशु लतावितान,
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्त्र रश्मेः।।29।।

शब्दार्थ—**मणि मयूख शिखा विचित्रे**=मणि किरणो के अग्र भाग से विचित्र वर्ण वाले, **सिंहासने**=सिहासन पर, **कनकावदातं**=स्वर्ण जैसा सुन्दर, **तव वपु**=तुम्हारा शरीर, **तुग. उदयाद्रि**=उन्नत उदयाचल के, **शिरसि**=शिखर पर, **वियद् विलसद्**=आकाश मे शोभित, **अशु**=किरण रूप, **लता**=लता, **वितान**=समूह वाले, **सहस्त्र रश्मे बिम्ब इव**=सूर्य बिम्ब के समान, **विभ्राजते**=शोभा प्राप्त है।

भावार्थ—हे जगत शिरोमणि! जिस प्रकार ऊँचे उदयाचल पर्वत के शिखर पर आकाश में लता के समान दूर तक प्रसृत प्रकाशमान किरणो वाला सूर्य शोभित हो रहा है उसी प्रकार बहुमूल्य मणिरत्नो की किरण प्रभा से अद्भुत रंगो वाले ऊँचे सिहासन पर आपका स्वर्ण सदृश दैदीप्यमान विशुद्ध शरीर शोभित हा रहा है।

कुन्दावदात चल चामर चारु शोभ,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छ-शाङ्क शुचि निर्झर वारिधार,
मुच्चैस् तट सुर गिरे रिव शांतकोम्भम्।।30।।

शब्दार्थ—**कुन्दावदात**=कुन्द पुष्प सदृश निर्मल उज्ज्वल, **चल चामर**=हिलते चामरो की, **चारु शोभ**=सुन्दर शोभा से युक्त, **कलधौत**=सुवर्ण के समान, **कान्त तव वपु**=कमनीय तुम्हारा शरीर, **उद्यच्छशाक**=उदय होते चन्द्रमा के समान, **शुचि निर्झर**=शुभ्र झरनो की, **वारिधार**=जलधारमय, **शातकौम्भ**=सुवर्णमीयी, **सुरगिरे**=सुमेरु पर्वत के, **उच्चै तट इव**=उच्च

तटो की तरह, विभ्राजते=सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ–हे पुरुषोत्तम! जैसे उदीयमान चन्द्रमा के समान पावन झरनो की पवित्र जलधाराओ से सुवर्णमय सुमेरु का ऊँचा शिखर शोभित होता है, उसी प्रकार देवो द्वारा कुन्द पुष्प सदृश दोनो ओर ढुराए जाने वाले चवरो की शोभायुत से शुभ्र स्वर्णिम काति वाला आपका वदन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है।

छत्रत्रय तव विभाति शशाङ्क कान्त-,
मुच्चै स्थित स्थगित भानुकर प्रतापम्।
मुक्ताफल प्रकर जाल विवृद्ध शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगत परमेश्वरत्वम्।।31।।

शब्दार्थ–शशाक कान्त=चन्द्रकाति वाले, **उच्चै स्थित**=ऊपर स्थित, **स्थगित भानुकर प्रताप**=रोक दिया सूर्य के प्रचण्ड ताप को, **मुक्ताफल**=मोतियो के, **प्रकर जाल**=समुदाय वाली झालरो से, **विवृद्ध शोभ**=बढी हुई शोभा, **तव छत्र त्रय**=आपके तीन छत्र **त्रिजगत**=तीन लोक के, **परमेश्वरत्व**=परमेश्वर्यता को, **प्रख्यापयत्**=प्रकट करते हुए, **विभाति**=शोभित हो रहे है।

भावार्थ–हे अन्तर्यामी प्रभो! आपके मस्तक पर स्थित तीनो छत्र-चन्द्र की काति, सूर्य के आतप का स्थतीकरण व मोतियो की झालर से चारो ओर अत्यधिक सुषमा के वर्धन से आपके त्रिलोक मे परमेश्वरत्व होने की सूचना जाहिर होती है।

गभीर तार रव पूरित दिग् विभागस्,
त्रैलोक्य लोक शुभसगम भूतिदक्ष.,
सद्धर्मराज जयघोषण घोषक सन्,
खे दुन्दुभिर् ध्वनति ते यशस. प्रवादी।।32।।

शब्दार्थ–गभीर तार रव पूरित=गम्भीर और ऊँचे स्वर से पूर्णतया गुजायमान, **दिग् विभाग**=दिग्मण्डल, **त्रैलोक्य लोक**=त्रिभुवन के लोगो को, **शुभ सगम भूति दक्ष**=शुभ समागम की विभूति देने मे कुशल, **सद्धर्मराज**=समीचीन धर्म प्रणेत्ता तीर्थेश प्रभु के, **जय घोषण**=जय-जयकार की घोषणा, **घोषक**=करता हुआ, **दुन्दुभि**=नगाडा-भेरी, **खे**=आकाश मे, **ते यशस प्रवादी**=आपके यश का विशेष कथन करता, **सन्**=हुआ, **ध्वनति**=गुजार कर रहा है।

भावार्थ–हे यशस्विन्! स्पष्ट गम्भीर ध्वनि से सर्व दिशाऐ गुजायमान

हो रही, त्रिगजत के प्राणियो को शुभ समागम की सूचना करती हुई व सर्वश्रेष्ठ धर्म तीर्थ स्वामी की जय जयकार करती हुई दुन्दुभि आपके परम यशस्वी होने का नभ मण्डल मे विशेष कथन कर रहा है।

मन्दार सुन्दर नमेरु सुपारिजात-
सन्तान-कादि कुसुमोत् कर वृष्टिरुद्धा।
गंधोद बिन्दु शुभ मन्द मरुत् प्रपाता,
दिव्या दिव· पतति ते वचसां ततिर्वा।।33।।

शब्दार्थ–गंधोद बिन्दु=सुगधित जल बिन्दुओ से, **शुभ मद**=सुखद मन्द, **मरुत प्रपाता**=हवा के साथ गिरती, **उद्धा**=उर्ध्वमुखी, **दिव्या**=मनोहर, **मंदार सुन्दर नमेरु सुपारिजात सन्तानकादि**=मदार, सुन्दर, सुमेरु, सुपारिजात सन्तानक आदि, **कुसुमोत्कर**=पुष्पो के समूह की, **वृष्टि**=वर्षा, **ते वचसां**=वे वचनो की, **तति**=पक्ति हो, **वा दिव पतति**=अथवा आकाश से गिरती है।

भावार्थ–हे कल्प तरु! आपके समवशरण मे सुगधित जल बूदे मद पवन के साथ मन्दार, सुन्दर नमेरु पारिजात और सन्तानक आदि विविध वर्णी पुष्पो की वृष्टि होती है। उस समय ऐसा लगता है कि आपके श्री मुख से दिव्य वचनो की वर्षा क्रमबद्ध प्रवाहित हो रही है।

शुम्भत् प्रभावलय भूरि विभा विभोस्ते,
लोकत्रय द्युतिमता द्युति-माक्षिपन्ती।
प्रोद्यद् दिवाकर निरतर भूरि संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम सौम्याम्।।34।।

शब्दार्थ–लोकत्रय द्युतिमता=तीन लोक के कातिमान्, **द्युति**=चमक को, **आक्षिपन्ती**=तिरस्कृत करती हुई, **ते विभो**=उन प्रभु की, **शुम्भत् प्रभावलय**=शुभ्र भामण्डल की, **भूरि विभा**=अतिशय प्रभा, **दीप्त्या**=दीप्ति से, **प्रोद्यद्**=उदय होते हुए, **दिवाकर**=निरतर सूर्यो, **भूरि सख्या**=अनेक सख्या वाले, **सोम सौम्या**=चन्द्रमा के समान सौम्य होने पर, **अपि**=भी, **निशां अपि**=रात्रि को भी,· **जयति**=जीतती है।

भावार्थ–हे विश्व विजयिन्! आपके प्रकाश्यमान भामण्डल की प्रभा ऊर्ध्व, तिर्यग् और अधो के प्रधान पदार्थो की काति को तिरस्कृत-लज्जित कर देने वाली अतापित, एक साथ उदीयमान सहस्त्रो सूर्यो की किरण और पूर्णमासी के सौम्य शीतल चन्द्र की चन्द्रिका को भी पराभूत करने वाली है।

स्वर्गा-पवर्ग गममार्ग विमार्गणेष्ट,
सद्धर्मतत्व कथनैक पटुस् त्रिलोक्या।
दिव्य ध्वनिर् भवति ते विशदार्थ सर्व,
भाषा स्वभाव परिणाम गुणै प्रयोज्य॥35॥

शब्दार्थ–स्वर्गापवर्ग=स्वर्ग और निर्वाण, गम मार्ग=जाने के मार्ग, विमार्गणेष्ट=बताने मे सहायक, सद्धर्म तत्व कथनैक पटु=सुधर्म तत्त्व के कथन करने मे प्रवीण, त्रिलोक्या=तीन लोक मे विशदार्थ=विस्तृत अर्थ, सर्वभाषा=सब भाषाओ मे, स्वभाव परिणाम गुणै प्रयोज्य=स्वभाविक परिवर्तित होने वाले, ते दिव्य ध्वनि=आपकी वह दिव्य वाणी, भवति=होती है।

भावार्थ–हे शिवपथ प्रणेता! आपकी आलौकिक दिव्य देशना, स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग दिखाने मे परम प्रिय मित्र के समान, तीन लोक के प्राणियो को सत्य धर्म और सद् वस्तु का स्वरूप कहने समझाने मे समर्थ, विस्तृत अर्थ बोध को कराने वाली तथा समस्त भाषाओ मे परिवर्तित होने से विलक्षण गुण से समृद्ध है।

उन्निद्र हेम नवपकज पुञ्जकान्ति,
पर्युल्ल सन्नख मयूख शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्त,
पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति॥36॥

शब्दार्थ–जिनेन्द्र=हे जिनेश्वर!, उन्निद्र=ताजे खिले हुए, हेम नव=सुनहरे नव विकसित, पकज पुज काती=कमल के समूह सम काति वाले, पर्युल्लसन=सर्व ओर तरगित, नख मयूख=नाखूनो की किरणो के, शिखाभिरामौ=अग्रभाग से सुन्दर, तव पादौ=आपके चरण युगल, यत्र पदानि धत=जहा कदम रखे जाते है, तत्र विबुधा=वहा देवगण, पद्मानि परिकल्पयन्ति=कमलो की रचना करते जाते है।

भावार्थ–हे जिनेन्द्र! विकस्वर अभिनव स्वर्ण कमलो की काति वाले तथा सब ओर फैलने वाली नाखूनो की प्रभा के अग्रभाग से अतीव मनोहर लगने वाले आपके चरण युगल जहा जहा रखे जाते है, वहा-वहा भक्त देवगण पहले से स्वर्ण कमलो को स्थापित कर देते है। इससे द्विगुणित प्रतीति होती है।

इत्थ यथा तव विभूतिर भूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।

यादृक्प्रभा दिनकृत. प्रहतान्ध कारा
तादृक्कुतो ग्रह गणस्य विकासिनोऽपि।।37।।

शब्दार्थ–**जिनेन्द्र**=हे जिनेन्द्रदेव!, **इत्थं**=इसी प्रकार, **धर्मोपदेशन विधौ**=धर्मोपदेश के विधान मे, **यथा तव**=जैसा आपका, **विभूति**=अप्रतिहत वाणी वैभव, **अभूत्**=था, **तथा परस्य**=वैसा दूसरे धर्मप्रवर्तको का नही, **दिनकृत· प्रभा**=सूर्य की ज्योति, **यादृक**=जितनी, **प्रहतान्धकारा**=अधकार का नाश करने वाली है, **तादृक्**=उतनी प्रभा, **विकासिन**=उदित होते हुए **अपि**=भी, **ग्रहगणस्य कुत**=तारागणो मे कहा से?

भावार्थ–हे देवाधिदेव! धर्म देशना देते समय समवशरण मे अष्ट महा प्रातिहार्य रूप विभूति जैसी आपकी है, वैसी विभूति अन्य देवो को प्राप्त नही। हे प्रज्ञा पुज! अधकार को नष्ट करने वाली प्रभा जो सूर्य की है वो चमक नक्षत्र एव तारा गण मे कहा?

श्च्योतन् मदाविल विलोल कपोलमूल,
मत्त भ्रमद् भ्रमरनाद विवृद्धकोपम्।
ऐरावताभ-मिभ-मुद्धत मापतन्त,
दृष्ट्वा भय भवति नो भवदा-श्रितानाम्।।38।।

शब्दार्थ–**श्च्योतन्**=झरते हुए, **मद**=मदद्राव से, **आविल**=मलिन, **विलोल**=चचल, **कपोल मूल**=गालो के मूल भाग-गण्डस्थल-कनपटी पर, **मत्त भ्रमद् भ्रमर नाद**=बेसुध मडराते हुए भौरो के गुजार से, **विवृद्ध कोपं**=क्रोध बढ रहा है, **ऐरावताभ**=ऐरावत हाथी की तरह, **आपतन्तम्**=..ामने आते हुए, **उद्धत**=दुर्दान्त उद्दण्ड, **इभ दृष्ट्वा**=हाथी को देखकर, **भवदाश्रिताना भय**=आपके आश्रितो को भय, **नो भवति**=नही होता है।

भावार्थ–हे शरणागत! जिसके चचल कपोल झरते मद से मलिन, चचल गण्ड स्थल पर मण्डराते मदोन्मत भौरो की गुजार से अत्यन्त क्रुद्ध बना ऐरावत सदृश विशालकाय हाथी भी आक्रमण करे तो भी तुम्हारे चरण शरण मे रहे श्रद्धालुभक्त एकदम निर्भय रहता है।

भिन्नेभ कुम्भ गलदुज्ज्वल शोणि-ताक्त
मुक्ताफल प्रकर भूषित भूमिभाग.।
बद्धक्रम क्रमगत हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम युगाचल सश्रित ते।।39।।

शब्दार्थ–**भिन्नेभ**=विदीर्ण हाथी के, **कुम्भ गलद्**=गण्ड स्थल से टपकते हुए, **उज्ज्वल शोणित**=उज्ज्वल रक्त से, **अक्त**=लिपटे, **मुक्ताफल**

प्रकर=मोतियो के समूह से, भूषित भुमि भाग=भू प्रदेश को विभूषित किया, बद्धक्रम=छलाग मारने उद्यत, हरिणाधिप. अपि=सिह भी, क्रम=पजे के बीच, गत=फसे, क्रम युगाचल=चरण युगल रूप पर्वत के, सश्रित=आश्रित पर, न आक्रामति=आक्रमण नही करता।

भावार्थ–हे अपराजेय शक्तिवान्! जिसने विशालकाय हाथिया के मस्तक को विदीर्ण कर, रक्तरजित उज्ज्वल मोतियो के ढेर से भू प्रदेश को अलकृत कर दिया हो, जो चौकडी बांधकर-स्व-पराक्रम द्वारा आक्रमण करने तैयार हो, ऐसा विकराल सिह भी आपके अचल चरणो की शरण लेने वाले भक्त पर आक्रमण नही कर सकता, चाहे वह भक्त सिह के पैरो के सन्निकट ही क्यो न हो।

कल्पान्त काल पवनोद्धत वह्नि कल्प,
दावानल ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्-फुलिङ्गम्
विश्व जिघत्सु-मिव-सम्मुख-मापतन्त,
त्व-न्नाम कीर्तन जल शमयत्य शेषम्।।40।।

शब्दार्थ–कल्पान्त काल पवन उद्धत=प्रलयकाल के पवन से उत्तेजित, वह्नि कल्प=अग्नि के सदृश, ज्वलित उज्ज्वल=प्रज्वलित विशुद्ध, उत्स्फुलिग=ऊपर को उडती हुई चिनगारिया, विश्व जिघत्सु इव=ससार को निगलने वत, सम्मुख आपतन्त=सामने आती हुई, दावानल=वनाग्नि को, त्वन्नाम=तुम्हारे नाम, कीर्तन जल=स्मरण रूपी जल, अशेष=पूर्णत, शमयति=बुझा देता है।

भावार्थ–हे अद्वितीय महामेघ! प्रलयकाल के प्रचण्ड वायु वेग से प्रज्ज्वलित अग्नि उज्ज्वल चिनगारिया-तिलगे फैकती हुई ससार को भस्म करने की कामना से दावानल का रूप लेकर द्रुत गति से बढती है, वैसी प्रचण्ड दावाग्नि भी आपके नाम रूपी जलधारा के प्रभाव से शीघ्र पूर्णत शात हो जाती है। यह आप श्री के अतिशय का ही कारण है।

रक्तेक्षण समद कोकिल कण्ठनील,
क्रोधोद्धत फणिन मुत्फण-मापतन्तम्
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्त शकस्,
त्वन्नाम नागदमनी हृदि यस्य पुंस ।।41।।

शब्दार्थ–यस्य पुस हृदि=जिस पुरूष के हृदय मे, त्वन्नाम नागदमनी=आपके नाम रूपी नाग दमनी है, निरस्त शक=शक विहीन हुआ रक्तेक्षण=लाल नेत्रो वाले, समद कोकिल=उन्मत्त कोयल के

कण्ठ नीलं=कण्ठवत्, **क्रोधोद्धत**=क्रोधोन्मत्त-फुफकारते हुए, **आपतन्त**=सामने आते, **उत्फणं**=फण उठाए, **फणिनं**=फनधर सर्प को, **क्रमयुगेन**=दोनो पैरो से, **आक्रामति**=लाघ जाता है।

भावार्थ—हे अप्रतिम क्षेमकर! जिसके अन्त करण मे आपके नाम की नाग दमनी-जडी विद्यमान है, वह भक्त, लाल आखो वाले मत्तवाले कोयल कण्ठ सदृश काले, क्रोधावेश मे फुफकारते, फण उठाए सामने आ रहे भयानक सर्प को भी अपने पैरो से नि शक लाघ जाता है।

वल्ग-त्तुरङ्ग गजगर्जित भीमनाद-
माजौ बल बलवता-मपि भूपतीनाम्
उद्यद् दिवाकर मयूख शिखा पविद्ध,
त्वत् कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति।।42।।

शब्दार्थ—**आजौ**=युद्ध क्षेत्र मे, **त्वत् कीर्त्तनात्**=आपके कीर्तन से, **वल्गात्**=हिनहिनाते, **तुरग**=घोडो, **गज गर्जित**=हाथियो की गर्जना से, **भीमनाद**=भयकर आवाज हो, **बलवता भूपतीनां अपि**=बलशाली तेजस्वी सम्राटो की भी, **बलं**=सेना को, **उद्यद् दिवाकर**=उदीयमान सूर्य की, **मयूख शिखा**=किरणो के अग्रभाग से, **पविद्ध**=छिन्न-भिन्न हुए, **तम इव आशु**=अधकार वत् शीघ्र, **भिदां उपैति**=विनष्ट हो जाती है।

भावार्थ—हे निर्बलबलिन्! रणक्षेत्र मे शक्तिशाली युद्ध-निष्णात तेजस्वी राजाओ की सेना मे घोडे हिनहिनाते हो और हाथियो की भयानक गर्जना रही हो, अति भीषण कोलाहल मच रहा हो, वह सभी आपके नाम से सहसा उसी प्रकार विच्छिन्न हो जाते है, जिस प्रकार प्रभातिक सूर्य की किरणो से रात्रि का घोर अधकार।

कुन्ताग्र भिन्न गजशोणित वारिवाह,
वेगावतार तरणात्तुरयोध भीमे।
युद्धे जय विजित दुर्जयजेय पक्षास्-,
त्वत् पादपकज वनाश्रयिणो लभन्ते।।43।।

शब्दार्थ—**कुन्ताग्र**=बरछी, भालो की नोक से, **भिन्न**=भेदित हुए, **गज शोणित**=हाथियो के रक्तरूपी, **वारिवाह**=जल प्रवाह मे, **वेगावतार**=वेग से उतरने मे, **तरणात्तुर**=तैरने के लिए आतुर, **योध भीमे**=योद्धाओ से भयकर, **युद्धे**=युद्ध मे, **दुर्जय**=कठिनता से जीते जाने वाले, **जेय पक्षा**=शत्रु पक्ष को **विजित**=जीत लिया, **जय**=विजय, **लभन्ते**=प्राप्त करते है, **त्वत् पाद पकज**=आपके चरण कमल, **वनाश्रयिण**=वन का सहारा लेने वाले।

भावार्थ–हे दुर्जेय! भालो के नोक से घायल हाथियो के तीव्रगामी रक्त प्रवाह को तैरने मे भी जो व्याकुलता अनुभव करते हो, वे असमर्थ-नि सत्व साहसहीन बने योद्धा आपके चरण कमल वन का आश्रय लेकर युद्ध निष्णात दुर्जेय पक्ष के वीर योद्धाओ को जीतकर विजय श्री वर लेते हैं।

अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्रचक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखर स्थित यानपात्रास्,
त्रास विहाय भवत स्मरणाद् व्रजन्ति।।44।।

शब्दार्थ–क्षुभित भीषण=क्षुब्ध हुए भयकर, नक्र चक्र=मगरमच्छो के समूह, पाठीन पीठ=भीमकाय मछलियो के पीठ से, भयद् उल्वण वाडवाग्नौ=भयकर साक्षात बडवानल युक्त, अम्भोनिधौ=समुद्र मे, रङ्गत्तरङ्ग=वेग से लहराती लहरो के, शिखर स्थित=शिखर पर डगमगाते, यान पात्रा=जहाज है, भवत स्मरणात्=आपके स्मरण से, त्रास विहाय=घबराहट को छोडकर, व्रजंति=बढते चले जाते है।

भावार्थ–हे तारण हार! जिस सागर मे भयानक मगरमच्छ, विशालकाय मछलिया उछल रही है, वडवानल से जिसका पानी उबल रहा हो, ऐसी भयानक लहराती तरगो के नोक पर जिनकी नैया डममगाती झूलती हो उस विकट अवस्था मे भी आपका स्मरण रखने वाला भक्त निर्भयतापूर्वक सकुशल सागर को पार कर लेता है।

उद्भूत भीषण जलोदर भारभुग्ना,
शोच्या दशा-मुपगताश् च्युत जीविताशा।
त्वत् पादपकज रजोऽमृत दिग्धदेहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्यरूपा।।45।।

शब्दार्थ–उद्भूत भीषण=उत्पन्न हुए भयानक, जलोदर भार भुग्ना=जलोदर के भार से झुके, शोच्या दशा=शोचनीय अवस्था को, उपगता=प्राप्त, च्युत जीवित आशा=छोड दी जीने की आशा, त्वत् पाद पकज=आपके चरण कमलो की, रज अमृत=रज रूपी अमृत से, दिग्ध देहा=सरसब्ज कर लिया शरीर पिण्ड को, मर्त्या=मनुष्य, मकर ध्वज=कामदेव के, तुल्य रूपा=सदृश रूपवान्, भवन्ति=होते है।

भावार्थ–हे जीवन प्रदाता! जो जलोदर के भयकर रोग से अत्यन्त दुखी है, जीवन की आशा जिसने छोड दी है। ऐसी अत्यन्त दयनीय अवस्था को प्राप्त पुरुष यदि आपके चरणो की रज रूप अमृत को अपने

शरीर पर लगाने मात्र से निरामय और कामदेव के समान रूपवान हो जाते है।

आपाद कण्ठमुरु श्रृखल वेष्टितांगा
गाढं बृहन् निगड कोटि निघृष्ट जघा।
त्वन् नाम मंत्रमनिशं मनुजा· स्मरन्तः,
सद्य· स्वयं विगतबध भया भवन्ति।।46।।

शब्दार्थ–**आपाद कण्ठ**=पाव से कठ तक, **उरु श्रृंखल वेष्टितागा**=जघा जजीरों से जकडे अग वाले, **गाढं**=अत्यन्त कसकर बाधे, **बृहन् निगड कोटि**=बडी बेडियो के किनारो से, **निघृष्ट जघा**=रगड खा छिल गई जघाए, **मनुजा**=मनुष्य, **त्वन् नाम मत्र अनिश**=आपके नाम रूपी मत्र को निरन्तर, **स्मरन्तः**=स्मरण करते हुए, **सद्य**=शीघ्र, **स्वयं**=अपने आप, **विगत बंधभया**=बधन के भय से मुक्त, **भवन्ति**=होते है।

भावार्थ–हे बघन मोचक। जो पैर से लेकर कण्ठ तक साकलो के मजबूत बधनो से बधे है, श्रृखलाओ के तीक्ष्ण धार के किनारो की रगड से जिनकी जघाए छिल गई है। ऐसे कारागृह मे आजन्म कैद भोगने वाले पुरुष भी आपके नाम का अविराम स्मरण करे तो बधन के भय से मुक्त हो जाते है।

मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज-दावा-नलाहि-
सग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाश-मुपयाति भय भियेव,
यस्तावक स्तवमिमं-मतिमान-धीते।।47।।

शब्दार्थ–**य**=जो, **मतिमान**=बुद्धिमान्, **तावक**=तुम्हारे, **इम स्तव**=स्तोत्र को, **अधीते**=पढता है, **तस्य**=उसका, **मत्त द्विपेन्द्र**=वह मदोन्मत्त हस्ती, **मृगराज**=सिह, **दवानल**=दावाग्नि, **अहि**=सर्प, **सग्राम**=युद्ध, **वारिधि**=समुद्र, **महोदर**=जलोदर, **बन्धनोत्थम्**=बधन से उत्पन्न, **भय भिया**=भय से भयभीत होकर, **इव आशु नाश**=मानो शीघ्र ही विनाश को, **उपयाति**=प्राप्त होता है।

भावार्थ–हे अभय मूर्ते। जो बुद्धिमान पुरूष आपके इस स्तोत्र को भाव सहित पढता है उसका मदोन्मत्त गजराज, सिह, दावानल, भुजग, सग्राम, सागर, जलोदर, बधन जन्य भय, स्वय ही भयभीत होकर दूर हट जाता है।

स्तोत्रस्त्रज तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धा,
भक्त्या मया रुचिर वर्ण विचित्र पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगता-मजस्त्र,
त मानतुङ्ग-मवशा समुपैति लक्ष्मी ।।48।।

शब्दार्थ–**जिनेन्द्र**=हे जिनेन्द्र! **इह**=इसलोक मे, **य जन**=जो मनुष्य, **भक्त्या**=भक्ति से, **मया**=मेरे द्वारा, **तव गुणै**=आपके गुणो से, **निबद्धां**=रचित, **रुचिर वर्ण**=स्वर और व्यञ्जनादि वर्णो से मनोहर, **विचित्र पुष्पा**=विविध सुमनो वाले, **स्तोत्र स्त्रजं**=स्तोत्र रूपी माला को, **अजस्त्र**=निरन्तर, **कण्ठगता धत्ते**=गले मे धारण करता है, **त मानतुग**=उन मानतुगाचार्य को, **अवशा**=विवश होकर, **लक्ष्मी समुपैति**=लक्ष्मी प्राप्त होती है।

भावार्थ–हे जिनेन्द्र! मैने भक्तिवश ये आपके गुणो की स्तोत्र रूपी माला तैयार की है, जो मनोहर वर्ण रूपी नानाविध फूलो से युक्त है। जो भी आपके श्रेष्ठगुणो से निष्पन्न माला को सतत कण्ठाग्र रखता है, उसे मानतुगाचार्य की तरह विवश होकर लक्ष्मी स्वयमेव प्राप्त होती हे।

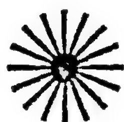
भक्तामर-स्तोत्र के चार काव्य

आदीश्वरो जिनवर शिवमार्गदर्शी, श्री नाभिराज शुचिवश समुद्रचन्द्र ।
इक्ष्वाकुवश रिपुमर्दन मुक्ति भोगी, शाखा कलाप कलित शिवशुद्ध मार्ग ।।1।।

कष्ट प्रणाश दुरित प्रशमेषु दक्ष, ज्ञानाम्बुधे! सुखय तारक विघ्नहर्त्त ।
मोहोपनोदन निवारित लोक कष्ट, ताल विधट्टय विभो! हृदयङ्ग मत्वम्।।2।।

श्री मानतुग गुरुणा कृत बीजमत्र, यत्र स्थितौ सकल पूज्य सुपादपीठ।
कारुण्यपूर सुखकन्द विशालगात्र, क्रौं घ्रौं दिवाकर कुरुष्व हिताय ह्री श्री।।3।।

त्व विश्वनाथ पुरुषोत्तम वीतराग, त्व जिनराज कथितौ मुनिगम्य रूप!।
उच्चाट भजन वपु खलु दु ख हन्त, त्व धर्मरक्षक जिन प्रपुनीहि देव।।4।।



कल्याण-मन्दिर स्तोत्र

आचार्य श्री सिद्धसेन जी

कल्याण-मन्दिर-मुदार-मवद्य-भेदि,
भीता भयप्रद-मनिन्दित-मङ्घ्रि पद्मम्।
ससार-सागर-निमज्ज-दशेष जन्तु-
पोतायमान-मभिनम्य जिनेश्वरस्य।।1।।

शब्दार्थ—**कल्याण मन्दिर**=कल्याण के मन्दिर, **उदारं**=उदार, **अवद्य भेदि**=पापो को भेदने वाले, **भीताभय प्रद**=डरे हुए को अभय देने वाले, **अनिन्दित**=अतिश्रेष्ठ, **ससार सागर निमज्जद्**=भव सागर मे डूबे हुए, **अशेष जन्तु**=सर्व प्राणियो के लिए, **पोतायमानं**=जहाज की तरह आधारभूत, **जिनेश्वरस्य**=जिनेश्वर देव के, **अंघ्रि पदम्**=चरण कमलो को, **अभिनम्य**=नमस्कार करके।

भावार्थ—हे जगदाधार! ससार सागर से तिराने के प्रमुख केन्द्र, अत्यन्त उदार वृत्ति वाले, पाप कर्मो को नष्ट करने वाले, भयान्वित को अभय देने वाले, श्लाधनीय आदर्श जीवन जीने वाले, भव सागर मे गिरते प्राणियो के लिए जहाज सदृश आधारभूत है, उन जिनेश्वर देव के चरण कमलो को नमस्कार करके।

यस्य स्वयं सुरगुरुर् गरिमाम्बु राशे,
स्तोत्रं सुविस्तृत मतिर् न विभुर् विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय-धूमकेतोस्,
तस्याह-मेष किल सस्तवन करिष्ये।।2।।

शब्दार्थ—**यस्य गरिमा**=जिसकी महिमा, **अम्बुराशे**=सागर के समान है, **स्तोत्रं विधातुं**=स्तुति करने के लिए, **सुविस्तृत मति**=विशाल बुद्धिवाला, **स्वय सुर गुरु**=स्वय बृहस्पति, **विभु न**=समर्थ नही है, **कमठस्मय**=कमठस्मय के अहकार को चूरने, **धूमकेतो**=धूमकेतु के समान, **तस्य तीर्थेश्वरस्य**=उन तीर्थपति की, **किल**=आश्चर्य है, **एष अह**=यह मै, **सस्तवन करिष्ये**=स्तवन करूगा।

भावार्थ—हे जगत्वद्य जो कमठासुर दैत्य के मायावी पाखण्ड के मद को नष्ट करने मे धूमकेतु बनकर आए, गौरव-गरिमा के अथाह सागर जिनकी स्तुति अतिशय बुद्धिमान देवताओ के गुरु-वृहस्पति स्वय करने मे असमर्थ है, आश्चर्य है मै उन तीर्थेश प्रभु की स्तुति करूगा।

सामान्य-तोऽपि तव वर्णयितु स्वरूप-
मस्मादृशा कथमधीश! भवन्त्य-धीशा ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूप प्ररूपयति कि किल घर्मरश्मे.? ।।3।।

शब्दार्थ–अधीश=हे स्वामिन्!, सामान्यत अपि=साधारण रूप से भी, तव स्वरूप वर्णयितु=आपके स्वरूप का कथन करने के लिए, अस्मादृशा.=मुझ जैसे, कथ अधीशा=कैसे समर्थ, भवन्ति=हो सकते है, यदि वा=अथवा जैसे, दिवान्ध=दिन का अधा, कौशिक शिशु=उल्लू का बच्चा, धृष्ट अपि=ढीठ होकर भी, कि किल घर्मरश्मे=क्या सूर्य के, रूपं प्ररूपयति=रूप का वर्णन कर सकता है? नही।

भावार्थ–हे असीम महिमान्! आपके अनन्त ज्योतिर्मय स्वरूप का साधारण सा वर्णन करने के लिए भी हम सरीखे मन्द बुद्धि वाले कैसे समर्थ हो सकते है? जैसे दिन मे नही देखने वाला उल्लू का बच्चा ढीठ क्यो न हो, वह प्रचण्ड रश्मियो वाले जगमगाते सूर्य-मण्डल का वर्णन यत्किचित भी कर सकता है?

मोह क्षयादनु-भवन्नपि नाथ! मर्त्यो,
नून गुणान् गणयितु न तव क्षमेत।
कल्पान्त वान्त पयस प्रकटोऽपि यस्मान्-
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशि ? ।।4।।

शब्दार्थ–नाथ=हे नाथ! मर्त्य=मनुष्य, मोहक्षयात्=मोह कर्म के क्षय होने से, अनुभवन्=अनुभव करता हुआ, तव गुणान्=आपके गुणो को, गणयितु=गिनने के लिए, नून न क्षमेत=निश्चय ही असमर्थ रहता है, यस्मान्=क्योकि, कल्पान्तवान्त पयस=प्रलयकाल के वायुवेग से बाहर आये जल मे, जलधे=समुद्र की, प्रकटोऽपि रत्न राशि=स्पष्ट दिखने वाली रत्न राशि भी, ननु=निश्चित, केन मीयेत=किससे गिनी जा सकती है?

भावार्थ–हे जगभूषण! मोहनीय कर्म को क्षय करने वाला महापुरुष केवल ज्ञान से आपके गुणो को अवश्यमेव जान लेता है किन्तु उसका वह पूर्णरूपेण कथन नही कर सकता। प्रलयकाल के साथ आगत अथवा जल स्तर घटने पर समुद्र की रत्न राशि स्पष्ट दिखायी देती है फिर भी क्या कोई उस रत्न राशी की गणना कर सकता है? नही।

अभ्यु-द्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तव लसदसख्य गुणाकरस्य।

बालोऽपि किं न निज बाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बु राशे.?।।5।।

शब्दार्थ–नाथ=हे स्वामिन्!, बालोऽपि=बालक भी, स्वधिया=अपनी बुद्धि के अनुरूप, निज बाहु युगं=अपनी भुजाओ को, वितत्य=फेलाकर, अम्बुराशेः विस्तीर्णतां=सागर के अथाह विस्तार को, कथयति कि न=क्या नही कहता है, जडाशय अपि=जड बुद्धि होने पर भी, असख्य गुणाकरस्य=अपरिमित गुणो की, लसद्=शोभा वाले, तव स्तव=आपके स्तवन को, कर्तुं=करने के लिए, अभ्युद्यत. अस्मि=तैयार हुआ हू।

भावार्थ–हे भगवन्! मै जड बुद्धि होकर भी अपरिमित गुणो के आकर स्तवन को करने के लिए तैयार हुआ हू। जैसे अबोध बालक सहज भाव से अपनी छोटी-छोटी दोनो भुजाए फैलाकर विशाल सागर के विस्तार को बतलाने की कोशिश करता है।

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास् तवेश!
वक्तु कथं भवति तेषु ममावकाश·?
जाता तदेव-मसमीक्षित-कारितेय,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।6।।

शब्दार्थ–ईश=हे प्रभो!, ये तव गुणा=जो आपके गुण, योगिना अपि=योगियो द्वारा भी, वक्तु=कहने मे, न यान्ति=नही आ सकते?, तेषु मम कथ=उनमे मेरा कैसे, अवकाश भवति=स्थान हो सकता हे वातदेव=अथवा वही, इयं=यह, असमीक्षित=बिना सोच विचार, कारिता=किये, ननु=निश्चय ही, निज गिरा=अपनी वाणी से, पक्षिणा अपि=पक्षी वर्ग भी, जल्पन्ति=बोलते है।

भावार्थ–हे गुण सागर! जिन अपरिमित गुणो का यथार्थ वर्णन करने मे प्रसिद्ध योगी और धुरन्धर विद्वान भी समर्थ नही, उन गुणो का वर्णन मेरे जैसा अल्पज्ञ साधक कैसे कर सकता हे? स्तुति प्रारम्भ से पूर्व सामर्थ्य का विचार किये बगैर क्रियान्विति वस्तुत अनुचित है। मानवीय वाणी बोलने मे असमर्थ पशु पक्षी भी अपनी भाषा मे बोलते है, उसी प्रकार मै भी अपनी अस्पष्ट भाषा मे आपकी स्तुति करता हू।

आस्ता-मचिन्त्य महिमा जिन! सस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रा-तपोपहत-पान्थ जनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरस· सरसोऽनिलोऽपि।।7।।

शब्दार्थ–जिन=हे जिनेन्द्र!, अचिन्त्य महिमा=अपूर्व महिमा वाली, ते सस्तव=आपकी स्तुति, आस्ता=दूर रहे, भवत नामऽपि=आपका नाम भी, भवत=सिधु के दु खो से, जगन्ति=लोगो को, पाति=बचा लेता है, निदाघे=ग्रीष्मकाल मे, तीव्र=तेज, आतप उपहत=धूप से सताए, पान्थ जनान्=पथिक जनो को, पद्म सरस=कमल सरोवर का, सरस= शीतल, अनिल अपि=पवन भी, प्रीणाति=सतुष्ट कर देता है।

भावार्थ–हे सातिशय जिनेन्द्र! जैसे ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड धूप से व्याकुल बने राहगीरो को आनन्द देने वाले कमल सरोवर का तो कहना ही क्या? उसकी ठण्डी हवा ही उन्हे सुखकर प्रतीत होती है, वैसे ही हे प्रभो! आपके अचिन्त्य महिमा वाले स्तवन का कहना ही क्या? वह तो दूर आपका नाम ही त्रिभुवन के प्राणियो को ससार के दारुण दु खो से बचा लेता है।

हृद वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति,
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धा ।
सद्यो भुजग-ममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वन शिखडिनि चन्दनस्य । ।8 । ।

शब्दार्थ–विभो=हे प्रभो!, त्वयि=आप, जन्तो=प्राणियो के, हृद्वर्तिनि=हृदय मे आते है तो, निविडा=सघन, कर्म बन्धा=कर्मो के बधन, अपि क्षणेन=भी क्षण भर मे, वन शिखण्डिनि=वन मयूर के, अभ्यागते=आने पर, चन्दनस्य=चन्दन के, मध्य भाग=मध्य भाग को लिपटे, भुजग=विषधरो की, अमया=कुडलियो की, इव=तरह, सद्य=शीघ्र, शिथिली भवन्ति=ढीले पड जाते है।

भावार्थ–हे विघ्नहर जिनेश! वन मयूर के आते ही मलयगिरि चन्दन के वृक्षो से लिपटे भयकर भुजगो की दृढ कुण्डलिया-आटे तत्क्षण ढीली पड जाती है, वे भागने लगते है, वैसे ही ध्यान मग्न भक्तो के मन मन्दिर मे आपके विराजमान होते ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का प्रगाढ बन्धन तत्क्षण अनायास शिथिल हो दूर हो जाता है।

मुच्यन्त एव मनुजा. सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रै-रुपद्रव शतैस् -त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो-स्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्टमात्रे,
चोरै-रिवाशु पशव प्रपलायमानै । ।9 । ।

शब्दार्थ–जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र! स्फुरित तेजसि=तेजस्वी गोस्वामिनि दृष्टमात्रे=गो पालक को देखते ही, आशु=शीघ्र,

बालोऽपि किं न निज बाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बु राशे? ।।5।।

शब्दार्थ–नाथ=हे स्वामिन्!, बालोऽपि=बालक भी, स्वधिया=अपनी बुद्धि के अनुरूप, निज बाहु युगं=अपनी भुजाओ को, वितत्य=फैलाकर, अम्बुराशेः विस्तीर्णता=सागर के अथाह विस्तार को, कथयति कि न=क्या नही कहता है, जडाशय' अपि=जड बुद्धि होने पर भी, असख्य गुणाकरस्य=अपरिमित गुणो की, लसद्=शोभा वाले, तव स्तव=आपके स्तवन को, कर्तुं=करने के लिए, अभ्युद्यत अस्मि=तैयार हुआ हू।

भावार्थ–हे भगवन्! मै जड बुद्धि होकर भी अपरिमित गुणो के आकर स्तवन को करने के लिए तैयार हुआ हू। जैसे अबोध बालक सहज भाव से अपनी छोटी-छोटी दोनो भुजाए फैलाकर विशाल सागर के विस्तार को बतलाने की कोशिश करता है।

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास् तवेश!
वक्तु कथं भवति तेषु ममावकाश?
जाता तदेव-मसमीक्षित-कारितेय,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।6।।

शब्दार्थ–ईश=हे प्रभो!, ये तव गुणा=जो आपके गुण, योगिना अपि=योगियो द्वारा भी, वक्तु=कहने मे, न यान्ति=नही आ सकते?, तेषु मम कथ=उनमे मेरा कैसे, अवकाश भवति=स्थान हो सकता है, वातदेव=अथवा वही, इय=यह असमीक्षित=बिना सोच विचार, कारिता= किये, ननु=निश्चय ही, निज गिरा=अपनी वाणी से, पक्षिणा अपि=पक्षी वर्ग भी, जल्पन्ति=बोलते है।

भावार्थ–हे गुण सागर! जिन अपरिमित गुणो का यथार्थ वर्णन करने मे प्रसिद्ध योगी और धुरन्धर विद्वान भी समर्थ नही, उन गुणो का वर्णन मेरे जैसा अल्पज्ञ साधक कैसे कर सकता है? स्तुति प्रारम्भ से पूर्व सामर्थ्य का विचार किये बगैर क्रियान्विति वस्तुत अनुचित है। मानवीय वाणी बोलने मे असमर्थ पशु पक्षी भी अपनी भाषा मे बोलते है, उसी प्रकार मै भी अपनी अस्पष्ट भाषा मे आपकी स्तुति करता हू।

आस्ता-मचिन्त्य महिमा जिन! सस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रा-तपोपहत-पान्थ जनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरस सरसोऽनिलोऽपि।।7।।

शब्दार्थ–जिन=हे जिनेन्द्र!, अचिन्त्य महिमा=अपूर्व महिमा वाली, ते सस्तव=आपकी स्तुति, आस्ता=दूर रहे, भवत. नामऽपि=आपका नाम भी, भवत=सिधु के दु खो से, जगन्ति=लोगो को, पाति=बचा लेता है, निदाघे=ग्रीष्मकाल मे, तीव्र=तेज, आतप उपहत=धूप से सताए, पान्थ जनान्=पथिक जनो को, पद्म सरस=कमल सरोवर का, सरस= शीतल, अनिल अपि=पवन भी, प्रीणाति=सतुष्ट कर देता है।

भावार्थ–हे सातिशय जिनेन्द्र! जैसे ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड धूप से व्याकुल बने राहगीरो को आनन्द देने वाले कमल सरोवर का तो कहना ही क्या? उसकी ठण्डी हवा ही उन्हे सुखकर प्रतीत होती है, वैसे ही हे प्रभो! आपके अचिन्त्य महिमा वाले स्तवन का कहना ही क्या? वह तो दूर आपका नाम ही त्रिभुवन के प्राणियो को ससार के दारुण दु खो से बचा लेता है।

हृद वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति,
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धा ।
सद्यो भुजग-ममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वन शिखडिनि चन्दनस्य ।।8।।

शब्दार्थ–विभो=हे प्रभो!, त्वयि=आप, जन्तो=प्राणियो के, हृद्वर्तिनि=हृदय मे आते है तो, निविडा=सघन, कर्म बन्धा=कर्मो के बधन, अपि क्षणेन=भी क्षण भर मे, वन शिखण्डिनि=वन मयूर के, अभ्यागते=आने पर, चन्दनस्य=चन्दन के, मध्य भाग=मध्य भाग को लिपटे, भुजग=विषधरो की, अमया=कुडलियो की, इव=तरह, सद्य=शीघ्र, शिथिली भवन्ति=ढीले पड जाते है।

भावार्थ–हे विघ्नहर जिनेश! वन मयूर के आते ही मलयगिरि चन्दन के वृक्षो से लिपटे भयकर भुजगो की दृढ कुण्डलिया-आटे तत्क्षण ढीली पड जाती है, वे भागने लगते है, वैसे ही ध्यान मग्न भक्तो के मन मन्दिर मे आपके विराजमान होते ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का प्रगाढ बन्धन तत्क्षण अनायास शिथिल हो दूर हो जाता है।

मुच्यन्त एव मनुजा सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रै-रुपद्रव शतैस् .त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो-स्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्टमात्रे,
चोरै-रिवाशु पशव प्रपलायमानै ।।9।।

शब्दार्थ–जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र!, स्फुरित तेजसि=तेजस्वी, गोस्वामिनि दृष्टमात्रै=गो पालक को देखते ही, आशु=शीघ्र,

प्रपलायमानै=भागते हुए, चौरै=चोरो के पजे से, पशव. इव=पशु छूट जाते है उसी तरह, त्वयि=आपको, वीक्षितेऽपि=देखते ही, मनुजा रौद्रै=मनुष्य महाभयकर, उपद्रव शतै=सैकडो उपद्रवो से, सहसा एव=शीघ्र ही, मच्युन्त=मुक्त हो जाते है।

भावार्थ–हे निर्बल के बल! गाव के पशुओ को चुराकर ले जाते चोर को ज्यो ही शक्तिसम्पन्न तेजस्वी ग्वाला नजर आता है, त्यो ही पशुधन उनके पजे से छूट जाता है। उसी प्रकार हे दीनानाथ! आपकी परम सौम्य मुख मुद्रा का दर्शन करते ही भक्त के सैकडो सकटो का तत्काल अवसान हो जाता है।

त्व तारको जिन! कथ भविनां ते एव
त्वा-मुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त।
यद्वा दृतिस् तरति यज्जल-मेष नून-
मन्त-र्गतस्य मरुत स किलानुभाव ।।10।।

शब्दार्थ–जिन=हे जिनेश्वर, त्व भविनां=तुम ससारियो के, तारक कथ=तारक कैसे, यत् उत्तरन्त=क्योकि पार होते हुए, ते एव=वे ही, हृदयेन त्वा=हृदय से आपको, उद्वहन्ति=तिराकर ले जाते हैं, यद्वा=अथवा जो, दृति=मसक, जल तरति=जल को तैरती है, स=वह, नून एव=निश्चय ही, अन्तर्गतस्य=अन्दर भरी हुई, मरुत=हवा का, किल=ही, अनुभाव=प्रभाव है।

भावार्थ–हे भवोदधि तारक! जैसे-अपने भीतर रहे पवन के प्रभाव से चमडे की मसक पानी पर तैरती हुई किनारे लग जाती है उसी प्रकार हे जिनेन्द्र प्रभो! भव्य जन ससार सागर से पार उतरते निज हृदय सिहासन पर आपको बिठाकर आपके ध्यान मे तल्लीन हुए भव सिन्धु को निर्विघ्न पार हो जाते है। इसमे भक्त की शक्ति नही, आपकी भक्ति ही प्रमुख होती है।

यस्मिन् हर-प्रभृत योऽपि हतप्रभावा',
सोऽपि त्वया रतिपति क्षपित क्षणेन।
विध्यापिता हुत भुज' पयसाथ येन,
पीत न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन? ।।11।।

शब्दार्थ–यस्मिन्=जिनके सामने, हर प्रभृतय अपि=हरिहर आदि देव भी, हत प्रभावा=निस्तेज हो गए, स रतिपति. अपि=वह कामदेव भी, त्वया क्षणेन=आपसे क्षण भर मे, क्षपित=नष्ट हो गया, अथ=क्योकि, येन पयसा=जिस जल से, हतभुज=अग्नि, विध्यापिता=वुझायी जाती है, तत् अपि=वह जल भी, कि दुर्धर=क्या प्रचण्ड, वाडवेन=वडवानल

द्वारा, न पीत=नही पिया गया।

भावार्थ–हे अनग विजयिन्! जिस कामदेव के सम्मुख सुप्रसिद्ध हरिहर आदि देव भी पराजित हो गए, उस त्रिभुवनजयी कामदेव को आपने क्षण भर मे नष्ट कर दिया। इसमे आश्चर्य जैसी क्या बात है? जो जल प्रचण्ड अग्नि काण्डो को बुझाकर शान्त कर सकता है, उसी जल को सागर का प्रचण्ड बडवानल क्या जला नही देता है? सोख नही लेता है।

स्वामिन् ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नास्,
त्वा जन्तव कथमहो हृदये दधाना?
जन्मोदधि लघु तरन्त्यति लाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महता यदि वा प्रभाव ।।12।।

शब्दार्थ–स्वामिन्=हे नाथ, अहो=आश्चर्य है कि, ननल्प गरिमाण अपि=अत्यन्त गौरव-गुरुतावान को, त्वा प्रपन्ना अपि=आपको पाकर भी, हृदये दधाना:=हृदय मे धारण करते, जन्तव=जीव, जन्मोदधि=भव सागर को, अति लाधवेन=अतीव लघुता से, कथ=कैसे, लघु तरन्ति=शीघ्र तिर जाते है, यदि वा=अथवा इस प्रकार, हन्त=आश्चर्य है कि, महता प्रभाव=महापुरुषो का प्रभाव, चिन्त्यो न=चिन्तन मे नही, भवति=होता है।

भावार्थ–हे त्रिभुवन तिलक! आश्चर्य है कि आप अनन्तानन्त गुरुता/गरिमा को प्राप्त है फिर भी जीवात्मा आपको हृदय मे धारण कर, लघुभूत हो, ससार सागर को अतिशीघ्र क्योकर पार हो जाते है? इसमे आश्चर्य ही कैसा? महापुरुषो का प्रभाव व प्रत्येक कार्य अचिन्त्य विस्मय जनक होता है।

क्रोधस्-त्वया यदि विभो! प्रथम निरस्तो,
ध्वस् तास् तदा वत कथ किल कर्मचौरा?
प्लोष-त्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके,
नील द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी?।।13।।

शब्दार्थ–विभो=हे प्रभो!, यदि त्वया=यदि आपने, क्रोध प्रथम=क्रोध को पहले ही, निरस्त=विफल कर दिया, तदा वद्=तब बतलाईये, कर्म चौरा कथ=कर्म रूपी चोरो को कैसे, ध्वस्त किल=नष्ट किया, लोके= ससार मे, यदि वा=अथवा, अगर, अमुत्र=इसलोक मे, हिमानी=पाला शिशिरापि=ठण्डा होने पर भी, कि नील द्रुमाणि=क्या हरे भरे वृक्षो वाले, विपिनानि=जगलो को, न प्लोषति=नही जला देता है?

भावार्थ–हे कोपजयी! यदि आपने क्रोध को पहले ही नष्ट कर दिया

तब बतलाईए आपने कर्म रूपी चोरो को कैसे नष्ट किया? इस ससार मे बर्फ-तुषार-पाला एकदम ठण्डा होने पर भी क्या हरे भरे वृक्षो वाले वन-उपवनो को नही जला देता है? अर्थात् जला देता है। अग्नि की अपेक्षा बर्फ की शक्ति महान है, वैसे ही क्रोध की अपेक्षा क्षमा की शक्ति विशेष प्रभावी एव गुणकारी है।

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्म रूप-
मन्वेष-यन्ति हृदयाम्बुज-कोशदेशे।
पूतस्य निर्मल रुचेर् यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सभवि पद ननु कर्णिकायाः ।।14।।

शब्दार्थ–**जिन**=हे वीतराग देव!, **योगिन**=योगी लोग, **सदा परमात्म रूप**=हमेशा परमात्म रूप मे, **त्वा हृदय अम्बुज**=आपको हृदय कमल के, **कोषदेशे अन्वेषयन्ति**=मध्य भाग मे ढूँढते है, **यदि वा**=अथवा अगर, **पूतस्य निर्मल रूचे**=पवित्र निर्मल काति वाले, **अक्षस्य सभवि पद**=कमल बीज का उत्पत्ति स्थल, **ननु कर्णिकाया**=निश्चय ही कर्णिका को छोडकर, **अन्यत् कि**=अन्य क्या है?

भावार्थ–हे तिरण तारण! आप परमात्म स्वरूप है, इसलिए महर्षि जन आपको सदैव अपने हृदय कमल के मध्य कर्णिका मे अपने ज्ञान नेत्र से खोजते है, वह ठीक ही है जैसे निर्मल काति वाले कमल के बीज का उत्पत्ति स्थान कमल की कर्णिका ही है, वैसे ही शुद्धात्मा के अन्वेषण का स्थान हृदय कमल का मध्य भाग ही है।

ध्याना-ज्जिनेश! भवतो भविन. क्षणेन,
देह विहाय परमात्म दशा व्रजन्ति।
तीव्रानला-दुपल भावमपास्य लोके
चामीकरत्व मचिरादिव धातुभेदा ।।15।।

शब्दार्थ–**जिनेश**=हे जिनेश!, **भविन भवत**=भव्य जीव आपको, **ध्यानात् क्षणेन**=ध्यान से क्षण भर मे, **दह विहाय**=शरीर को छोडकर, **परमात्म दशा**=परमात्म स्वरूप को, **व्रजन्ति**=पा लेते है, **लोके**=ससार मे, **धातु भेदा**=भेद वाली धातुए, **तीव्रानलाद्**=तीव्र अग्नि से, **उपलभाव**=पत्थर के रूप को, **अपास्य**=छोडकर, **चामी-करत्वं**=स्वर्ण रूप को, **अचिराद इव**=शीघ्र ही पा लेती है।

भावार्थ–हे अद्वितीय ज्ञान पुज! जिन धातुओ से सोना बनता है। वे धातुए तेज अग्नि के ताप से अपने पाषाण रूप को छोडकर शीघ्र स्वर्णमय

हो जाती है, उसी प्रकार विशुद्ध भावो से आपको अन्तर्हृदय मे ध्याते हुए भव्य जीव शीघ्र नश्वर देह को छोडकर परमात्म स्वरूप को पा जाते हैं।

अन्त. सदैव जिन! यस्य विभा व्यसे त्वं,
भव्यै कथं तदपि नाशयसे शरीरम्?
एतत् स्वरूपमथ मध्य विवर्तिनो हि,
यद् विग्रह प्रशमयन्ति महानुभावा.।।16।।

शब्दार्थ–**जिन**=हे जिनेन्द्र !, **भव्यै**=भव्यो के द्वारा, **यस्य अन्त**=जिस शरीर के भीतर, **त्वं सदैव**=आप हमेशा ही, **विभाव्यसे**=ध्याये जाते है, **तत् शरीरं अपि**=उस शरीर को भी, **कथ नाशयसे**=कैसे नष्ट करा देते है, **अथ**=यदि, **एतत् स्वरूप हि**=यह स्वभाव ही है, **यत्**=कि, **मध्य विवर्तिन**=मध्य मे रहा हुआ, **महानुभावा**=महापुरुष, **विग्रह प्रशमयन्ति**=अलगाव को शान्त करते हैं।

भावार्थ–हे प्रज्ञानिधे! जिस अन्तर्हृदय मे श्रद्धालु भक्त आपका निरन्तर ध्यान करते हैं उस शरीर के पृथक् करण का विपरीत उपदेश आप क्यो देते हैं? यह ठीक ही है कि जब महापुरुष मध्यस्थ बनते है तो शरीर और कलह को पूर्णतया समाप्त कर देते है। अत ध्याता का ध्यान शरीर विग्रह से छूट जाता है और वह स्वय ध्येय स्वरूप को प्राप्त हो मुक्त हो जाता है।

आत्मा मनीषिभि रयं त्वद-भेदबुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत् प्रभाव ।
पानीय-मप्यमृत-मित्यनु-चिन्त्यमानं,
कि नाम नो विष विकार मपाकरोति?।।17।।

शब्दार्थ–**जिनेन्द्र**=जिनेन्द्र प्रभो, **इह**=इसलोक मे, **मनीषिभि**=बुद्धिमानो के द्वारा, **त्वद्**=आपसे, **अभेद बुद्ध्या**=अभेद बुद्धि द्वारा, **ध्यातः**=ध्यान किया हुआ, **अयं आत्मा**=यह आत्मा, **भवद् प्रभाव**=आप जैसा प्रभावशाली, **भवति**=होता है, **अमृतं इति**=यह अमृत है, **अनुचित्यमानं**=चिन्तन रखते हुए, **पानीयं अपि**=ये पानी भी, **कि विष विकार**=क्या विष के दुष्प्रभाव को, **अपाकरोति**=दूर करता, **नो**=नही, **नाम**=नाम।

भावार्थ–हे जगदोद्धारक! जैसे-पानी अमृत है, ऐसी प्रबल भावना रखते हुए विश्वास सहित उपयोग मे लिया जाता है तो क्या वह विष के दुष्प्रभाव को समूलत नही मिटा देता है? अर्थात् मिटा देता है। उसी प्रकार जब अध्यात्म चेतना वाले मनीषी अभेद बुद्धि से आपका चितन करते है, व

ध्याते है तो उनकी साधारण स्वरूप वाली आत्मा भी आपके सदृश प्रभावशाली बन जाती है। वह परमात्म रूप हो जाती है।

त्वामेव वीत तमसं परवादिनोऽपि,
नून विभो! हरि-हरादि धिया प्रपन्ना।
किं काच कामलिभि-रीश! सितोऽपि शखो,
नो गृह्यते विविध वर्ण विपर्ययेण?।।18।।

शब्दार्थ–विभो=हे स्वामिन्!, वीततमस=अज्ञान अधकार से रहित, **त्वामेव**=आपको ही, **पर वादिन**=इतर मतावलम्बी, **अपि**=भी, **नूनं**=निश्चय से, **हरि हरादि धिया**=ब्रह्मादि की बुद्धि से, **प्रपन्ना**=पूजते है, **ईश**=हे ईश, **काच कामलिभि**=काच कामला होने से, **कि सित**=क्या सफेद, **शंख अपि**=शख भी, **विविध वर्ण विपर्ययेण**=अनेक रग बिरगे विपरीत वर्णो से, **नो गृह्यते**=ग्रहण नही किया जाता है?

भावार्थ–हे त्रिलोक शिखामणे! जैसे पीलिए रोग का रोगी पुरुष श्वेत वर्ण वाले शख को भी पीला नीलादि अनेक रगो वाला मानता है। उसी तरह इतर धर्म/पथ वाले पुरुष राग द्वेष आदि दोषो के कारण निर्दोष अज्ञ अधकार से रहित आपको ही विष्णु महादेव आदि मानकर पूजते है।

धर्मोपदेश समये सविधानु भावा-
दास्ता जनो भवति ते तरु रप्यशोक।
अभ्युद् गते दिनपतौ समही-रुहोऽपि
किं वा विबोध-मुपयाति न जीवलोकः?।।19।।

शब्दार्थ–**धमोपदेश समये**=धर्म देशना के समय मे, **ते** [illegible] त्=आपकी समीपता के प्रभाव से, **जन आस्तां**=मनुष्य तो दूर रहे, **तरु अपि**=वृक्ष भी, **अशोक भवति**=अशोक हो जाता है, **वा दिन पतौ**=अथवा सूर्य के, **अभ्युदगते**=उदय होने पर, **समहीरुहोऽपि**=वृक्षादि के साथ, **जीवलोक**=प्राणियो का ससार, **किं विबोधं**=क्या विकास को, **न उपयाति**=नही प्राप्त होता?

भावार्थ–हे अचिन्त्य चितामणी! सूर्योदय होने पर केवल मानव ही निद्रा त्याग कर जागृत नही होता, अपितु कमलादि सर्व जीव लोक प्रबुद्ध हो जाते है अर्थात् सकोच रूप निद्रा को छोडकर विकसित हो जाते है। उसी प्रकार आप जिस समय धर्मोपदेश करते है, आपके सत्सग के प्रभाव से वृक्ष भी शोकरहित हो जाते है। तब मानवो के शोक रहित होने मे आश्चर्य ही क्या है? आप महापुरुषो का प्रभाव ही आलौकिक होता है।

चित्र विभो! कथमवाङ् मुख वृन्तमेव,
विष्वक् पतत्य विरला सुरपुष्प वृष्टि?
त्वद्-गोचरे सुमनसा यदिवा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि।।20।।

शब्दार्थ–विभो=हे नाथ, **चित्रं**=आश्चर्य है कि, **विष्वक्**=चहुँ ओर, **अविरला**=निरन्तर, **सुर पुष्प वृष्टि**=देवताओ द्वारा की पुष्प वर्षा, **अवाङ्मुख वृन्त**=नीचे डण्ठल और ऊपर पाखुरी, **कथ**=क्यो, **पतति**=गिरती है, **यदि वा**=अथवा ऐसा, **मुनीश**=हे मुनीश्वर, **त्वद्गोचरे**=आपके समाने, **सुमनसा**=श्रेष्ठ मनस्वियो के, **बन्धनानि**=बन्धनो को, **नूनं अध**=निश्चय नीचे, **एव हि**=ऐसे ही, **गच्छन्ति**=जाते है।

भावार्थ–हे धर्मसघाधिनायक! अद्भुत आश्चर्य है कि आपके ऊपर देवताओ द्वारा जो सघन अचित पुष्प वर्षाए जाते है। उन फूलो के डण्ठल नीचे और पाखुरी उर्ध्वमुख रहती है। वे ऐसे क्यो गिरते है? वे अधोमुखी डण्ठल यह सूचित करते है कि आपके सामीप्य से श्रद्धाशील भक्तो के कर्म बन्धन अधोमुखी हो शर्म से झुक गए हो। यहा 'सुर पुष्प वृष्टि' नामक दूसरा प्रातिहार्य है।

स्थाने गभीर हृदयोदधि-सम्भवाया,
पीयूषता तव गिर समुदीर यन्ति।
पीत्वा यत परम सम्मद संगभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्य-जरा-मरत्वम्।।21।।

शब्दार्थ–गम्भीर=गम्भीर, **हृदय उदधि**=हृदय समुद्र से, **सम्भवाया**=उत्पन्न हुई, **तव गिर**=आपकी वाणी को, **पीयूषता**=सुधा के, **सम**=समान, **उदीरयन्ति**=बतलाते है, **यत भव्या**=क्योकि भव्यजन, **ता पीत्वा**=उसको पी करके, **परम**=श्रेष्ठ, **समदसंग भाज**=सम्यक्तया असग हुए, **तरसापि**=अतिशीघ्र, **अजरामरत्व**=अजर अमरत्व, **स्थाने**=स्थान पर, **व्रजन्ति**=चले जाते है।

भावार्थ–हे त्रिभुवनाधिपते! आपके गम्भीर हृदय रूपी सागर से समुत्पन्न दिव्य देशना को ससारी लोग सुधा सदृश बतलाते है। वह सर्वांशत सत्य ही है। जैसे अमृत पान कर मनुष्य अमर हो जाते है, वैसे ही भव्य पाणी आपके वचनामृत का पान कर शीघ्र परमानन्द रूप अजर अमर स्थान को पा जाते है।

स्वामिन्! सुदूर-मवनम्य समुत् पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर चामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुगंवाय,
ते नून-मूर्ध्व गतयः खलु शुद्धभावाः।।22।।

शब्दार्थ–**स्वामिन्**=हे नाथ। **मन्ये**=मानता हू, **शुचयः**=पावन, **सुर चामरौघाः**=देवो द्वारा ढुराए जाते श्वेत चंवर, **सुदूरं अवनम्य**=अति नीचे को झुककर ऊपर उठते हुए, **वदन्ति**=कहते है कि, **ये अस्मै**=जो इन, **मुनि पुगंवाय**=श्रेष्ठ मुनीन्द्र को, **नतिं**=नमस्कार, **विदधते**=करते है, **ते नूनं**=वे निश्चय ही, **शुद्धभावाः**=विशुद्ध परिणामो से, **खलु**=निश्चय, **उर्ध्वगतयः**=ऊँची गति पाते हैं।

भावार्थ–हे धर्म चक्रेश्वर! जब देवगण आप पर चवंर ढोरते है तब वे पहले नीचे की ओर झुककर पुन ऊपर की ओर उठते हुए मानो वे जनता को यह मौन सदेश देते हैं कि जो इन सर्वोत्तम वीतराग जिनेन्द्र। महामुनि को श्रद्धायुत् झुक-झुक कर नमस्कार करते है। वे अवश्यमेव शुद्ध परिणामी होकर ऊर्ध्वगति को पा जाते है।

श्यामं गभीरगिर-मुज्ज्वल हेमरत्न-
सिंहासनस्थ-मिह भव्य शिखण्डिनस् त्वाम्।
आलोक यन्ति रभसेन नदन्त मुच्चैश्-
चामीकराद्रि शिरसीव नवाम्बु-वाहम्।।23।।

शब्दार्थ–**इह**=इसलोक मे, **श्यामं**=श्याम वर्ण वाले, **गम्भीर गिरं**=ह ध्वनि वाले, **उज्ज्वल**=उज्ज्वल, **हेम**=स्वर्ण निर्मित, **रत्न**=रत्नजडित, **सिंहासनस्थ**=सिहासन पर विराजमान, **त्वां**=आपको, **भव्य शिखण्डिन**=भव्य जनो का मयूर, **चामीकराद्रि शिरसि**=सुमेरू शिखर पर, **उच्चैः नदन्तं**=उच्च स्वर से गर्जते, **नव अम्बु वाहं**=नवीन मेघो के, **इव**=समान, **रभसेन**=अत्युत्सकता से, **आलोकयन्ति**=देखते है।

भावार्थ–हे त्रिलोक पूज्य देव। आप जब स्वर्ण निर्मित उज्ज्वल रत्नजडित सिहासन पर विराजमान होते हैं और ओजस्वी दिव्य स्याद्वाद वाणी की गर्जना करते हुए शाश्वत अबाधित सत् सिद्धान्तो की अजस्र वर्षा करते हैं तब आपका सावला शरीर जैसे स्वर्णमय सुमेरु पर्वत पर वर्षाकालीन सघन मेघ घटाए गरज रही हो ऐसा लगता है और उस समय भव्यो का मन मयूर अत्युत्सुक बन आपको देख खिलता-प्रसन्नतानुभव करता रहता है।

उद् गच्छता तव शिति द्युति मण्डलेन
लुप्त च्छद च्छवि-रशोक तरुर् बभूव!
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि? ।।24।।

शब्दार्थ–यदि=अगर, तव सान्निध्यत.=आपके सान्निध्य से, अशोक तरुः अपि=अशोक वृक्ष भी, तव उद्गच्छता=आपसे निकलने वाले, शिति द्युति मण्डलेन=उज्ज्वल प्रभा मण्डल से, लुप्तच् छदच् छवि=छविहीन पत्रो वाला, बभूव=हो गया, वीतराग क=हे वीतराग प्रभो! कौन, सचेतन अपि=चेतन होकर भी, नीरागता=राग रहित दशा को, न व्रजति=नहीं पायेगा।

भावार्थ–हे जिनपते! आपके दैदीप्यमान उज्ज्वल नील आभा मण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तो की लालिमा भी लुप्त हो जाती है। तब ऐसा कौन सचेतन प्राणी हतभागी होगा जो आपके सत्सान्निध्य को पाकर वीतराग भाव को प्राप्त न हो?

भो भो. प्रमाद-मवधूय भजध्व-मेन-
मागत्य निर्वृति पुरी प्रति सार्थवाहम्।
एतन् निवेदयति देव! जगत् त्रयाय,
मन्ये नदन् नभि नभः सुर दुन्दुभिस्ते ।।25।।

शब्दार्थ–देव मन्ये=हे देव! मानता हू कि, अभिनभः=आकाश मे सर्व ओर, नदन्=गूजती ते=आपकी, सुर दुन्दुभि=देव दुन्दुभि से, जगत्त्रयाय=त्रि जगत् को, एतत् निवेदयति=यह सूचित करती है कि, भो भो=हे प्राणियो, प्रमाद अवधूय=प्रमाद को छोडकर, निर्वृतिपुरीं=मोक्ष नगर की, प्रति=ओर जाने वाले, एन=इन, सार्थवाह=सार्थवाह को, आगत्य= आकर, भजध्वम्=भजो।

भावार्थ–हे तीर्थ प्रवर्त्तक देव! आकाश मे सर्वत्र गर्जना करती हुई देव दुन्दुभि त्रिभुवनवासियो को यह सूचना देती है कि हे भव्य प्राणियो ! यदि मोक्ष नगर की यात्रा करनी हो तो प्रमाद छोड मोक्षपुर जाने वाले इन मुक्तिपुरी सार्थवाहक की सेवा करो।

उद्द्योति तेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान् वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता कलाप-कलितोल्लसि[1] तात पत्र-
व्याजात् त्रिधाधृत तनुर् ध्रुव-मभ्युपेत. ।।26।।

---

1 कलितोच्छवसि

शब्दार्थ—**नाथ**=हे स्वामिन्!, **भवता**=आपके द्वारा, **उद्द्योति**=प्रकाशित है, **तेषु भुवनेषु**=उन भुवनो पर, **मुक्ता कलाप**=मुक्ता समूह से, **कलित**=सुशोभित, **उल्लसिता आतपत्र**=श्वेत छत्रो के, **व्याजात्**=बहाने से, **विहताधिकारः**=अपने कर्त्तव्य से च्युत हुआ, **अय तारान्वितः**=यह ताराओ से घिरा, **विधुः**=चन्द्रमा, **त्रिधा तनुः**=तीन शरीर, **धृत**=धारण कर, **ध्रुवं**=निश्चय से, **अभ्युपेतः**=सेवा मे उपस्थित हो गया।

भावार्थ—हे अपूर्व तेजपुज! आपने अपने दिव्य ज्ञान के प्रकाश से तीन जगत को प्रकाशित कर दिया, तब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करता? वह तारा मण्डल सहित मोतियो के समूह युक्त तीन छत्र रूप तीन शरीर धारण कर मानो आपकी सेवा मे ही उपस्थित हो गया है।

स्वेन प्रपूरित जगत् त्रय-पिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन।
माणिक्य-हेम-रजत प्रवि-निर्मितेन
साल-त्रयेण भगवन् नभितो विभासि।।27।।

शब्दार्थ—**भगवन्**=हे प्रभो!, **नभितः**=आकाश मे, **माणिक्य हेम रजत**=माणक, स्वर्ण, चादी से, **प्रविनिर्मितेन**=विशेष रूप से बने, **सालत्रयेण**=तीन परकोटो से, **विभासि**=सुशोभित हो रहे है, **काति प्रताप यशसां**=काति, प्रताप, यश के, **सचयेन**=समूह से, **स्वेन प्रपूरित**=अपने को भरे हुए, **जगत्त्रय पिण्डितेन**=त्रिभुवन के पिण्ड की, **इव**=तरह।

भावार्थ—हे प्रताप पुज! समवशरण भूमि मे आपके चहु ओर माणिक्य , ' और रजत के तीन कोट विशेष बने सुशोभायमान होते हुए मानो वे कोट आपकी शारीरिक काति, आपके प्रताप और आपका यश त्रिभुवन मे सर्वत्र व्याप्त होने के बाद आगे कही स्थान न मिलने से आपके चहु ओर त्रिकोट के रूप मे एकत्र हो घनीभूत हो गये है।

दिव्य स्रजो जिन! नमत्-त्रिदशाधि पाना-
मुत्सृज्य रत्न रचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत् संगमे सुमनसो न रमन्त एव।।28।।

शब्दार्थ—**जिन**=हे जिनेन्द्र!, **दिव्य-स्रजः**=दिव्य पुष्प मालाए, **नमत्**=झुकते समय, **त्रिदशाधि पानां**=देवेन्द्रो के, **रत्न रचितान्**=रत्न जडित, **मौलि बन्धान्**=मुकुटो के बन्धनो को, **उत्सृज्य**=छोडकर, **अपि**=भी, **भवतः पादौ**=आपके चरणो का, **आश्रयन्ति**=आश्रय लेती है, **यदि वा**=

अगर, त्वत् सगमे=आपके मिलने पर, सुमनस=पुष्पमालाए या सज्जन पुरुष, परत्र=दूसरी जगह, न एव रमन्ते=नही ही रमते है।

भावार्थ–हे त्रैलोक्यालकार! जब देवराज इन्द्र आपको नमस्कार करते है, तब उनके मुकुटो मे लगी हुई दिव्य पुष्प मालाए, रत्न जडित मुकुटो का परित्याग करके आपके श्री चरणो का आश्रय लेती है क्योकि आपके श्री चरणो का सम्पर्क-सत्सान्निध्य मिल जाने पर सज्जन पुरुषो का चित्त अन्यत्र कही भी सन्तोष को प्राप्त नही होता है।

त्व नाथ! जन्म जलधेर् विपराङ्-मुखोऽपि,
यत्तार यस्य सुमतो निजपृष्ठ लग्नान्।
युक्त हि पार्थिव-निपस्य सतस् तवैव,
चित्र विभो यदसि कर्मविपाक शून्य.।।29।।

शब्दार्थ–नाथ=हे दयानिधे!, त्व=आप, जन्म जलधे=ससार सागर से, विपराङ्मुख. अपि=विमुख है फिर भी, यत् निज=क्यो अपने, पृष्ठ लग्नान् पीठाश्रित, असुमत=जीवो को, पार्थिक निपस्य सत तवैव=पके हुए घडे के समान, तारयसि=तारते हो, युक्तं हि=उचित ही है, विभो=हे भगवन्!, चित्र=आश्चर्य है, यत्=कि, कर्मविपाक शून्य. असि=कर्म विपाक रहित हो।

भावार्थ–हे कृपासिधो! जिस तरह जल मे अधोमुख रहा परिपक्व घट अपनी पीठ पर बैठने वाले मनुष्य को जलाशय से पार उतार देता है उसी तरह भव सागर से सर्वथा विमुख होने पर भी आप अपने आश्रित भव्य जनो को भव सागर से पार उतार देते हो यह उचित ही है। परन्तु महान् आश्चर्य है कि घडा विपाक सहित है और आप विपाक रहित।

विश्वे-श्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस् त्व,
किं वाऽक्षर-प्रकृति-रप्य लिपिस् त्वमीश!
अज्ञान वत्यपि सदैव कथचिदेव,
ज्ञान त्वयि स्फुरित विश्व विकाश हेतु.।।30।।

शब्दार्थ–जन पालक=हे जगदीश्वर!, त्व=आप, विश्वेश्वर= त्रिलोकीनाथ होकर, अपि दुर्गत=भी दुर्गम्य है, किं वा अक्षर=अथवा क्या अक्षरण, प्रकृति=स्वभाव होने पर, अपि त्वां=भी आपको, अलिपि=लेप नही है, ईश=हे परमेश्वर, अज्ञानवति=अज्ञानवर्ति जनो के सरक्षक है, कथचित् त्वयि इव=कुछ आप मे इस तरह का, विश्व विकास हेतु= त्रिभुवन प्रकाशी, ज्ञानं सदैव=ज्ञान हमेशा ही, स्फुरित=प्रकाशमान रहता है।

भावार्थ–हे विश्वव्यापिन! आप अखिल विश्व के परम पिता होने पर भी ससारी जीवो को प्राप्त होने मे दुर्ज्ञेय है। अक्षर-नित्य स्वभाव वाले होकर भी निर्लेप हैं। अज्ञानी प्राणियो के सरक्षक है, फिर भी आपमे विश्व को प्रकाशमान करने वाला केवल ज्ञान सदैव ज्योतिष्मान् रहता है।

प्राग्भार सभृत नभांसि रजांसि रोषा-
दुत्थापि-तानि कमठेन शठेन यानि।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस् त्वमीभि रयमेव पर दुरात्मा।।31।।

शब्दार्थ–नाथ=हे नाथ, शठेन कमठेन=धूर्त्त कमठ ने, रोषात्=रोष से, तव=आप पर, प्राग्भार संभृत नभांसि=पूर्ण रूपेण आकाश को आच्छादित करने वाली, रजांसि उत्थापि तानि=धूलि उडाई उसने, तै:= उससे, तु=तो, छायापि=आपकी छाया भी, न हता=मलीन नही हुई, परं=परन्तु, अयमेव=वही, दुरात्मा=दुष्ट आत्मा, हताश:=हताश होकर, अमीभि:=उस रज से, ग्रस्त=जकडा गया, मलिन बना।

भावार्थ--हे जितशत्रु! बैर रखने वाले दुष्ट कमठासुर दैत्य ने क्रोधित होकर आप पर भीषण धूलि बरसायी, जिससे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया किन्तु उससे आप तो क्या आपकी छाया भी प्रभावित नही हुई प्रत्युत वह हताश बना दुरात्मा स्वय ही उस धूलि से मलिन हो गया।

यद् गर्ज दूर्जित-घनौघ-मदभ्र-भीमं,
भ्रश्यत्-तडिन् मुसल मांसल-घोर धारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर वारिदध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर वारि कृत्यम्।।32।।

शब्दार्थ–अथ=उसके बाद, जिन=हे जिनेश्वर!, दैत्येन=कमठासुर दैत्य ने, गर्जदूर्जित घनोघ=खूब गर्जते मेघ समूह सी, भ्रश्यत् तडित्= तडतडाती हुई बिजली, मुसलमांसल=मूसल के समान मोटी, घोर धारम्= भयकर जलधारा, यत्=जो, दुस्तर वारि=अथाह जल, मुक्तं=निसंकोच हो बरसाया, तस्य एव=उसके लिए ही, दुस्तर वारि=भयकर वर्षा का, कृत्यं=कृत्य, दध्रे=घायल करने वाला हो गया।

भावार्थ–हे महासकल्पधर!, धूलि वर्षा करके उस कमठासुर दैत्य ने आप पर घोरातिघोर जल बरसाया, जिसमे विशालकाय महामेघो की गर्जना और बिजलियो की तडतडाहट हो रही थी, मूसल के आकार की दीर्घकाय जलधारा बरस रही थी, जिसके अथाह जल को तैर पाना कठिन था, किन्तु

उससे आपको कोई हानि नही पहुची, प्रत्युत वह उस कमठ के लिए ही घायल करने तीक्ष्ण वार स्वरूप सिद्ध हुई।

ध्वस्तोर्ध्व केश-विकृताकृति मर्त्यमुण्ड-
प्रालम्ब भृद्-भयद वक्त्र विनिर्यदग्नि.।
प्रेतव्रजः प्रति-भवन्त-मपीरितो यः,
सोऽस्या-ऽभवत् प्रतिभव भवदुःख हेतुः।।33।।

शब्दार्थ—**ध्वस्त. ऊर्ध्वकेश**=बिखरे हुए केशो की, **विकृताकृति**=विकराल आकृति वाले, **मर्त्य मुण्ड**=नरमुण्डो की, **प्रालम्बभृद्**=लम्बी माला धारण किये, **भयद वक्त्र**=मुख से भयानक, **विनिर्यदग्नि**.=अग्नि निकालते, **य**=जो, **प्रेतव्रज अपि**=पिशाच समूह को भी, **भवन्त प्रति**=आपकी ओर, **ईरित**=प्रेरित किया, **स अस्य**=वह इसके, **प्रतिभव**=हरेक भव को, **भव दु ख हेतु**=ससार दु ख का कारण, **अभवत्**=हुआ।

भावार्थ—हे उपसर्ग विजयिन्! क्रूर परिणामी दुष्ट कमठासुर दैत्य ने बिखरे हुए केशोवाले विकराल आकृतिवान् नरमुण्डो की दीर्घ माला धारण किये, मुख से भयानक अग्नि उगलते पिशाच वर्ग को ध्यान साधना से भ्रष्ट करने भेजा। उससे आपका कुछ भी अहित नही हुआ, उल्टे उस कमठ के ही जन्म मरण रूप दु ख परम्परा की अभिवृद्धि हुई।

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य कृत्या.।
भक्त्यो-ल्लसत्-पुलक-पक्ष्मल देह देशाः,
पाद द्वय तव विभो! भुवि जन्मभाजः।।34।।

शब्दार्थ—**भुवनाधिप विभो**=हे त्रिलोक स्वामिन्! प्रभो, **भुवि**=ससार मे, **भक्तया**=भक्ति से, **उल्लसत्**=उल्लसित, **पुलक पक्ष्मल**=पुलकित दृढ, **देह देशा**=शारीरिक अवयव वाले, **ये**=जो, **जन्म भाज**=प्राणी, **विधुतान्य कृत्या**.=छोडकर अन्य कार्यो को, **विधिवत्**=विधिपूर्वक, **तव पाद द्वय**=आपके दोनो चरणो की, **त्रिसन्ध्य आराधयन्ति**=तीनो सध्याओ मे आराधना करते है, **त एव धन्या**=वे ही धन्य हैं।

भावार्थ—हे जगन्नाथ! जिनके शरीर का रोम-रोम आपकी भक्ति से रोमाचित और अवयव पुलकित है और जो अन्य सासारिक कार्यो को छोडकर आपके चरण सरोजो की विधिपूर्वक त्रिकाल सध्या मे उपासना करते है, ससार मे वे ही प्राणी धन्य हैं।

अस्मिन् नपार-भववारि निधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र पवित्र मंत्रे,
किं वा विपद् विषधरी सविधं समेति?।।35।।

शब्दार्थ–मुनीश=हे मुनीन्द्र!, मन्ये अस्मिन्=मै मानता हू इस, अपार भव वारिनिधौ=अथाह ससार सागर मे, त्वं मे=आप मेरे, श्रवण गोचरतां=कर्णगोचर, न गत असि=नही हुए हो, तव पवित्र=आपका पावन, गोत्र मन्त्रे=नाम रूपी मत्र, आकर्णिते तु=सुनने पर तो, विपद् विषधरी=विपदा रूपी नागिन, किं वा=क्या, सविधं=सन्निकट, समेति=आ सकती है?

भावार्थ–हे सकटमोचक मुनीन्द्र! इस ससार सागर मे घूमते मेरे कर्मगोचर आप नही हुए, अगर आपके नाम का पवित्र मत्र भी सुनने मे आ गया होता तो क्या विपत्ति रूपी काली नागिन मेरे पास आती? कभी नही।

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुग न देव!
मन्ये मया महित मीहित दानदक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! परा भवानां,
जातो निकेतनमह मथिता-शयानाम्।।36।।

शब्दार्थ–देव=हे जिनेश्वर देव!, मन्ये=मानता हू, जन्मान्तरे अपि=भव भवान्तरो मे भी, मया=मैंने, ईहित=मनोवाछित, दान दक्षम्=फल देने मे समर्थ, पाद युग=आपके चरण युगलो को, न महित=नहीं पूजा, तेन=इससे, इह ज । ?स जन्म मे, मुनीश=हे मुनीश्वर!, अह=मैं, मथिताशयानां=हृदय भेदी, मनोरथ नाशक, पराभवानां=तिरस्कारों का, निकेतन जात=घर बना हुआ हू।

भावार्थ–हे कल्पतरु! मुझे दृढ विश्वास है कि मैंने पूर्व जन्मो मे मनोवाछित फल देने मे समर्थ आपके पावन पाद पकजो की सेवा-उपसाना नही की, अन्यथा इस जन्म मे क्यो हृदय विदारक, असह्य तिरस्कारो का केन्द्र बनता? आपका-चरण सेवक तो कभी कही पराजित नही होता।

नूनं न मोह तिमिरावृत लोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रवि-लोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत् प्रबन्ध-गतय. कथमन्य-थैते।।37।।

शब्दार्थ–विभो=हे प्रभो!, मोह तिमिर=मोहान्धकार से, आवृत= आच्छादित, लोचनेन=आखो से, पूर्वं नूनं=पहले निश्चय ही, सकृदपि=एक

बार भी, **न प्रविलोकित असि**=नही दर्शन किए, **अन्यथा**=नहीं तो, **प्रोद्यत प्रबन्ध गतय**=जिनकी प्रबन्ध गति अतिशय बलवती है ऐसे, **एते मर्माविध**=ये मर्मभेदी, **अनर्था मामृ**=अनर्थ मुझको, **कथ**=कैसे, **विधुरयन्ति**=सताते?

भावार्थ–हे मोह विदारक देव! मेरी आखो पर मिथ्यात्व मोह का गहरा अधकार छाया रहा, जिससे मैने पूर्व जन्मो मे कभी भी आपके दर्शन नही किये। यदि आपके दर्शन किये होते तो उत्कट ससार परम्परा को बढाने वाले हृदय विदारक, अनर्थोत्पादक कर्म मुझे कैसे सताते? अर्थात् अनर्थ पीडित नही करते?

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षि-तोऽपि,
नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन बान्धव! दु खपात्र,
यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या ।।38।।

शब्दांर्थ--जग बान्धव=हे जगत् बन्धु!, मैने, **आकर्णितोऽपि**=नाम भी सुना हो, **महितोऽपि**=उपासना भी की हो, **निरीक्षितोऽपि**=दर्शन भी किए हो किन्तु, **नून मया**=निश्चय ही मैने, **भक्त्या**=भक्ति से, **चेतसि**=हृदय मे, **न विधृत असि**=धारण न किए गए हो, **तेन**=इससे, **दु ख पात्र जात अस्मि**=दु ख का पात्र बना हू, **यस्मात्**=क्योकि, **भाव शून्या क्रिया**=भाव रहित क्रियाए, **न प्रति फलन्ति**=सफल नही होती है।

भावार्थ–हे जगबन्धो! पहले किसी जन्म मे मैने आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा-उपासना-सेवा भी की हो, दर्शन भी किये हो फिर भी यह तो निश्चय है कि मैने श्रद्धा भाव से हृदय मे धारण नही किया। इसीलिए इस ससार मे दु खो का भाजन बना हुआ हू क्योकि भावना रहित क्रियाए फलदायक नही होती है। जिस साधना और क्रिया मे भावना शुद्ध एव भक्ति प्रबल हो वही सफल होती है।

त्व नाथ! दु खिजन वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्य पुण्य वसते! वशिना वरेण्य!
भक्त्या नते मयि महेश! दया विधाय,
दु:खाकुरोद दलन-तत्परता विधेहि।।39।।

शब्दार्थ–**नाथ!**=हे मालिक!, **हे शरण्य**=हे शरणागत प्रतिपाल, **दुखिजन वत्सल**=दुखियो पर स्नेह रखने वाले, **कारुण्य**=हे करुणा निधान, **पुण्य वसते**= पवित्र धाम, **वशिना वरेण्य**=हे योगीन्द्र, **महेश त्वं**=हे महेश्वर आप, **भक्त्या नते**=भक्ति से झुके हुए, **मयि**=मुझ पर, **दया विधाय**=दया करके, **दु ख**

अंकुरोत् दलन=दुःखी रूपी अंकुर को नष्ट करने में तत्परता विधेहि=कीजिए।

भावार्थ–हे दयासिन्धो! आप दुःखी जीवो के प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं, शरणागत के प्रतिपालक हैं, करुणा के अजस्त्र स्तोत हैं, पवित्रता के पावन धाम, जितेन्द्रिय पुरुषो मे सर्वश्रेष्ठ योगीन्द्र, तथा महेश्वर हैं। अतः श्रद्धा भक्ति भाव से विनम्र हुए मुझ पर दया करके दुःख के अंकुर कर्म मूल को जड़ से उखाडने मे शीघ्रता कीजिए।

निःसंख्य सार शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित रिपुप्रथिताव-दातम्।
त्वत् पादपंकज-मपि प्रणिधान वन्ध्यो,
वध्योऽस्मि चेद् भुवन पावन! हा हतोऽस्मि।।40।।

शब्दार्थ–भुवन पावन=त्रिलोक पवित्र, निःसंख्य सार शरणं=वन्धु के अभाव मे प्रधानता से आश्रयदाता, शरणं=शरण देने वाले, शरण्यं= शरणागत के प्रतिपालक, सादितरिपु=अष्टकर्म शत्रुओ का नाश कर प्रथितावदातं=स्वकीर्ति विख्यात करने वाले, त्वत् पाद पंकज=आपके चरण कमलो को, आसाद्य अपि=पाकर भी, प्रणिधान वन्ध्यः=ध्यान नहीं किया, चेत्=यदि, वध्यः अस्मि=अभागा फलहीन हू, हा हत अस्मि=हाय! मैं मारा गया।

भावार्थ–हे पावन पुरुषोत्तम! आपके चरण कमल अतुलनीय बलशाली हैं। दीन दुःखियो की रक्षा करने वाले, शरणागत के प्रतिपालक, कर्म शत्रु विजेता, विश्वविख्यात यशस्वी पुरुष हैं। ऐसे पुरुष की मंगलमय चरण शरण को पाकर भी यदि मैं ध्यान से वंचित रहा तो मुझ जैसा दुर्भागी कौन होगा? हा! कर्मो के फलस्वरूप संसार सागर में गोते खाता हुआ दुःख पा रहा हू।

देवेन्द्र वन्द्य! विदिताखिल वस्तुसार!
संसार-तारक! विभो! भुवनाधि नाथ!
त्रायस्व देव! करुणा ह्रद! मां पुनीहि,
सीदन्त-मद्य भयद-व्यसनाम्बु राशेः।।41।।

शब्दार्थ–देवेन्द्र वन्द्य=देवेन्द्रो से वन्दनीय, विदिताखिल वस्तु सार=जान लिये हैं सम्पूर्ण विश्व के सारभूत तत्त्व, संसार तारक=संसार से उद्धार करने वाले, विभो=हे प्रभो!, भुवनाधिनाथ=हे त्रिलोकी नाथ!, करुणाह्रद=हे करुण हृदयी, देव=हे देवाधिदेव!, अद्य माम्=आज मुझ सीदन्तं=दुःखियॉ की, त्रायस्व=रक्षा करो, भयदव्यसना=भयकर दुःख रूपी, अम्बु राशेः=सागर से, पुनीहि=पवित्र करो।

भावार्थ–हे दयानिधे। आप स्वर्गाधिपति इन्द्रो से वन्दनीय, अखिल विश्व के नवनीत है। ससार की सर्व कालिक अवस्थाओ को जानने वाले, भवसागर से पार उतारने वाले, त्रिलोक के स्वामी, करुणा के सागर है। हे देव। घोर सागर मे डूबने से मुझे बचाओ, मुझे पवित्र बनाओ।

यद्यस्ति नाथ। भवदंघ्रि सरोरुहाणां,
भक्तेः फल किमपि सन्तति-संचितायाः।
तन्मे त्वदेक शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि।।42।।

शब्दार्थ–नाथ=हे नाथ।, **त्वदेक**=एक आप ही, **शरणस्य**=शरण है जिसको, **मे**=मुझे, **सन्तत सचिताया**=अविराम सचित की, **भवद**=आपके, **अघ्रि सरोरुहाणां**=चरण कमलो की, **भक्तेः**=भक्ति का, **यदि किमपि**=यदि कुछ भी, **फल अस्ति**=फल है, तत्=वह, **शरण्य**=हे आश्रयदायक, **त्वमेव**=आप ही, **अत्र भुवने**=इसलोक मे, **भवान्तरेऽपि**=परलोक मे भी, **स्वामी भूया**=स्वामी होवे।

भावार्थ–हे नाथ! मै एक अतीव निम्न श्रेणी का हू। आपकी स्तुति कर मै आपसे अन्य किसी फल की चाह नही रखता हुआ, आपके चरण कमलो की चिर सचित भक्ति का कुछ भी फल हो तो हे शरणागत वत्सल। भव भवान्तरो मे आप ही गेरे स्वामी बने। मुझे यही फल अपेक्षित है और कुछ भी नही।

इत्थं समाहित धियो विधिवज् जिनेन्द्र।
सान्द्रो-ल्लसत् पुलक कंचुकितांग भागा.।
त्वद् बिम्ब-निर्मल मुखाम्बुज बद्धलक्ष्या,
ये सस्तवं तव विभो। रचयन्ति भव्या ।।43।।

शब्दार्थ–जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र।, **ये समाहित**=जो सावधान, **धियो**.= बुद्धि वाले, **भव्या त्वद्**=भव्य आपके, **बिम्ब निर्मल मुखाम्बुज**=निर्मल मुख कमल की ओर, **बद्ध लक्ष्या**=अपलक लक्ष्य करके, **सान्द्र**=सघन रूप से, **उल्लसत्**=उठे हुए, **पुलक**=रोमाचो से, **कंचुकित**=व्याप्त, **अंगभागा**.= अग वाले होकर, **विभो तव**=हे प्रभो। आपकी, **इत्थ विधिवत्**=इस विधि से, **संस्तव रचयन्ति**=स्तुति रचते है।

भावार्थ–हे जितेन्द्रिय। अडिग श्रद्धावान् स्थिर बुद्धि वाले भक्त प्रेमाधिक्य के कारण अतीव सघन रूप से उल्लसित हुए, हर्ष से रोमाचित अग वाले होकर निरन्तर आपके मुख कमल की ओर अनिमेष दृष्टि रखते

है, आपकी विधि सहित स्तुति करते है, गुणानुवाद करते है।

जन नयन कुमुद चन्द्र।
प्रभास्वरा: स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित मल निचया,
अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते।।44।।

शब्दार्थ–जन नयन=प्राणियो के नेत्र रूपी, कुमुद चन्द्र=कुमुदो को चन्द्रवत् प्रकाशित करने वाले, ते प्रभा वरा=वे देदीप्यमान, स्वर्ग सम्पदो=स्वर्ग की विभूतियो को, भुक्त्वा=भोगकर, विगलित=दूर किया हें, मल निचया=मल समूह को, अचिरात् मोक्ष=शीघ्र मोक्ष को, प्रपद्यन्ते= प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–हे अनिमष दर्शनीय! सुखधाम! भव्यजनो के नेत्र कमलो को विकसित करने वाले चन्द्र सदृश प्रभो! आपके भक्तगण देवलोक की दिव्य विभूतियो को भोगकर, अष्ट कर्म मल को दूर हटा कर अन्तत शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करते है।

।। श्री नानेशस्तुतिः ।।

लोके विशुद्धचरित, भरित गुणौधै।
सम्पूजित जनचयै प्रथित पृथिव्याम्।।
सघे समर्चित-मनेक महामुनीनाम्।
नानेशदेव मनिश मनसा स्मराम।।1।।
चारित्र्य पालन विधौ, निखिल प्रवीण।
सद्धर्म साधन कृतौ, विहित प्रयत्न।।
सद्देव दर्शन दिश समता स्वभाव।
नानागुरु विजयते, शमनप्रधान।।2।।
सर्वोपकार करणे, सहज प्रवृत्ति।
दीनार्त दु ख-हरणे, समुदारवृत्ति।।
आत्मस्थ-भाव परिशीलन - चित्तवृत्ति।
जीयाच्चिर गुरुमह शमनैकवृत्ति।।3।।
सद्धर्मधाम सहितो महितो महात्मा।
मान्य सता मतिमता धुरि कीर्तनीय।।
कामादि-दोष रहितो हित साधनोऽपि।
नानागुरुर्विजयते, जिनशासकोऽसौ।।4।।
(कवितार्किक चक्रवतिचन्द्रमौले)

: वीर स्तुति :

पुच्छिसुण समणा माहणा य, अगारिणो या परतित्थिया य।
से केइ णेगत हिय धम्ममाहु, अणेलिस साहु समिक्खयाए।।1।।

शब्दार्थ–समणा य माहणा=श्रमणो और ब्राह्मणो, अगारिणो=गृहस्थो, परतित्थिया य=और अन्य तीर्थिको ने, पुच्छिसुण=पूछते है कि, से केइ=वह कौन है, णेगतहिय=एकान्त हितकर, अणेलिस साहु=अनुपम श्रेष्ठ, धम्म=धर्म को, समिक्खयाए=सम्यक् विमर्शपूर्वक, आहु=कहा।

भावार्थ–आर्य जम्बू! सुधर्मा स्वामी से पूछने लगे कि श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ ओर अन्य मतावलम्बी सज्जन पुरुष मुझसे प्रश्न करते है कि वे कौन है, जिसने ससार सागर से पार उतारने वाला एकान्त हितकर और कल्याणकारी अनुपम धर्म को विमर्श करके बताया है?

कह च णाण कह दसण से, सील कह णायसुयस्स आसी।
जाणासि ण भिक्खु! जहा तहेण, अहासुय बूहि जहा णिसंत।।2।।

शब्दार्थ–से णाय सुयस्स=उस ज्ञातपुत्र का श्रुत, णाण कहं=ज्ञान कैसा था? कह दसण=दर्शन केसा था? सील कह आसी=यम नियम रूप आचरण कैसा था? भिक्खु=हे भिक्षु, जहा तहेण जाणासि=जैसा उनको जानते हो, अहा सुय=जेसा सुना है, जहा णिसत=जैसा निश्चय किया, बूहि=कहिये।

भावार्थ–जम्बू स्वामी! गुरु सुधर्मा स्वामी से पुन पूछते है कि हे गुरुदेव! ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का ज्ञान, दर्शन और चारित्र कैसा था? हे गुरु भगवन्! आप उन्हे जिस रूप मे जानते है या जैसा आपने सुना है, देखा है, अनुभव किया है, उसे अनुग्रह करके मुझे बतलाईये।

खेयण्णए से कुसले महेसी, अणत-णाणी य अणंत-दसी।
जससिणो चक्खु-पहे ठियस्स, जाणाहि धम्म च धिइ च पेहि।।3।।

शब्दार्थ–से खेयन्नए=वे (ज्ञात पुत्र) दु खो को जानने वाले, कुसले महेसी=निपुण महर्षि थे, अणत णाणी य अणतदसी=अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे, जससिणो=यशस्वी, चक्खु पहे ठियस्स=लोचन मार्ग पर स्थित, धम्म जाणाहि=धर्म को जानो, धिइ च पेहि=और धेर्य को देखो-विचारो।

भावार्थ—जम्बू स्वामी के पूछने पर आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि-भगवान् महावीर सांसारिक जीवो के भौतिक, आधिभौतिक व आधिदैविक दुःखो को जानते थे। वे अष्टकर्मो को नष्ट करने मे कुशल, सर्वत्र उपयोग रखने वाले मेघावी, आप्त पुरुष थे। वे अनन्त ज्ञानवान् और अनन्त दर्शन के धारक थे। वे परम यशस्वी थे। उनका त्यागमय जीवन, जन जीवन के हिताहित, श्रेय-अश्रेय को आखो के समान स्पष्ट दर्शाने वाला था। उनकी महत्ता को जानने के लिए उनके बताए हुए कल्याणकारी श्रुत एवं चारित्र धर्म को जानो और सयम की अखण्डता को देखो।

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्च-णिच्चेहिं समिक्ख पण्णे, दीवेव धम्मं समियं उदाहु।।4।।

शब्दार्थ—**उड्ढं अहेयं तिरियं**=ऊपर नीचे तिरछी, **दिसासु**=दिशाओ मे, **तसा य जे**=जो त्रस और, **थावर जे य पाणा**=स्थावर जो प्राणी हैं, **णिच्च णिच्चेहि**=नित्य और अनित्य से, **समिक्ख**=सम्यक् समीक्षा करके, **से पन्ने**=उन्होने प्रज्ञा से, **दीवेव**=दीपक वत्, **समियं**=समतामय, **धम्मं**=धर्म का **उदाहु**=कथन किया है।

भावार्थ—भगवान महावीर ने उर्ध्व, अधो और तिर्छे लोक मे रहने वाले त्रस और स्थावर प्राणियो को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से अनित्य बताया है। अतएव सम्यक् प्रकार से ` : ४ किया हुआ अनेकान्त की मुद्रा से अकित, श्रेष्ठ अहिंस धर्म प्रतिपादित क ॥ है, जो ससार सागर मे डूबते हुए प्राणियो हेतु सेतु रूप और दीपकवत् जीवन को समता से आलोकित करने वाला तथा असहाय प्राणियो के लिए आश्रयदाता है।

से सव्वदंसी अभिभूय णाणी, णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं, गंथा अईए अभए अणाऊ।।5।।

शब्दार्थ—**से सव्वदंसी**=वे सर्वदर्शी, **अभिभूय णाणी**=अपराभूत ज्ञान वाले, **णिराम गंधे**=मूलगुण और उत्तरगुण की विशुद्ध पालना करने वाले, **धिइमं**=धैर्यवान्, **ठियप्पा**=आत्म स्वरूप मे स्थित, **सव्व जगंसि**=अखिल विश्व मे, **अणुत्तरे विज्जं**=सर्वोत्तम विद्याधर, **गंथा अईए**=ग्रन्थियो से रहित, **अभए**=निर्भयी, **अणाउ**=अनायुष्य वाले।

भावार्थ—भगवान् महावीर त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को देखने वाले केवलदर्शन से सम्पन्न थे। अपराजेय ज्ञान के स्वामी, मूल एवं उत्तर गुणो के निर्दोष आराधक, संयम मे अत्यधिक धैर्यवान् और आत्म स्वरूप मे स्थित थे।

ससार मे सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म विद्या के पारगामी, बाह्य और अभ्यान्तर ग्रन्थियो से रहित, सर्वभयो से मुक्त और आयु से रहित थे।

से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहतरे धीरे अणत-चक्खू।
अणुत्तर तप्पइ सूरिए वा, वइरोय-णिदेव तम पगासे।।6।।

शब्दार्थ—**से भूइपण्णे**=वे अनन्त ज्ञानी, **अणिए अचरी**=अप्रतिबद्ध विहारी, **ओहतरे**=ससार सागर तैरने वाले, **धीरे**=धैर्यवत, **अणत चक्खू**=अनन्त दर्शन वाले, **सूरिए व**=सूर्य की तरह, **अणुत्तर**=सर्वाधिक, **तप्पई**=तपने वाले, **वइरोयणिदे व**=अग्नि सदृश, **तम पगासे**=अन्धकार से प्रकाश करने वाले है।

भावार्थ—भगवान महावीर अप्रतिबद्ध विचरण करने वाले, भव सागर को तैरने वाले, परिषह और उपसर्गो को सहने मे अत्यन्त धैर्यवान, त्रैकालिक सर्व अवस्थाओ के द्रष्टा थे। सूर्य सदृश प्रचण्ड तेजस्वी, वैरोचन अग्नि के समान मिथ्या गोहान्धकारपूर्ण परिस्थितियो मे जीवो को ज्ञानलोक से प्रकाशित करते थे।

अणुत्तर धम्ममिण जिणाण, णेया मुणी कासव आसुपण्णे।
इदेव देवाण महाणुभावे, सहस्स णेया दिविण विसिट्ठे।।7।।

शब्दार्थ—**आसुपण्णे**=शीघ्रग्राह्य बुद्धि वाले, **कासव**=काश्यप गोत्रीय, **मुणी**=मुनि **जिणाण**=जिनवरो के, **इण अणुत्तर**=इस सर्वश्रेष्ठ **धम्म णेया**=धर्म के प्रणेता है, **दिविण**=स्वर्ग लोक मे, **सहस्स देवाण**=हजारो देवताओ का, **इदेव**=इन्द्र नेता है, **महाणुभावे विसिट्ठे**=महान प्रभावशाली है।

भावार्थ—स्वर्ग लोक मे असख्य देवो का नेतृत्व इन्द्र करता है, वह उनका प्रधान नेता होता है। उसी प्रकार तीक्ष्ण मेधावी क्षमताधर होने से भगवान महावीर साधको को अध्यात्म साधना का विशिष्ट पथ दिखाते थे। वे जैन धर्म के सस्थापक नही किन्तु श्री ऋषभदेव आदि तैवीस तीर्थकरो द्वारा प्ररूपित धर्मोद्धारक, धर्म अधिनायक थे। प्रभु का गौत्र कश्यप था।

से पण्णया अक्खय सागरे वा, महोदही वावि अणत पारे।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के, सक्केव देवाहिवई जुइम।।8।।

शब्दार्थ—**से सागरे वा**=श्रमण भगवान महावीर समुद्र सदृश, **पण्णया अक्खय**=प्रज्ञा से अक्षय, **महोदही वावि**=स्वय भू रमण समुद्र वत्, **अणत पारे**=असीम सामर्थ्यवान्, **अणाइले वा**=निर्मल मतिज्ञ, **अकसाइ**=कषायो से रहित, **मुक्के**=सयोगो से विमुक्त, **सक्केव**=शक्रेन्द्र

की तरह देवाहि वई=देवो के अधिपतिवत्, जुइमं=अत्यन्त तेजस्वी है।

भावार्थ–त्रिलोक पूज्य प्रभु महावीर की प्रज्ञा सागर सम अक्षय थी। वे स्वयंभू रमण समुद्र की जल राशि के समान अनन्त, अपार थे। वे विशुद्ध गतिमान् थे। क्रोधादि कषायो से सर्वथा रहित, बन्धनो से मुक्त तथा देवाधिपति शक्रेन्द्र के समान महा द्युतिमान थे।

से वीरिएणं पडिपुण्ण वीरिए, सुदसणे वा णग सव्व सेट्ठे।
सुरालए वासि-मुदागरे से, विरायए णेग-गुणोववेए।।9।।

शब्दार्थ–से=वे वर्धमान स्वामी, वीरिएण=आत्म बल से, पडिपुण्ण वीरिए=पूर्ण शक्तिवान्, सुदंसणे वा=अथवा सुमेरु, णग सव्वसेट्ठे=सब पर्वतो मे श्रेष्ठ, सुरालये=देवलोक मे, वासि=रहने वालो को, मुदागरे=हर्षित करने वाला, णेग गुणो-ववेए=अनेक गुणो से युक्त होकर, विरायए=सुशोभित होता है।

भावार्थ–भगवान महावीर परिपूर्ण वीर्यवान् और शिखरो मे सुमेरु के समान सव प्राणियो मे श्रेष्ठ थे। स्वर्गलोक के देवो को जैसे सुमेरु पर्वत हर्षोत्पादक होता है, वैसे ही भगवान् महावीर प्राणिमात्र के लिए आनन्द दायक थे, वे सत्य शील जैसे अनेक गुणो से शोभायमान होते थे।

सयं सहस्साण उ जोयणाण, तिकडगे पडग वेजयते।
से जोयणे णवणवइ सहस्से, उद्धुस्सित्तो हेट्ठ सहस्स-मेग।।10।।

शब्दार्थ–सय सहस्साण=सौ हजार, उ जोयणाण=योजन की ऊँचाई वाला, तिकडगे=तीन विभाग, पडग वेजयते=पण्डक वन ध्वजा के समान, से=वह सुमेरु पर्वत, णवणवइ सहस्से=निन्यानवे हजार, जोयणे=योजन, उद्धिस्सिओ=ऊपर ऊँचाई वाला, सहस्स एग हेट्ठ=एक हजार योजन भूमि भाग मे है।

भावार्थ–वह सुमेरु पर्वत तीन काण्ड, एव पाण्डुक वन रूप वैजयती युत एक लाख योजन का है। इसका अधस्तन काण्ड 1 पृथ्वी रूप, 2 पत्थर रूप, 3 वज्र रूप-हीरा रूप और 4 ककर रूप, चार प्रकार का है। यह एक हजार योजन धरती के अन्दर है। मध्यकाण्ड 1 अक रत्न, 2 स्फटिक रत्न, 3 जात-स्वर्ण रूप, 4 रजत रूप, चार प्रकार का है । तथा इसका ऊर्ध्वकाण्ड-जम्बूनद-लाल स्वर्ण रूप ही है। इस मेरू पर्वत का प्रथम काण्ड एक हजार योजन, दूसरा त्रेसठ हजार योजन और तीसरा छत्तीस हजार योजन का है। इस प्रकार मेरू पर्वत एक लाख योजन का है। उस मेरू

पर्वत के शिखर पर स्थित पण्डक वन ध्वजा के समान सुशोभित होता है।

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए, जं सूरिया अणुपरि-वट्टयति।
से हेमवण्णे बहुणन्दणे य, जसि रइ वेदयति महिदा।।11।।

शब्दार्थ–**से पुट्ठे नभे**=वह सुमेरु स्पर्श किया हुआ आकाश को, **भूमि वट्ठिए**=पृथ्वी पर स्थित, **चिट्ठइ**=रहता है, **ज सूरिया**=जिस की सूर्य, **परिवट्टयति**=परिक्रमा करता है, **हेम वण्णे**=सुवर्ण वर्ण वाला, **बहु णदणे य**=अनेक नदनवनो से युक्त है, **जसि**=जिस पर, **महिदा**=महेन्द्र लोक, **रइ वेदयति**=रति का अनुभव करते है।

भावार्थ–वह सुमेरू पर्वत ऊपर आकाश को और नीचे पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ स्थित है। सूर्य आदि ज्योतिष मण्डल उसकी परिक्रमा अविराम करते रहते है। वह सुमेरु गिरि स्वर्ण वर्ण की कान्ति वाला है, अनेक नन्दनादि वनो से सुशोभित है। भूमि पर भद्रशाल वन है, उसके पाच सौ योजन ऊपर नन्दन वन है, उसके साढे बासठ हजार योजन ऊपर सौमनस वन है, उससे छत्तीस हजार योजन ऊपर पण्डक वन है। इस तरह से वह सुमेरु गिरि अनेक क्रीडा स्थलो से युक्त स्वर्ग से भी बढकर आनन्द दायक है। उस पर स्वय स्वर्गलोक का अधिपति इन्द्र आकर विश्रान्ति व रति का सुखानुभव करता है।

से पव्वए सद्द महप्पगासे, विरायई कचण-मट्ठवण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरिवरे से जलिएव भोमे।।12।।

शब्दार्थ–**से पव्वए**=वह सुमेरु पर्वत, **सद्द महप्पगासे**=शब्द महाप्रकाश नामो से सुप्रसिद्ध है, **कचण अट्ठवण्णे**=कचन के सदृश शुद्ध वर्ण वाला, **अणुत्तरे**=सर्वश्रेष्ठ रूप मे, **विरायइ**=सुशोभायमान है, **गिरिसु**= पर्वतो मे, **य पव्वदुग्गे**=और पर्वतो मे दुर्गम, **से गिरिवरे**=वह गिरिराज, **भोमेव जलिए**=भू प्रदेश जैसा प्रकाशित रहता है।

भावार्थ–शब्द का स्वभाव ही गूजने का है। गिरि भवनो के समीप, अगर आवाज होती या की जाती है तो उसकी प्रतिध्वनि वैसे ही प्रबल होती है। सुमेरु पर्वत की कदराओ मे से देवो की मधुर ध्वनियॉ दूर-दूर तक गुजायमान होती रहती है। उस सुमेरु पर्वत के स्वर्ण वर्ण की उज्ज्वल आभा अतीव मनोहर लगती है। सुमेरु पर्वत से बढकर ससार मे दूसरा अन्य कोई पर्वत नही है। वह उप पर्वतो-मेखलाओ के कारण दुर्गम है। वह मणियो, औषधियो के प्रकाश से दैदीप्यमान भू प्रदेश वत् प्रकाशित रहता है अथवा मगल ग्रह सदृश अतीव उज्ज्वल काति वाला है।

महीए मज्झम्मि ठिए णगिदे, पण्णायते सूरिए सुद्धलेसे।
एवं सिरिए उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली।।13।।

शब्दार्थ—णगिंदे=वह पर्वताधिराज सुमेरु, महीए मज्झम्मि ठिए= पृथ्वी के मध्य में स्थित है, सूरिए सुद्धलेसे=सूर्यवत् शुद्धकाति वाला, पण्णायते=प्रतीत होता है, एवं सिरिए=ऐसे ही श्री सम्पदा से, उ स= अवश्यमेव वह भूरि वण्णे=अनेक वर्ण वाला, मणोरमे=मनोहर, अच्चिमाली= सूर्य सा, जायइ=सब दिशाओ को प्रकाशित करता है।

भावार्थ—वह गिरिराज सुमेरू पृथ्वी के मध्य भाग मे स्थित है। वह सूर्य के समान अतीव दिव्य कान्ति वाला है। वह विविध रत्नो के वर्णो के कारण विचित्र प्रभा वाला और मनोहर है। उसमे से निकलने वाली तेजस्वी किरणे सूर्य की भांति सब दिशाओ को प्रकाशित करती है।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चई महत्तो पव्वयस्स।
एत्तोवमे समणे णायपुत्ते, जाइ जसो दंसण णाण सीले।।14।।

शब्दार्थ—महतो पव्वयस्स=महानता पर्वत की, सुदंसणस्स गिरिस्स= सुदर्शन गिरि का, जसो पवुच्चई=यश कहा जाता है, इव=इसी तरह, समणे णायपुत्ते एतोवमे=ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर को यही उपमा दी जाती है, जाइ जसो दंसण णाण सीले=जो जाति यश दर्शन ज्ञान और शील में श्रेष्ठ है।

भावार्थ—पर्वतो मे सुदर्शन पर्वत यशस्वी बताया गया है, उसी प्रकार भगवान महावीर त्रिभुवन मे श्रेष्ठतम यशस्वी है। जैसे सुमेरु पर्वत अपने [illegible] से सब पर्वतो मे श्रेष्ठ है, वैसे ही धर्म साधना मे अतीव प्रबल पुरुषार्थी ज्ञातपुत्र भगवान महावीर स्वामी जाति से महान, यश मे अद्वितीय, दर्शन मे अनुपमेय, ज्ञान मे अनुत्तर और शील मे सर्वोत्तम है।

गिरिवरे वा निसहाययाणं, रुयएव सेट्ठे वलयायताण।
तओवमे से जग भूइपण्णे, मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे।।15।।

शब्दार्थ—आययाणं=लम्बे आकार वाले, गिरिवरे=पर्वतो मे श्रेष्ठ, निसहा वा=निषध प्रधान है, वलयायताण=वर्तुलाकार पर्वतो मे, रुयए व=जैसे रुचक पर्वत, सेट्ठ=श्रेष्ठ है, जगभूइ पण्णे=ससार मे सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान् को, तओवमे=वही उपमा है, पण्णे=बुद्धिमान् श्रेष्ठ विद्वान, मुणीण मज्झे=मुनियो के मध्य मे, तमुदाहु=भगवान महावीर को श्रेष्ठ कहते है।

भावार्थ—जिस प्रकार लम्बे पर्वतो मे निषध पर्वत श्रेष्ठ है और

गोलाकार पर्वतो मे रूचक पर्वत उत्तम है, उसी प्रकार ससार के समस्त मुनियो मे अद्वितीय प्रज्ञावान् महावीर स्वामी श्रेष्ठ है। ऐसा प्रकाण्ड बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष बतलाते हैं।

अणुत्तर धम्ममुई रइत्ता, अणुत्तर झाणवर झियाइ।
सुसुक्क सुक्क अपगंड सुक्कं, सखिदु-एगतव दात-सुक्कं।।16।।

शब्दार्थ–**अणुत्तर धम्ममुई रइत्ता**=सर्वोत्तम श्रुत चरित्र धर्म को कहकर, **अणुत्तर झाणवरं झियाइ**=सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान ध्याते थे, **सुसुक्क सुक्क**=सर्वश्रेष्ठ शुक्ल वस्तुवत् शुक्ल, **अपगड सुक्क**=दोष रहित शुक्ल था, **संखिन्दु**=शख और चन्द्रमावत्, **एगतवदात सुक्क**=एकान्त रूप से विशुद्ध शुक्ल।

भावार्थ–भगवान महावीर ने सर्वोत्तम अहिसा प्रधान, श्रुत व चारित्र धर्म का प्रतिपादन किया। सब ध्यानो मे श्रेष्ठ शुक्ल ध्यान को ध्याया। प्रभु महावीर का वह शुक्ल ध्यान विशुद्ध सुवर्ण, जल फेन, शख और चन्द्रमा के समान अत्यन्त स्फटिक व निर्मल था।

अणुत्तरग्ग परम महेसी, असेस-कम्म स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गइ साइ-मणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण।।17।।

शब्दार्थ–**स महेसी**=वे महर्षि, **नाणेण सीलेण य दंसणेण**=ज्ञान चरित्र और दर्शन से, **असेस कम्म**=सम्पूर्ण कर्मो को, **विसोहइत्ता**=शोधन करके, **अणुत्तरग्ग**=सर्वोत्तम अग्र, **परम सिद्धि**=प्रधानसिद्ध, **गई**=गति को प्राप्त हुए, **साइमणंत पत्ते**=जिसकी आदि है, अन्त नही।

भावार्थ–महर्षि वीर प्रभु ने अन्य किसी पर भरोसा नही रखते हुए अपने पुरुषार्थ बल पर विश्वास रखा, ज्ञान, दर्शन, और चारित्र धर्म की आराधना करते हुए अपने पूर्वोपार्जित ज्ञानावरणीय आदि सम्पूर्ण कर्मो को क्षय करके सर्वोत्तम श्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त हुए है, जिसकी आदि है परन्तु अन्त नही।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जसि रइं वेदयति सुवण्णा।
वणेसु वा णदण-माहु सेट्ठ, णाणेण सीलेण य भूइपण्णे।।18।।

शब्दार्थ–**जह**=जैसे, **रुक्खेसु णाए**=वृक्षो मे जगत्प्रसिद्ध, **सामली वा**=सेमल वृक्ष है, **जसि**=जिस पर, **सुवण्णा**-सुपर्ण=भवन पति विशेष, **रइ वेदयति**=रति का आनन्द अनुभव करते है, **वणेसु वा णंदण सेट्ठं माहु**=वनो मे सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन कहा है, **णाणेण सीलेण य भूइ पण्णे**=ज्ञान और चारित्र से सर्वोत्तम श्रेष्ठ सर्वज्ञ प्रभु महावीर स्वामी को कहते हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार देवकुरू मे रहा शाल्मली वृक्ष, सम्पूर्ण वृक्षो मे सर्वश्रेष्ठ है। वहां आकर भवनपति जाति के सुपर्ण कुमार देव क्रीडा करते है। भद्रशाल, सोमनस और पण्डक इन तीनो वनो से नन्दनवन श्रेष्ठ है इसी तरह भगवान् महावीर ज्ञान और चारित्र मे सर्वोत्तम/श्रेष्ठ है।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चदोव ताराण महाणुभावे।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीण अपडिण्णमाहु।।19।।

शब्दार्थ–सद्दाण=शब्दो मे, थणिय=मेघ का गर्जना, अणुत्तरे=प्रधान हे और, ताराणं=ताराओ मे, महाणुभावे चंदो=महाप्रभावी चन्द्रमा श्रेष्ठ है तथा गंधेसु चंदण सेट्ठं माहु=गधो मे चन्दन की गध सर्वश्रेष्ठ है, एव= इसी प्रकार, मुणीणं=मुनियो मे, अपडिण्णमाहु=अप्रतिज्ञ, निष्काम भगवान महावीर श्रेष्ठ कहे जाते है।

भावार्थ–जिस प्रकार शब्दो मे मेघ की गर्जना प्रधान है, तारा मण्डल मे चन्द्रमा प्रमुख है, गधमय पदार्थो मे जैसे गोशीर्ष चन्दन प्रधान है, उसी प्रकार सभी मुनियो मे निष्कामी निराकाक्षी भगवान महावीर स्वामी प्रधान है।

जहा सयम्भू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिन्दमाहु सेट्ठे।
खोओदए वा रस वेजयते, तवोवहाणे मुणि वेजयते।।20।।

शब्दार्थ–जहा उदहीण=जैसे समुद्रो में, सयभू सेट्ठे=स्वयभू रमण श्रेष्ठ है, नागेसु धरणिद सेट्ठे आहु=नाग कुमारो मे धरणेन्द्र को श्रेष्ठ कहते है, खोओदए वा रस वेजयते=इक्षु रसोदक मे इक्षुरस श्रेष्ठ , तवोवहाणे=विशिष्ट तप के कारण, मुणि वेजयते=तपस्वी मुनियो मे महावीर सर्वश्रेष्ठ है।

भावार्थ–जिस प्रकार समुद्रो मे स्वयभूरमण समुद्र प्रधान है, नाग कुमार देवो मे धरणेन्द्र श्रेष्ठ है, सर्वरसो मे इक्षुरस श्रेष्ठ है, इसी प्रकार तपश्चरण के आराधना मे भगवान महावीर सर्वोत्तम/श्रेष्ठ है।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाण सलिलाण गगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, णिव्वाण-वादीणिह णायपुत्ते।।21।।

शब्दार्थ–हत्थीसु=हाथियो मे जगत्प्रसिद्ध, णाए एरावणमाहु=ऐरावत हाथी है। मियाणं सीहो=मृगो मे सिह, सलिलाण गंगा=नदियो मे गगा, पक्कखीसु वा गरुले वेणुदेवे=पक्षियो मे वेणुदेव गरुड श्रेष्ठ है, इह निव्वाण-वादीण=ऐसे ही मोक्ष वादियो मे, णायपुत्ते=ज्ञात पुत्र महावीर प्रधान है।

भावार्थ–जिस प्रकार हाथियो मे देवाधिपति इन्द्र का ऐरावत श्रेष्ठ है, पशुओ मे केशरी सिह, नदियो मे गगा और पक्षियो मे वेणुदेव गरूड श्रेष्ठ है, उसी प्रकार भगवान महावीर समस्त वादियो मे प्रधान है।

जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसु वा जह अरविदमाहु।
खत्तीण सेट्ठे जह दतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे।।22।।

शब्दार्थ–**जह णाए**=जैसे जग जाहिर, **वीससेणे जोहेसु**=वासुदेव योद्धाओ मे, **सेट्ठे**=श्रेष्ठ है, **जहा पुप्फेसु**=जैसे पुष्पो मे, **अरविदमाहु**=कमल को प्रधान कहते है, **जह खत्तीण**=जैसे क्षत्रियो मे, **दतवक्के**=दन्तवक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, **तह**=उसी प्रकार, **इसीण वद्धमाणे सेट्ठे**=ऋषियो मे ऋषि वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ है।

भावार्थ–जैसे योद्धाओ मे वासुदेव महान है, पुष्पो मे कमल प्रधान है, क्षत्रियो मे दन्त वाक्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ऋषियो मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी सर्वोत्तम महान है।

दाणाण सेट्ठ अभय-प्पयाण, सच्चेसु वा अणवज्ज वयति।
तवेसु वा उत्तम बभचेर, लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते।।23।।

शब्दार्थ–**दाणाण**=समस्त दानो मे, **अभयप्पयाण सेट्ठ**=अभयदान सर्व श्रेष्ठ है, **सच्चेसु**=सत्य वचनो मे, **अणवज्ज वयति**=अपीडाकर सत्य वचन श्रेष्ठ है, **तवेसु**=तपो मे, **बभचेर उत्तम**=नव कोटि युक्त ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ हे, **समणे**=श्रमणो मे, **णायपुत्त**=ज्ञातपुत्र वर्धमान स्वामी, **लोगुत्तमे**=ससार मे सर्वोत्तम है।

भावार्थ–सभी दानो मे जीवनदान, सभी वचनो मे पाप रहित हित-मित-प्रिय-सत्य वचन, तपो मे नवकोटि सहित विशुद्ध ब्रह्मचर्य तप सर्वश्रेष्ठ है, इसी तरह त्रिभुवन मे ज्ञातपुत्र भगवान महावीर सर्वोत्तम है।

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण-सेट्ठा जह सव्व धम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी।।24।।

शब्दार्थ–**ठिईण**=स्थिति वालो मे **लवसत्तमा**=पाच अणुत्तर विमानवासियो मे सात लव की स्थिति वाले, **सेट्ठा**=श्रेष्ठ है, **सभाण**=सभी सभाओ मे, **सुहम्मा सभा सेट्ठा**=सुधर्म सभा श्रेष्ठ है, **जह सव्व धम्मा**=जैसे सर्वधर्मो मे, **निव्वाण सेट्ठा**=मोक्ष श्रेष्ठ है, **ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी**=ज्ञातपुत्र भगवान महावीर स्वामी से कोई श्रेष्ठ ज्ञानी नही है।

भावार्थ–जैसे उत्कृष्ट स्थिति वालो मे सात लव की अधिक स्थिति

वाले सर्वार्थ सिद्ध वैमानिक देव, सभाओ मे सुधर्मा सभा, सर्व धर्मो मे निर्वाण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ज्ञानियो मे सर्वश्रेष्ठ है।

पुढोवमे धुणइ विगय गेही, न सण्णिहि कुव्वइ आसुपण्णे।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघ, अभयकरे वीर अणत-चक्खू।।25।।

शब्दार्थ–**पुढोवमे**=पृथ्वी सम, सबके आधारभूत, **धुणइ**=कर्म मल को दूर करने वाले, **विगय गेही**=गृहजनो से अनासक्त, **आसुपण्णे**=शीघ्र बुद्धि वाले, **ण सण्णिहिं कुव्वइ**=न सग्रह करते है, **समुद्देव**=सागर वत्, **महामवोघं**=विशाल भव सागर को, **तरिउ**=पार पाए हुवे, **अभयकरे**= अभयप्रदाता, **वीर**=महावीर जिनेश्वर, **अणत चक्खू**=अनन्त दर्शन वाले है।

भावार्थ–भगवान महावीर समस्त प्राणियो के लिए पृथ्वी के समान आधारभूत, अष्ट कर्मदल समूह को दूर करने वाले, अनासक्त योगी, सर्वत्र उपयोग दृष्टि वाले विलक्षण प्रज्ञा के धारक, असग्रहीत वृत्ति वाले, महाभयकर जन्म मरण रूप ससार सागर को पार करने वाले चक्षु के धारक, सभी प्राणियो को निर्भयता प्रदान करने वाले और अनन्त ज्ञानी है।

कोहं च माणं च तहेव माय, लोह चउत्थ अज्झत्थ दोसा।
एयाणि वता अरहा महेसी, न कुव्वइ पावं ण कारवेइ।।26।।

शब्दार्थ–**अरहा महेसी**=अरिहंत महर्षि, **कोह च माणं च तहेव मायं**=क्रोध मान और माया तथा उसी प्रकार, **चउत्थं लोह**=चौथे लोभ , **एयाणि**=इन, **अज्झत्थ दोसा**=अध्यात्म दोषो को, **वता**=छोडने ले, **पाव ण कुव्वइ**=न पाप करते है, **न कारवेइ**=न करवाते है।

भावार्थ–भगवान महावीर स्वामी महर्षि है। वे क्रोध मान माया और लोभादि दोषो को वमित करके चले। वे स्वय न पाप का सेवन करते थे और न ही अन्य किसी से पापो का सेवन करवाते।

किरियाकिरियं वेणइयाणु-वायं अण्णाणियाणं पडियच्च ठाण।
से सव्व वायं इइ वेयइत्ता, उवड्डिए संजम दीहरायं।।27।।

शब्दार्थ–**किरिया-अकिरियं**=क्रियावादी और अक्रियावादी के मत को, **वेणइया अणुवायं**=विनय वादी के कथन को, **अण्णाणियाणं**=अज्ञान वदियो के, **ठाणं**=मत को, **पडियच्च**=जानकर, **से इति**=वीर प्रभु ने इस प्रकार, **सव्ववाय**=समस्त वादियो के मत को, **वेयइत्ता**=जानकरके, **संजम दीहराय**=संयम मे जीवन भर के लिए, **उवड्डिए**=उपस्थित हुए।

भावार्थ–भगवान महावीर ने क्रियावादी के 180, अक्रियावादी के 84 विनयवादी के 32 और अज्ञान वादियो के 67 मतानुयायियो के सिद्धान्तो को भलीभाति जाना, जानकर सयम मार्ग मे जीवन पर्यन्त स्थित रहते हुए विधर्मियो को धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाया।

से वारिया इत्थी सराइभत्त, उवहाणव दुक्ख खयट्ठयाए।
लोग विदित्ता आर पर च, सव्व पभू वारिय सव्ववार।।28।।

शब्दार्थ–से प्रभू=उन सामर्थ्यवान् महावीर प्रभु ने, **सराइभत्त इत्थी वारिया**=रात्रि भोजन सहित स्त्री को छोडकरके, **दुक्ख-खयट्ठयाए**=दु खो को क्षय करने के लिए **उवहाणव**=तपस्या मे लगे थे, **आर पर च लोग विदित्ता**=इसलोक और परलोक को जानकर, **सव्ववार सव्व वारिया**=सब प्रकार के पापो को छोड दिया।

भावार्थ–भगवान महावीर अष्टविध कर्मो को नष्ट करने के लिए स्त्री ससर्ग तथा रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग करके तप के अनुष्ठान मे सलग्न रहे। उन्होने इस लोक और परलोक के दु खमय स्वरूप को जानकर समस्त प्रकार के प्राणातिपातादि पाप वासनाओ का पूर्णत त्याग किया।

सोच्चा य धम्म अरहत भासिय, समाहिय अट्ठ पओव सुद्ध।
त सद्दहाणा य जणा अणाऊ, इदेव देवाहिव आगमिस्सति।।29।।

शब्दार्थ–**अरहत भासिय**=अरिहत देव द्वारा कथित **समाहिय**=युक्तियुक्त, **अट्ठपओव सुद्ध**=अर्थ और पदो से पूर्णत शुद्ध, **धम्म सोच्चा**=धर्म को सुनकर **त सद्दहाणा**=उनमे श्रद्धान् रखने वाले, **जणा**=मनुष्य **अणाऊ**=आयु कर्म रहित होकर मोक्ष को पाते है, **वा इदेव**=अथवा इन्द्र सदृश, **देवाहिव**=देवताओ के अधिपति, **आगमिस्सति**=होते है।

भावार्थ–अरिहत प्रभो। द्वारा कहे गए युक्ति सगत एकान्त हितकारी शुद्ध अर्थ और पद वाले धर्म को सुनकर जो इसमे श्रद्धा रखने वाले है वे मनुष्य आयुकर्म को क्षयकर मोक्ष प्राप्त करते है या कर्म अवशेष रहने पर इन्द्र के समान देवो के स्वामी बनते है।

सज्झाएणं णाणावरणिज्ज कम्मं खवेइ।
स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होते है।

च घण्टिकाम्=और छट्ठापद कठमणि की रक्षा करे, नाभ्यन्तं=नाभिपर्यन्त की, सप्तमं रक्षेत्=सातवा पद रक्षा करे, पादान्तकं=पाव तक की अष्टकं=आठवा पद, रक्षेत्=रक्षा करे।

भावार्थ–प्रारम्भ के आदि अरिहत पद से शिखा की, दूसरे सिद्ध पद से मस्तक की, तीसरे आचार्य पद से द्वय नेत्रो की, चौथे उपाध्याय पद से नासिका की, पाचवें साधु पद से मुख की, छट्ठे ज्ञान पद से ग्रीवा की, सातवे दर्शन पद से नाभि की और अतिम आठवे चारित्र पद से उभय पैरो की रक्षा करे।

पूर्वं प्रणवतः सान्त., सरेफो द्वयाब्धि पंचषान्।
सप्ताष्टदश सूर्याकान्, श्रितो बिन्दु स्वरान् पृथक्।।9।।

शब्दार्थ–पूर्वं=पहिले, प्रणवत.=ऊँयुक्त सान्त.=स का अन्तवर्ण(ह), सरेफ=रकार, द्वि अब्धि=दो और चार पंचषान्=पाच और छ', सप्तअष्ट =सात और आठ, दश=दश सूर्याकान्=बारह, श्रितो=अनुसार बिन्दु=युक्त, स्वरान् पृथक्=स्वरो को ह के साथ अलग-अलग रखे।

भावार्थ--सबसे पहले ऊँकार लिखकर बाद मे 'स'कार का अन्तिम अक्षर, हकार को, रकार रेफ युक्त लिखने से ह्र, इसमे दूसरा स्वर 'आ', चौथा 'इ' पाचवा स्वर 'उ' छट्ठा स्वर 'ऊ', सातवा स्वर 'ए', आठवा स्वर 'ऐ', दशवा स्वर 'औ' और बारहवा स्वर 'अ' जोडे, फिर उसके ऊपर बिन्दु पृथक् पृथक् से क्रमश ऊँ ह्रा ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्र ये अक्षर क्रमश बनते है।

पूज्य नामाक्षरा आद्या., पंचैते ज्ञान दर्शने।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये, ह्रीँ सान्त· समलंकृत ।।10।।

शब्दार्थ–पूज्यनामाक्षरा आद्या. पचैते=आराध्य पच परमेष्ठि के प्रथम अक्षर अ सि आ उ सा, दर्शन ज्ञान चरित्र=ज्ञान दर्शन चारित्र के, नमोमध्ये=नम के बीच, सान्त=ह्रीँ को, समलंकृत=सुशोभित करे।

भावार्थ–पूज्य पच परमेष्ठि के प्रथम पाच अक्षर अ सि आ उ सा फिर सम्यग्ज्ञान दर्शन-चारित्रेभ्यो लिखने के बाद अन्त नम के बीच ह्रीँ लिखने से सत्ताईश अक्षर मूल मत्र के बनते है।

जम्बूवृक्ष धरो द्वीप., क्षारोदधि समावृत ।
अर्हदाद्यष्टकैरष्ट, काष्ठाधिष्ठैरलंकृत· ।।11।।

शब्दार्थ–जम्बूवृक्ष=जामुन के वृक्ष को, धरो=धारण करने वाला, द्वीप.=द्वीप अष्टकै=आठ पदो से, अष्टकाष्टा=आठ दिशाओ मे, क्षारोदधि=

लवण समुद्र से, समावृत=वेष्ठित, अर्हदादि=अर्हन् आदि, अधिष्ठै=रहे हुए, अलकृत=शोभायमान।

भावार्थ–जम्बु वृक्षो को धारण करने वाला जम्बूद्वीप चारो ओर लवण समुद्र से घिरा हुआ है। वह द्वीप आठ दिशाओ के स्वामी अरिहतादि आठ पदो से सुशोभित हो रहा है।

तन्मध्ये संगतो मेरू, कूट लक्षैरलकृत।
उच्चै-रुच्चैस्तर-स्तार, तारा मण्डल मण्डित.।।12।।

शब्दार्थ–तत्=उस जम्बद्वीप के, मध्य=बीच मे सगत=मिला हुआ, मेरु=मेरुपर्वत, कूटलक्षै=लाख शिखरो से, अलकृत=शोभायमान है, उच्चैरूच्चैस्तर=एक दूसरे से ऊचे, तारामण्डल=ज्योतिष मडल से मण्डित=सुशोभित होता है।

भावार्थ–उक्त जम्बूद्वीप के मध्य भाग मे मेरू पर्वत हे। वह लक्षकूटो से सुसज्जित है। उसके चहु ओर एक दूसरे के ऊपर ज्योतिष चक्र परिक्रमा देते रहने से, वह मेरु पर्वत अत्यन्त सुन्दर दीखता है।

तस्योपरि सकारान्त, बीज-मध्यास्य सर्वगम्।
नमामि बिम्ब-मार्हत्य, ललाटस्थ निरजनम्।।13।।

शब्दार्थ–तस्योपरि=उस मेरू शिखर पर, सकारान्त बीज= सकारान्त बीजाक्षर (ह्रीँ), अध्यास्य=आश्रय सर्वगं=सर्वव्यापी, नमामि= नमस्कार करता हू, बिम्बमार्हत्य=अर्हम् बिम्ब, ललाटस्थं=ललाट स्थित, निरजन=निराकार को।

भावार्थ–उस मेरु पर्वत पर सकार का अन्तिम बीजाक्षर 'ह' को स्थापित करके इसके मध्य मे घाति कर्माजन से रहित अरिहत प्रभु की स्वरूपाकृति को मस्तक मे सकल्प से कल्पित कर मै नमस्कार करता हू।

अक्षय निर्मल शान्तं, बहुल जाड्यतोज्झितम्।
निरीह निरहकारं, सारं सारतर घनम्।।14।।

शब्दार्थ–अक्षय=नाशरहित, निर्मल=मलरहित शान्त=शान्तरूप, बहुल=विस्तीर्ण, जाड्यतोज्झित=जडता रहित, निरीह=इच्छा रहित, निरहकार= अहकार रहित, सार सारतर=श्रेष्ठ, अति श्रेष्ठ, घन=सघन।

भावार्थ–अरिहत प्रभु अक्षय, निर्मल, सौम्याकृति वाले, विस्तृत अज्ञान से रहित, कामनाओ से मुक्त, हैं, अहकार शून्य, श्रेष्ठतम, समूह रूप व ठोस हैं।

अनुद्धतं शुभं स्फीत, सात्त्विकं राजसं मत।
तामसं चिर सम्बुद्धं, तैजसं शर्वरी समम्।।15।।

शब्दार्थ–अनुद्धतं=हठरहित शुभ=स्वच्छ, राजस=राजस गुण वाले, मत=माने गये है, स्फीतं=वृद्धिशील सात्विक=सतो गुणी, तामस= तामस गुण वाले, शर्वरीसमं=चादनी रात के समान तैजसं=प्रकाशवान्, चिर=स्थायित्व, सम्बुद्ध=स्वयं बोधित है।

भावार्थ–उद्धतपन से रहित, स्वच्छ, शाति गुण प्रधान होने से सात्विक है, स्वामित्व गुण वाले होने से राजस, स्थायित्व प्राप्त आठकर्मो को नष्ट करने वाले होने से तामस, शृगारादि रसो से रहित, सम्यग्तया जागृत स्वरूप वाले, परम दिव्यता धारक, पूर्णिमा के चन्द्र सम प्रकाशमान व आनदकारी है।

साकार च निराकार, सरसं विरस पर।
परापर परातीतं, परम्पर परात्परम्।।16।।

शब्दार्थ--साकारं=आकार सहित, च=और, निराकार=आकार रहित हैं सरस=रसमय विरस=रस रहित हैं, पर=सबसे परे हैं, परापर परातीत=क्रमानुक्रम से उत्कृष्ट है परम्पर परात्परं=उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ–अरिहत प्रभु शरीर की अपेक्षा आकार वाले, सिद्ध स्वरूप की अपेक्षा अशरीरी, सौम्य रस से भरपूर, विषय रस विहीन होने से निरस, उत्कृष्ट, उत्तरोत्तर प्रगति करने वाले, पुन न लौटते हुए अविच्छिन्न उत्कृष्टता को साधने वाले है।

सकल निष्कल तुष्ट, निर्वृत्त भ्रान्ति वर्जित।
निरजन निराकाक्ष, निर्लेप वीत-सशयम्'।।17।।

शब्दार्थ–सकल=कलासहित, निष्कल=कलारहित, तुष्ट=सतोषी, निर्वृत्तं=आश्रय रहित, वृत्ति विहीन, अपुनरागमन वृत्तिधर, भ्रान्तिवर्जित= भ्रान्ति रहित, निरजन=अजन रहित, निराकाक्ष=आकाक्षा रहित, निर्लेप=लेप रहित, वीतसशय=सशय रहित।

भावार्थ–अरिहत प्रभु शरीर धारी होने से सकल, सिद्ध होने की अपेक्षा निष्कल है, सतोष धारक है, अप्रतिबद्ध होने से स्वतत्र है। सर्वज्ञ होने से भ्रान्ति रहित है, कर्मरूपी मैल से रहित है, चाह रहित, ससार से निर्लिप्त, और सशयो से विनिर्मुक्त है।

ब्रह्माणमीश्वर बुद्ध, शुद्ध सिद्धमभगुर।
ज्योति रूप महादेव, लोकालोक प्रकाशकम्।।18।।

शब्दार्थ–ईश्वर=ऐश्वर्ययुक्त, ब्रह्माण=परमात्मरूप, सबुद्ध=स्व स्वरूप पूर्णत जागृत हे, सुद्ध=शुद्ध, सिद्ध=सिद्ध, अभगुर=अविनाशी, ज्योतिरूप= ज्योतिस्वरूप, महादेव=देवाधिदेव है, लोकालोक प्रकाशक=लोक और अलोक के प्रकाशक है।

भावार्थ–अरिहन्त देव परमात्म रूप, अष्ट महा प्रतिहार्य के ऐश्वर्य से सम्पन्न, आत्मा स्वरूप के प्रति जागृत, दोषो से रहित होने से शुद्ध है। कृतकृत्य होने से सिद्ध, क्षरण शील स्वभाव से मुक्त होने से अविनाशी, ज्योति स्वरूप, देवो के भी पूज्य होने से महादेव, लोक और अलोक के स्वरूप के प्रकाशक है।

अर्हदाख्यस्तु वर्णान्त, सरेफो बिन्दु मडित।
तुर्य स्वर समायुक्तो, बहु ध्यानादि[2] मालित।।19।।

शब्दार्थ–अर्हदाख्य=अर्हन् शब्द का वाचक, तु=निश्चय, वर्णात= वर्णका अन्तिमाक्षर (ह), सरेफो=रकार, सहित (र), बिन्दु मण्डित=विन्दु सहित तुर्यस्वर=चोथा(ई) स्वर, समायुक्त=सयुक्त, बहुध्यानादि=ध्यान मुद्रा से अत्यधिक, मालित=शोभायमान।

भावार्थ–अर्हत् का वाचक स वर्ण के अन्त का हकार है। वह रेफ और बिन्दु से सुशोभित हे, चौथे स्वर ईकार युक्त होने से ह्रीँ बीज बनता हे, वह स्मरण ओर ध्यान आदि के योग्य है।

एकवर्णं द्विवर्णं च, त्रिवर्णं तुर्य वर्णक।
पच वर्णं महावर्णं, सपर च परापर।।20।।

शब्दार्थ–एकवर्णं=पहला वर्ण द्विवर्णं=दूसरा वर्ण च=और, त्रिवर्णं= तीसरा वर्ण, तुर्यवर्णं=चौथा वर्ण, पचवर्णं=पाचवा वर्ण, महावर्णं=श्रेष्ठवर्ण, सपरं=उससे भी श्रेष्ठ, च=और परापर=श्रेष्ठ से श्रेष्ठ।

भावार्थ–यह ह्रीँ माया बीजाक्षर पहला श्वेत रग वाला, दूसरा श्याम वर्ण वाला, तीसरा लाल रग वाला, चोथा नीले रग का, पाचवा पीले रग का हे पाचो वर्ण परस्पर एक दूसरे से श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर ओर श्रेष्ठतम ह।

कही-कही पर ऐसा भी मिलता हे– 1 सश्रयम 2 वहुधानाद

अस्मिन् बीजे स्थिता: सर्वे, ऋषभाद्या जिनोत्तमा.।
वर्णैर् निजै-र्निजै-र्युक्ता., ध्यातव्यास्तत्र सगता ।।21।।

शब्दार्थ–अस्मिन्बीजे=इस ह्रीँ बीजाक्षर मे, स्थिता=स्थित, सर्वे ऋषभाद्या=सभी ऋषभादि, जिनोत्तमा=श्रेष्ठ जिनेश्वर, वर्णैर् निजैर्-निजैर्युक्ता=अपने अपने वर्णो सहित, ध्यातव्या=ध्यान योग्य है, तत्र सगता:=वहा जो जिस वर्ण के है, उसके अनुसार।

भावार्थ–इस ह्रीँ बीजाक्षर मे ऋषभादि चौबीस तीर्थकर अपने अपने वर्णानुसार स्वस्थान में विराजमान् हैं उनका उनके अपने वर्णो के साथ ध्यान करना चाहिए।

नादश्चन्द्र समाकारो, बिन्दुर्नील समप्रभ ।
कलाऽरुण समासान्त, स्वर्णाभ· सर्वतोमुख.।।22।।

शब्दार्थ–नादश्चन्द्र समाकार=नाद, चन्द्रमा सम श्वेत, बिन्दु नील·=विन्दु काली, समप्रभ=कातिवाली, कला=(-)रेखा का, अरुणसमा= सिदुरवर्णी हे, सान्त:=हकार का रग, स्वर्णाभ=सुनहरी आभायुक्त है, सर्वतोमुख:=यह अग्नि वाचक शब्द हकार के नीचे रेफ का सूचक है।

भावार्थ–ह्रीँ कार बीजाक्षर की नाद (˘) कला अर्धचन्द्राकार श्वेत वर्ण वाली हे, चन्द्राकृति के ऊपर का बिदु (0) का रग काला है। हकार की मस्तक रूप कला (–) उदय होते हुए सूर्य सम लाल प्रभा वाली है और अवशेष हकार और नीचे का रकार का भाग चारो ओर से स्वर्ण सदृश है ओर अग्नि वाचक शब्द वह रेफ का सूचक है।

शिर: सलीन ईकारो, विनीलो वर्णत. स्मृत ।
वर्णानुसार सलीन, तीर्थकृन् मडल स्तुम ।।23।।

शब्दार्थ–शिर· सलीन=मस्तक भाग मे रही, ईकार=ई की मात्रा, विनीलो=नीले, वर्णत· स्मृत:=रग की है, वर्णानुसार=वर्ण के अनुसार सलीन तीर्थकृन् मंडलं=मण्डल मे लीन हुए तीर्थकरो को, स्तुम:=मैं नमस्कार करता हू।

भावार्थ–मस्तक भाग पर आयी ईकार की मात्रा गहरे-नीले रग की है। इस प्रकार ह्रीँ कार मे अपने अपने वर्णानुरूप तीर्थकरो के समूह को सकल्पित करके ह्रीँ कार की मै स्तुति करता हू।

चन्द्रप्रभ पुष्पदतौ, नाद स्थिति समाश्रितौ।
बिदुमध्य गतौ नेमि, सुव्रतौ जिन सत्तमौ।।24।।
पद्मप्रभ वासुपूज्यौ, कलापद-मधिष्ठितौ।
शिर ई स्थिति सलीनौ, पार्श्व मल्लि जिनोत्तमौ।।25।।

शब्दार्थ–चन्द्रप्रभ=चन्द्रप्रभ, **पुष्पदत**=पुष्पदत, **नादस्थिति समाश्रितौ**=नाद स्थान मे स्थित, **बिदुमध्यगतौ**=विन्दु के अन्दर रहे, **नेमि सुव्रतौ**=नेमिनाथ व मुनि सुव्रत स्वामी, **जिनात्तमौ**=दो उत्तम जिनेश्वर हैं। **पद्मप्रभो**=पद्मप्रभ स्वामी, **वासुपूज्य**=वासुपूज्य स्वामी, **कलापद**='ह' की लकीर मे, **अधिष्ठितौ**=विराजे, **शिर ई**=ईकार के मस्तक मे, **स्थिति सलीन**=सम्यक्तया रहे हुए, **पार्श्व मल्लि**=पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ **जिनोत्तमौ**=उत्तम जिनेश्वर।

भावार्थ–आठवे चन्द्र प्रभ ओर नवमे पुष्प दन्त ये दो जिनेश्वर श्वत अर्धचन्द्राकार नाद कला मे, उसके ऊपर के श्याम वर्णी बिदु के मध्य मे बाईसवे नेमिनाथ, बीसवें मुनि सुव्रत स्वामी। छट्ठे पद्मप्रभ और बारहवे वासु पूज्य इन दो तीर्थकरो को अरूण वर्णी कला के मस्तक भाग मे, तथा मस्तक के साथ मे मिले नील वर्ण के ईकार मे तेबीसवे पार्श्वनाथ और उन्नीसवे मल्लिनाथ को कल्पना रूप से सयोजित करना।

> शेषास्त्तीर्थंकृत सर्वे., हर स्थाने नियोजिता·।
> माया बीजाक्षर प्राप्ता-श्चतु र्विंशतिरर्हताम्।।26।।

शब्दार्थ–**शेषा**=अवशेष सोलह, **तीर्थकृता सर्वे**=तीर्थ सस्थापक सभी तीर्थकरो को, **हर स्थाने**=ह्र स्थान मे, **नियोजिता**=नियोजित करे, **मायाबीजाक्षर**=माया बीजाक्षर ह्रीँ को, **प्राप्ता**=प्राप्त, **चतुर्विंशति**=चौबीसो **अर्हताम्**=अर्हत् भगवन्तो को।

भावार्थ–अवशेष बचे हुए सोलह तीर्थकरो को ह्र कार के स्थान मे कल्पित करना। इस प्रकार चोबीस तीर्थकरो की स्थापना मानसिक कल्पना से माया बीज ह्रीँ कार मे की जानी चाहिए।

> गत राग द्वेष मोहा, सर्व पाप विवर्जिता।
> सर्वदा सर्व कालेषु, ते भवन्तु जिनोत्तमा·।।27।।

शब्दार्थ–**गत राग द्वेष मोहा**=जो राग, द्वेष और मोह से रहित हे, **सर्वपाप विवर्जित**=समग्र पापो से रहित, **सर्वदा**=नित्य **सर्वकालेषु**=तीनो काल मे, **ते**=वे 24 तीर्थकर, **जिनोत्तमा**=उत्तम जिनेश्वर, **भवन्तु**=होवे।

भावार्थ–जिनके जीवन से राग-द्वेष, मोह चला गया है, जो समस्त पाप कर्मो से दूर है। ऐसे उत्तम जिनेश्वर तीनो काल मे सम्पूर्ण लोक मे सदेव होवे।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वाङ्गं मा मां हिंसन्तु डाकिनी।।28।।

शव्दार्थ–देवदेवस्य=देवाधिदेव का, यत्=जो तस्य चक्रस्य=उनके चक्र की, या विभा=जो प्रभा है, तया=उससे, आच्छादित=आवृत्त बना सर्वागं=सव शरीर हे, मां=मुझको, मा हिंसन्तु=मत मारो डाकिनी=डाकिनी।

भावार्थ–देवाधिदेव जिनेश्वर देव के समूह की प्रभा से आच्छादित वने हुए मेरे समस्त अगो को डाकिनी पीडा मत पहुचाओ।

देव देवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मां हिनस्तु राकिनी।।29।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मां हिनस्तु लाकिनी।।30।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांगं, मा मा हिनस्तु काकिनी।।31।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिनस्तु शाकिनी।।32।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांगं, मा मां हिनस्तु हाकिनी।।33।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांगं, मा मा हिनस्तु याकिनी।।34।।
देव देवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु पन्नगा।।35।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु हस्तिन।।36।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु राक्षसा।।37।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांगं, मा मा हिसन्तु वह्नय·।।38।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु सिहका।।39।।
देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु दुर्ज़ना।।40।।

देव देवस्य यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादित सर्वांग, मा मा हिसन्तु भमिपा ।।41।।

इनका अर्थ रूप भाव उपर्युक्त सब कुछ वही है लेकिन श्लोक बोलते समय जिस शब्द का प्रयोग हुआ उसका चिन्तन उस नाम सहित करे। यथा-राकिनी जाति के देव पीडा मत पहुचाओ/न करो।

श्री गौतमस्य या मुद्रा, तस्य या भुवि लब्धय।
ताभिरभ्यधिक ज्योति-रर्हं सर्व निधीश्वर ।।42।।

शब्दार्थ–**श्री गौतमस्य**=श्री गोतम स्वामी की, **या**=जो, **मुद्रा**=आकृति, **तस्य**=उनकी, **भुवि**=पृथ्वी पर, **लब्धय**=लब्धिया, **ताभि**=उनसे, **अभ्युधिक ज्योति अर्हं**=विशेषाधिक ज्योति वाले अरिहत, **सर्व निधीश्वर**= सब निधियो के स्वामी है।

भावार्थ–श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी का जो स्वरूप ओर लब्धि इस जगतितल पर प्रसिद्ध हे। उनकी उस दिव्य तेजस्विता से भी अधिक ज्योति अरिहत भगवान की है। वे देवाधिदेव अरिहत प्रभो समस्त विद्याओ के स्वामी हें।

पाताल वासिनो देवा, देवा भूपीठ वासिन ।
स्वर्गवासिनोऽपि ये देवा, सर्वे रक्षन्तु मामित ।।43।।

शब्दार्थ–पाताल-वासिनो देवा=पातालवासी देव, **देवा भूपीठ वासिन**=पृथ्वी पर रहने वाले देव, **स्वर्गवासिनोऽपि देवा**=स्वर्ग मे रहने वाले देव, **सर्वे रक्षन्तु**=सब रक्षा करो, **मा इत**=मेरी यहा।

भावार्थ–अधोलोक मे रहने वाले भवनपति देव, मृत्यु लोक मे रहने वाले व्यन्तर आदि देव, स्वर्ग लोक मे रहने वाले कल्पवासी ओर वैमानिक देव हे वे सभी मेरी यहा रक्षा करे।

येऽवधि लब्धयो ये तु, परमावधि-लब्धय ।
ते सर्वे मुनयो दिव्या, मा सरक्षन्तु सर्वदा।।44।।

शब्दार्थ–**ये अवधि लब्धयो**=जो अवधिज्ञान की लब्धि वाले हे, **ये तु**=ओर जो, **परमावधि लब्धय**=परमावधि ज्ञान की लब्धि से सम्पन्न हे, **ते सर्वे**=वे सब **मुनयो**=मुनि गण, **दिव्या**=तेजस्वी स्वरूप वाले, **सर्वदा**= नित्य **मा**=मेरी, **सरक्षतु**=रक्षा करे।

भावार्थ–जो मुनि अवधि ज्ञान या परम अवधि ज्ञान की लब्धि से सम्पन्न हे, वे दिव्य मुनीश्वर सर्व ओर से मेरा सदेव रक्षण करे।

दुर्जना भूत वेताला: पिशाचा मुद्गलास्तथा।
ते सर्वेऽप्युप-शाम्यन्तु, देवदेव प्रभावतः।।45।।

शब्दार्थ–दुर्जना=दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य, भूत=भूतगण, वेताल=वेताल गण, पिशाचा=पिशाचगण, मुद्गला=मुद्गल ग्रहो, तथा=उसी प्रकार ते सर्वे=ये सभी, उपशाम्यन्तु=उपशांत हों, देवाधिदेव=जिनेश्वर देव के प्रभावत=प्रभाव से।

भावार्थ–दुष्ट प्रकृति के लोग, भूत, वेताल, पिशाच, मुद्गल, इत्यादि समस्त व्यन्तरादि मिथ्यात्वी, और रौद्र परिणामी जीव देवाधिदेव जिनेश्वर देव के प्रभाव से शांत होवें।

ॐ ह्रीं श्रीश्च धृतिर्लक्ष्मी, गौरी चंडी सरस्वती।
जयाऽम्बा विजया नित्या, क्लिन्नाऽजिता मदद्रवा।।46।।
कामांगा कामबाणा च, सानन्दा नन्द मालिनी।
माया मायाविनी रौद्री, कला काली कलिप्रिया।।47।।

श्री देवी, ह्रीं देवी, धृति देवी, लक्ष्मी देवी, गौरी देवी, चन्डी देवी, सरस्वती देवी, जया देवी, अम्बिका देवी, विजया देवी, नित्या देवी, क्लिन्ना देवी, अजिता देवी, मदद्रवा देवी, कामांगा देवी, कामबाणा देवी, सानंदा देवी, नंदमालिनी देवी, माया देवी, मायाविनी देवी, रौद्री देवी, कला देवी, काली देवी, कलिप्रिया देवी, ये चौबीस महादेवियां हैं।

एताः सर्वा महादेव्यौ, वर्त्तन्ते या जगत्त्रये।
मह्यं सर्वाः प्रयच्छन्तु, कान्तिं कीर्तिं धृतिं मतिम्।।48।।

शब्दार्थ–एताः=ये, सर्वा=सब, महादेव्यौ=महादेवियां, जगत्त्रये=तीन लोक में, वर्तते=रहने वाली, सर्वाः=सभी, मह्यं=मुझको, प्रयच्छन्तु=देने वाली हो, कान्तिं=कान्ति कीर्तिं=कीर्ति, धृतिं=धैर्य, मतिं=बुद्धि को।

भावार्थ–ये सभी महादेवी तीन लोक में विद्यमान रहती हैं। ये चौबीस ही देवियाँ मुझे कांति, कीर्ति, धैर्य और बुद्धि देने वाली हों।

दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः, श्रीऋषिमण्डल स्तवः।
भाषितस्तीर्थ नाथेन, जगत् त्राणकृतेऽनघः।।49।।

शब्दार्थ–दिव्यो=तेजस्वी, गोप्य=गुप्त रखने योग्य सः=यह, श्रीऋषिमण्डल स्तव=श्री ऋषिमंडल स्तोत्र, त्राणकृते=जगत को रक्षा करने के लिए, अनघः=दोष रहित है, दुष्प्राप्य=कठिनता से मिलने वाला, तीर्थनाथेन=तीर्थ के स्वामी द्वारा भाषित=कहा हुआ है।

भावार्थ–यह श्री ऋषिमण्डल स्तवन अति दिव्य प्रभाव वाला है। इसकी प्राप्ति बहुत ही कठिन है, ससार की रक्षा करने के लिए निर्दोष है। ऐसे इस स्तोत्र को तीर्थपति ने कहा है और इससे ही इसको गुप्त रखना योग्य है।

रणे राजकुले वह्नौ, जले दुर्गे गजे हरौ।
श्मशाने विपिने घोरे, स्मृतो रक्षति मानव।।50।।

शब्दार्थ–रणे=युद्ध मे, राजकुले=राजदरबार मे, वह्नौ=अग्नि मे, जले=पानी मे, दुर्गे=किले मे, गज=हाथी, हरौ=सिहो मे, श्मशाने=श्मशान मे, विपिने घोरे=घने जगल मे, स्मृतो=स्मरण किये जाने पर, मानव=मनुष्यो की, रक्षति=रक्षा करता है।

भावार्थ–सग्राम मे, राजदरबार मे, आगजनी मे, जल के उपद्रव मे, किले मे, हस्ती ओर सिहाक्रमण के समय, श्मशान मे, घोर जगल मे, सकट आने पर इसे स्मरण करने से मानवो की रक्षा होती है।

राज्य भ्रष्टा निज राज्य, पद भ्रष्टा निज पद।
लक्ष्मी भ्रष्टा निजा लक्ष्मी, प्राप्नुवन्ति न सशय·।।51।।

शब्दार्थ–राज्यभ्रष्टा=राज्य से भ्रष्ट, निज राज्य= अपने राज्य को, पद भ्रष्टा=पद से भ्रष्ट, निज पद=अपने पद को, लक्ष्मी भ्रष्टा=सम्पत्ति से भ्रष्ट, निजा लक्ष्मीं=अपनी लक्ष्मी को, प्राप्नुवन्ति=पाता हे, न सशय= सशय नही है।

भावार्थ–राज्य से च्युत बना राजा अपने राज्य को, मत्री आदि पद से भ्रष्ट हुआ अपने पद को, धन से रहित हुआ अपनी सम्पत्ति को सप्राप्त करता हे। इसमे शका को कोई स्थान नही है।

भार्यार्थी लभते भार्या, पुत्रार्थी लभते सुत।
वित्तार्थी लभते वित्त, नर स्मरण मात्रत·।।52।।

शब्दार्थ–भार्यार्थी=स्त्री की इच्छावाला, लभते भार्या=स्त्री पाता है, पुत्रार्थी=पुत्र की चाह वाला, लभते सुत=पुत्र पाता हे, वित्तार्थी=धन को चाहने वाला, लभते वित्त=धन पाता हे, नर·=मनुष्य, स्मरण मात्रत= याद करने मात्र से।

भावार्थ–इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य स्त्री की आकाक्षा वाला स्त्री, पुत्र की कामना वाला पुत्र, ओर धन की चाहना वाला धन को पाप्त करता है।

स्वर्णे रौप्ये पटे कांस्ये, लिखित्वा यस्तु पूजयेत्।
तस्यैवाष्ट महासिद्धिर, गृहे वसति शाश्वती।।53।।

शब्दार्थ–स्वर्णे=सोने पर, रौप्ये=चांदी पर, पटे=कपडे पर, कास्ये=कासे पर, लिखित्वा=लिखकर, यस्तु=जो, पूज्यते=आराधन करता हे, तस्येव=उसके ही, अष्टमहासिद्धि=आठ महासिद्धि, गृहे=घर मे, वसति=निवास करती हे, शाश्वती=सदेव।

भावार्थ–इस यत्र को स्वर्ण, रजत, कपडे या कासे के पतरे पर लिख करके जो आराधन करता हे, उसके घर मे शाश्वत रूप से अष्ट महासिद्धिया सदाकाल रहती हे।

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं, गलके मूर्ध्नि वा भुजे।
धारितं सर्वदा दिव्य, सर्व भीति विनाशकम्।।54।।

शब्दार्थ–भूर्जपत्रे=भोज पत्र पर, लिखित्वा=लिखकर, इदम्=इस स्तोत्र को, गलके=गले मे, मूर्ध्नि=मस्तक पर, वा=अथवा, भुजे=भुजा मे, धारितं=धारण किया जाये तो, सर्वदा=नित्य, दिव्य=तेजस्वी यत्र, सर्वभीति विनाशकम्=समस्त भयो को नष्ट करने वाला हे।

भावार्थ–जो इस दिव्य यत्र को अष्ट गध से भोज पत्र पर लिखकर गले मे, मस्तक मे अथवा भुजा पर धारण करने से सदैव उसके सब प्रकार के भयो का नाश होता हे।

भूतैः प्रेतैर्-ग्रहैर् यक्षैः, पिशाचैर्, मुदगलैर् मलै।
वात पित्त कफोद्रेकैर्, मुच्यते नात्र सशय।।55।।

शब्दार्थ–भूतै=भूतो से, प्रेतै=प्रतो से ग्रहै=ग्रहो से, यक्षै=यक्षो से, पिशाचैः=पिशाचो से, मुदगलै मलैः=व्यन्तर विशेषो से, मल से, वातपित्त कफोद्रेकै=वात पित्त कफ की वृद्धि से, मुच्यते=छूट जाता है, नात्र संशय=इसमे सशय नही।

भावार्थ–इस यत्र के धारण करने से भूत, प्रेत, ग्रह, यक्ष, पिशाच, मुद्गल, राक्षस, वात पित्त और कफ आदि त्रि दोष के प्रकोप से सबधित रोगोपद्रवो से मुक्त हो जाता हे। इसमे कही सशय नही है।

ॐ भूर्भुवः स्वस्त्रयी, पीठवर्तिन शाश्वता जिना।
तैः स्तुतैर्-वन्दितैर् दृष्टैर्, यत्फल तत्फल स्मृतौ।।56।।

शब्दार्थ–भूर्भुवः स्व=मृत्यु, पाताल, स्वर्ग, त्रयीपीठ=तीनो लोक मे, शाश्वता=जो शाश्वत, जिनाः=जिनेश्वर है, तेषा=उनकी, स्तुतै=स्तुति

से, दृष्टे=दर्शन से, वन्दितै=वदना करने से, यत्फल=जो फल होता हे, तत्फल=वही फल, स्मृतौ=स्मरण मात्र से होता है।

भावार्थ–पाताल लोक, मृत्यु लोक और स्वर्गलोक इन तीनो लोक मे रहे हुए जो शाश्वत जिनेश्वर देव है, उनके स्तवन, दर्शन ओर वदन से जिस फल की प्राप्ति होती है उतने ही फल की प्राप्ति इस स्तोत्र के स्मरण से होता है।

एतद् गोप्य महास्तोत्र, न देय यस्य कस्यचित्।
मिथ्यात्व-वासिने दत्ते, बाल हत्या पदे पदे।।57।।

शब्दार्थ–एतद्=यह स्तोत्र, गोप्य=गोपनीय है, महास्तोत्र= महास्तोत्र, न देय=नही देना चाहिए, यस्य कस्यचित्=जिस किसी को, मिथ्यात्व वासिने=मिथ्यादृष्टी को, दत्ते=देने पर, बाल हत्या=बाल हत्या का दोष, पदे पदे=पग पग मे लगता है।

भावार्थ–इस महास्तोत्र को गुप्त रखना चाहिए, जिस किसी को नही देना चाहिए। मिथ्यात्वी प्राणियो को देने से कदम कदम पर वाल हत्या का पाप लगता है।

आचाम्लादि तप कृत्वा, पूजयित्वा जिनावलीम्।
अष्ट साहस्त्रिको जाप, कार्यस्तत् सिद्धि हेतवे।।58।।

शब्दार्थ–आचाम्लादि तप=आयबिलादि तप, कृत्वा=करके, पूजयित्वा=आराधित करके, जिनावली=चौबीस जिनेश्वरो का, अष्टसाहस्त्रिको=आठ हजार, जाप=जाप, तत्=उनका, सिद्धि हेतवे= सिद्धि के लिए।

भावार्थ–आयम्बिल आदि तप करके चौबीस जिनेश्वरो की मानसिक आराधना करके इच्छित कार्य की सिद्धि के लिए 8000 इसका जाप करना चाहिए।

शतमष्टोत्तर प्रातर्ये पठन्ति दिने दिने।
तेषा न व्याधयो देहे, प्रभवन्ति न चापद।।59।।

शब्दार्थ–शतमष्टोत्तर=एकसौ आठ बार, प्रात=प्रात काल ये=जो, पठन्ति=पढता है, दिनेदिने=प्रतिदिन दिन मे, तेषा=उनके, न व्याध्यो=व्याधि नही होती, देहे=शरीर मे, च=ओर, न आपद=न ही आपत्तिया, प्रभवन्ति= प्रभावित करती हे।

भावार्थ–जो भव्य पुरूष। शुद्ध योग पवित्र हृदय से इसका एक सो

आठ वार स्मरण करता हे, उसके शरीर मे न व्याधि होती है और न विपदा घेरती हे।

अष्टमासावधिं यावत्, प्रातः प्रातस्तु यः पठेत।
स्तोत्रमेतद् महातेजोः, जिनबिम्बं स पश्यति।।60।।

शव्दार्थ–अष्टमासावधिं=आठ महिने, यावत्=जब तक, प्रातः प्रातः=सवेरे-सवेरे, तु=अवश्य, पठेत=पढे, यः=जो, स्तोत्रमेतत्=यह स्तोत्र महातेजो=अत्यन्त तेजस्वी जिनबिम्बं=जिनेश्वर देव की छवि, सः=वह, पश्यति=देखता हे।

भावार्थ–निष्काम भाव, शुद्ध योग, पवित्र हृदय से एकाग्र चित्त होकर हमेशा सुवह-सुवह आठ महिने तक जो इस स्तोत्र को पढता है, वह अरिहत भगवान् का दिव्य तेजोमय स्वरूप मे दर्शन करता है।

दृष्टे सत्यार्हतो विम्वे, भवे सप्तमके ध्रुवम्।
पद प्राप्नोति शुद्धात्मा, परमानदानन्दितः।।61।।

शव्दार्थ–दृष्टेसति=देखे जाने पर, अर्हतो=अर्हन् भगवान की, विम्वे=छवि को, भवे=जन्म में, सप्तमके=सातवे मे, ध्रुवम् पद=मोक्ष पद, प्राप्नोति=पाता हे, शुद्धात्मा=पवित्रात्मा, परमानंदा=परम आनद से, आनन्दितः=आनन्दित।

भावार्थ–अरिहत भगवान की तेजोमय स्वरूपाकृति को देखने वाला भव्य पुरूप निश्चय ही सातवे भव मे अतीन्द्रिय आनद के स्थान मोक्ष पद को प्राप्त करता हे।

विश्ववद्यो भवेद्ध्याता, कल्याणानि च सोऽश्नुते।
गत्वा स्थानं परं सोऽपि, भूयस्तु न निवर्त्तते।।62।।

शव्दार्थ–विश्ववंद्यो=विश्व वन्दनीय, भवेत्=हो जाता है, ध्याता=ध्यान करने वाला, सः=वह, कल्याणानि=कल्याणो को, अश्नुते=पाता है, च=और, स्थानं पर=उत्तम स्थानको, गत्वा=जाकर, सःअपि=वह भी, भूयस्तु=फिर पीछा, न निवर्त्तते=नही लौटता।

भावार्थ–इस स्तोत्र का ध्यान करने वाला मनुष्य ससार का वदनीय होता है। कल्याण की परम्परा को प्राप्त होता है, अर्थात् मोक्ष मे चला जाता हे, जहा से लौटकर पुन. वह ससार मे नही आता हे।

इदं स्तोत्रं महास्तोत्र, स्तवनामुत्तम पर।
पठनात् स्मरणाज्जापात् लभ्यते पदमव्ययम्।।63।।

शब्दार्थ—इद=यह, **स्तोत्र**=स्तोत्र, **महास्तोत्र**=महान् स्तोत्र है, **स्तुतीनाम्**=सब स्तुतियो मे **उत्तम पर**=अतिउत्तम हे, **पठनात्**=पढने से, **स्मरणात्**=स्मरण करने से, **जापात्**=जाप से, **लभते**=प्राप्त करते है, **पदमव्यय**=अव्यय पद को।

भावार्थ—यह स्तोत्र स्तोत्रो मे महास्तोत्र, स्तुतियो मे श्रेष्ठतम स्तुति है इसके पठन, स्मरण, से भव्य आत्माए अव्यय पद मोक्ष को प्राप्त होता है।

*****

: घंटाकर्ण स्तोत्र :

ॐ घटाकर्णो महावीर', सर्व व्याधि विनाशक.।
विस्फोटक भय प्राप्ते, रक्ष रक्ष महाबल ।।1।।

शब्दार्थ--ॐ **महाबल**=हे महाशक्तिवान् **घटाकर्णो**=हे कानो पर घट धारक, **सर्व व्याधि विनाशक**=समग्र व्याधियो को नष्ट करने वाले, **महावीर**'=वीर शिरोमणि, **विस्फोटक**= प्राणहारी, **भय प्राप्ते**=भय उत्पन्न होने पर, **रक्ष**=रक्षा करे, **रक्ष**=रक्षा करे।

भावार्थ—कानो पर घटे रखने वाले, सम्पूर्ण व्याधियो को नष्ट करने वाले हे महाशक्ति धर! हे वीर शिरोमणि! महावीर सहसा प्राण नाशक सकट का भय आ घेरने पर रक्षा करे, रक्षा करे।

यत्र त्व तिष्ठसे देव, लिखितोऽक्षर पक्तिभि.।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति, वात पित कफोद्भवा ।।2।।

शब्दार्थ—**यत्र त्व तिष्ठसे**=जहा आप रहते हो, **देव**=हे देव! **लिखित**=लिखे हुए, **अक्षर पक्तिभि**=अक्षर बद्ध पक्ति-लाईन से, **वात पित कफोद्भवा**=वात पित और कफ से उत्पन्न, **रोगा**.=रोग, **तत्र प्रणश्यन्ति**=वहा नष्ट हो जाते हे।

भावार्थ—हे वीर शिरोमणि! देव आप जहा पर अक्षरो मे क्रम बद्ध अकित रहते है। वहा पर वात पित और कफ जन्य विकार से उत्पन्न हुए सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

तत्र राज भय नास्ति, यान्ति कर्णे जपात्क्षयम्।
शाकिनी भूत वेताला, राक्षसा' प्रभवन्ति न।।3।।

शब्दार्थ—**तत्र राजभय नास्ति**=वहा राज्य संबधी भय नही रहता

कर्णे जपात्=कर्ण गोचर जप से, **क्षय यान्ति**=क्षय हो जाते हे **शाकिनी भूत वेताला**=शाकिनी, भूत, वेताल, **राक्षसा**=राक्षस गणो का **प्रभवन्ति न**=प्रभाव नही होता।

भावार्थ–हे ब्रह्म तेजस्विन्! महावीर आपके नाम मत्र का जाप कानो मे गुजायमान होते रहने से वहा पर राज्य सबधित आतक का भय नहीं होता है। और न ही भूत पिशाच, वेताल, राक्षस शाकिनी आदि ठहर पाते है, वे वहा से शीघ्र ही चले जाते है।

नाकाले मरण तस्य, न च सर्पेण दश्यते।
अग्नि चोर भयं नास्ति, नास्ति तस्याऽरि भयं।।4।।

शब्दार्थ–**तस्य अकाले**=उसका अकाल मे, **मरण न**=मरण नही होता है, **न च सर्पेण दश्यते**=और न ही सर्प डसता है, **अग्नि चोर भय नास्ति**=अग्नि और चोरो का भय नही होता, **तस्याऽरि भयं नास्ति**=उसको शत्रु का भय नही होता है।

भावार्थ–हे दुर्जेय कामजयी! महावीर आपका भक्त अकाल-मृत्यु को प्राप्त नही होता, सर्प उसको नही डसता, अग्नि चोर और शत्रु का भय भी उसको नही होता है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ घटाकर्ण नमोऽस्तु ते! ॐ नरवीर! ठ ठ ठ स्वाहा।

*****

श्री चन्द्र प्रभ स्तोत्रम्

चन्द्रप्रभ प्रभाधीश चन्द्रशेखर चन्द्रभू।
चन्द्रलक्षमीक चन्द्राङ्क चन्द्रबीज नमोऽस्तुते।।1।।
ॐ ह्रीँ श्री क्ली चन्द्रप्रभ ह्रीँ श्री कुरु कुरु स्वाहा।
इष्ट सिद्धि महासिद्धि तुष्टि पुष्टि करोद्भव।।2।।
द्वादश सहस्त्र जपतो, वाञ्छितार्थ-फलप्रद।
गृहीत स्त्रिसन्ध्य जपत सर्वाधि व्याधि नाशक।।3।।
सुरा सुरेन्द्र महित श्री पाण्डू च नृपसुत।
चन्द्र प्रभ तीर्थेश चन्द्रो-ज्ज्वला कुरु कुरु।।4।।
श्री चन्द्र प्रभ विधेय स्मृता सद्य फला नृता।
भवाब्धि व्याधि विध्वस दायिनि मे वर प्रदा।।5।।

: उवसग्ग हर-स्तोत्र :

उवसग्ग हरं पास, पास वदामि, कमघण मुक्कं।
विसहर विस निन्नास, मगल कल्लाण आवास।।1।।

शब्दार्थ–उवसग्ग हर=उपसर्ग हरने वाला, पास=पार्श्व यक्ष सेवा मे हे, कमघण मुक्क=कर्मावरण से रहित, विसहर विस=विषधर का विष, निन्नास=नष्ट करने वाले, मगल कल्लाण आवासं=मगल ओर कल्याण के धाम, पास वदामि=पार्श्वनाथ प्रभु को वन्दन करता हू।

भावार्थ–उपसर्गो को दूर करने वाला पार्श्वयक्ष, नागराज धरणेन्द्र और पद्मावती जिनकी सेवा मे रहते हैं। जो कर्मरूपी घन से रहित है, जिनके नाम स्मरण से भयकर विषधर का विष नष्ट हो जाता है। जो मगल और कल्याण के परम धाम हैं। ऐसे तेवीसवे तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ को मै वन्दन करता हू।

विसहर फुलिग मत, कठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह रोग मारी, दुट्ठजरा जति उवसाम।।2।।

शब्दार्थ–विसहर फुलिग मत=विषधर के स्फुलिग मत्र को कठे धारेइ=कठ मे धारण करता है, जो सया=जो सदा, मणुओ=मनुष्य, तस्स=उसके, दुट्ठगह=दुष्टग्रह, रोग=व्याधि, मारी=प्रलयकारी महामारी, जरा=ज्वर, उवसाम जति=उपशान्त हो जाते हे।

भावार्थ–जिनेन्द्र पार्श्वनाथ के नाम वाले विषधर स्फुलिग मत्र को जो मनुष्य सदा स्मरण करता है, उसे दुष्ट ग्रहो की पीडां, असाध्य व्याधि, प्राण सहारक प्रयोग अथवा प्रलयकारी कोलेरा, प्लेग जैसी महामारी नही सताती है और अहर्निश रहने वाला दुष्ट ज्वर भी शमित हो जाता है।

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावति न दुक्ख दोहग्ग।।3।।

शब्दार्थ–चिट्ठउ दूरे मतो=दूर रहे मत्र, तुज्झ पणामो वि=आपको किया गया नमस्कार भी, बहुफलो होइ=बहुत फलप्रद होता हे, नर तिरिएसु वि जीवा=मनुष्य ओर तिर्यच मे भी जीव, दुक्ख दोहग्ग=दु ख और दुर्गति को, ण पावति=प्राप्त नही होते हे।

भावार्थ–हे प्रभो! विषधर के विष को हरने वाला स्फुलिग मत्र तो प्रभावशाली है ही, तो भी उसे दूर रखे। सिर्फ विशुद्ध भावो से श्रद्धा सहित आपको किया गया नमस्कार सौभाग्य, आरोग्य श्री आदि दिव्य सुखो को

जस्स पयकमल मज्झे सया, वसइ पउमावई य धरणिंदो।
तस्स नामेण सयल, विसहर विस पणासेइ।।10।।

शब्दार्थ–जस्स पयकमल मज्झे=जिनके चरण कमलो मे, सया वसइ=सदा रहते है। पोमावई य धरणिदो=पद्मावती और धरणेन्द्र। तस्स नामेण=उनके नाम से, सयल विसहर=सारे विषधरों का, विस पणासेई=विष नष्ट हो जाता है।

भावार्थ–जिनके चरण सरोजो मे श्री पद्मावती देवी ओर नागराज धरणेन्द्र सदा सेवा निरत रहते है। ऐसे त्रिलोक पूज्य चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी के नाम स्मरण से समग्र विषधरो का विष नष्ट हो जाता हे। इसमे क्या आश्चर्य है?

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि कप्प पायवब्भ हिए।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामर ठाण।।11।।

शब्दार्थ–तुह=तुम्हारे, सम्मत्ते लद्धे=सम्यक्त्व को पाकर, चितामणि कप्प पायवब्भ हिए=चितामणि रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक हितकारी, जीवा=जीव, अयरामर ठाणं=अजर अमर स्थान को, अविग्घेण=निर्विध्नता से, पावति=प्राप्त करते है।

भावार्थ–हे सम्यक् बोधि प्रदात! पार्श्वनाथ स्वामिन् आप चितामणि रत्न और कल्पवृक्ष से मिलने वाली वस्तुओ से भी अधिक फल प्रदायक, हित साधक हैं। आपके दर्शन रूप सम्यक बोधि को पाकर, जीव निराबाध-निर्विध्नता से सच्चिदानन्द अजर-अमर शाश्वत धाम को प्राप्त कर लेते हे।

ॐ नट्ठट्ठ मयट्ठाणे, पणट्ठ-कम्मट्ठ णट्ठ-ससारे।
परमट्ठ णिट्ठिअट्ठे, अट्ठ गुणाधीसर वदे।।12।।

शब्दार्थ–ॐ=परमेष्ठि प्रतीक, णट्ठ=नष्ट हो गये हे, अट्ठ मयट्ठाणे= आठ मद स्थान, पणट्ठ कम्मट्ठ=अष्ट कर्म विनष्ट होने से, णट्ठ ससारे=नष्ट हो गया ससार, परमट्ठ-णिट्ठियट्ठे=परम अर्थ जिसमे रहा हुआ हे, अट्ठ गुणाधीसर=अष्ट गुणो के स्वामी को, वंदे=वन्दन करता हू।

भावार्थ–जिन्होने जातिमद आदि आठ मदो को नष्ट कर दिया ह। जिनके अष्टकर्म नष्ट हो जाने से ससार नष्ट हो गया है, जो परम लक्ष्यार्थ को साधकर कृतकृत्य हो चुके है अनत ज्ञान, अनत दर्शन अनत अव्याबाध सुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अक्षय स्थिति, अरूपी, अगुरु लघुत्व आर अनत वीर्य इन आठ गुणो के स्वामी है, ऐसे सिद्ध भगवन्त को वन्दन करता हू।

ॐ गरूडो वनिया पुत्तो, नाग लक्खी महाबलो।
तेण मुच्चति मुसा, तेण मुच्चति पन्नगा।।13।।

भावार्थ–"ॐ गरूडो वणियो पुत्तो नाग लक्ष्मी महाबल" इस मत्र के प्रयोग से सर्प और चूहे भाग जाते है।

तुह णाम सुद्धमत, सम्म जो जवेइ सुद्ध भावेण।
सो अयरामर ठाणं, पावइ ण य दोग्गइ दुक्ख।।14।।

शब्दार्थ–**तुह णाम सुद्ध मत**=आपके नाम वाले शुद्ध मत्र को, **जो णर**=जो मनुष्य, **सुद्ध भावेण जवेइ**=शुद्ध भाव से जपता है, **दोग्गइ दुक्ख**=दुर्गति रूप दु ख को, **ण पावइ**=प्राप्त नही होता, **स अयरामर ठाण**=वह अजर अमर अपुनरागमन स्थान को प्राप्त होता है।

भावार्थ–हे पार्श्वनाथ प्रभो! आपके नाम से शुद्ध बने मत्र को जो पुरुष शुद्ध भावो के साथ जपता है, वह दुर्गति रूप दु खो को प्राप्त नही होकर अजर अमर शाश्वत स्थान को प्राप्त कर लेता है।

ॐ पडु-भगदर दाह, कास सास य सूलभाईणि।
पासपहु पभावेण, णासति सयल रोगाइ, ह्रीँ स्वाहा।।15।।

शब्दार्थ–**ॐ**=परमेष्ठी वाचक **पडु**=पाण्डु, **भगदर**=भगन्दर, **दाह**= जलन, **कास**=खासी, **सास य**=और दमा, **सूल माईणि**=शूल इत्यादि, **रोगाइ**=व्याधिए, **सयल**=सम्पूर्णत **पासपहु पहावेण**=पार्श्वनाथ प्रभु के प्रभाव से, **णासति**=नष्ट हो जाती हे, **ह्रीँ स्वाहा**=यह पल्लव हे।

ॐ विसहर दावानल, साईणि, वेयाल मारि आयका।
सिरी नीलकठ पासस्स, सरण मित्तेण णासति।।16।।

शब्दार्थ–**ॐ विसहर**=विषधरो का विष, **दावानल**=वनाग्नि, **साईणि** =शाकिनी, **वेयाल**=वेताल, **मारी**=महामारी **आयका**=आतक, **सिरी नीलकठ पासस्स**=श्री नीलकठ पार्श्वनाथ प्रभो के, **सरणमित्तेण**=शरण मात्र से, **णासति**=नष्ट हो जाते हे।

पन्नास गोपीडा कूरग्गह, तुह दसणं भयंकाये।
आवी ण हुति एए तहवि, तिसज्झ ज गुणिज्जासु।।17।।

शब्दार्थ–**तिसज्झ**=त्रिकालिक सध्या को **तुह**=आपको **गुणिज्जासु**=जपने पर, **क्रूरग्गह**=क्रूर ग्रह **पण्णास गो पीडा**=पच्चास प्रकार की इन्द्रिय जन्य वेदना, **दसण भयकाये**=भयानक दृश्य देखने पर **एए**-इस प्रकार की **आवीइ**=व्याधि **तह वि**=फिर भी **ण हुति**=नहीं होती ह।

भावार्थ–हे परम प्रतापी। पार्श्व प्रभो। आपके नाम वाले इस पाठ को प्रात काल, अपराह्न काल और सध्याकाल स्मरण करने से सर्पादि जहरीले जन्तुओ का दस, इन्द्रिय सबधी समग्र वेदना, दुष्ट ग्रहो का अनर्थ कारी प्रभाव और भयोत्पादक वीभत्स दृश्य देखने से शरीर मे उत्पन्न व्याधि के कुप्रभाव का कोई असर नही होता। वह सर्व प्रकार से निरापद हो जाता है।

पीडंजत भगंदर, कास सास सूल तह निव्वाह।
सिरि सामलपास महत, णाम पउर पऊलेण।।18।।

शब्दार्थ–सिरि सामलपास णाम=श्री शामलिए पार्श्वनाथ प्रभो का नाम, **महत**=महा महिमावान् है, **पउर**=प्रचुर रूप मे **पऊलेण**=प्रकट होने से, **भगदर कास सास**=भगन्दर-घाव, खासी, दमा, **तह**=तथा, **सूल पीडजंत**=शूल रोग से पीडित व्यक्ति, **निव्वाह**=व्याधि रहित हो जाता है।

- भावार्थ--हे पावन पुरुषोत्तम। पार्श्वप्रभो आपकी महिमा अपरपार है। आपका अविराम स्मरण-अजपा जाप, भगन्दर, खासी और दमा, शूल आदि रोग समूल नष्ट होकर भक्त को निरामय बना देता है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ पासधरण सजुत्त, विसहर विज्ज जवेइ सुद्धमणेण।
पावइ इच्छियं सुह, ॐ ह्रीँ श्रीँ क्ष्म्ल्व्र्यूं स्वाहा।।19।।

शब्दार्थ–ॐ ह्रीँ श्रीँ पास धरण सजुत्त=पार्श्वनाथ और धरणेन्द्र से युक्त, **विसहर विज्जं**=विष हरने वाली विद्या को, **सुद्ध मणेण जवेइ**=शुद्ध मन से जपता है, **पावइ इच्छियं सुह**=प्राप्त करता हे इच्छित सुख को। गाथा का चतुर्थ चरण मत्र स्वरूप है।

भावार्थ–हे कामकुभ श्री पार्श्व स्वामिन्। आप व आपके निकटवर्ती रहे नागराज धरणेन्द्र से युक्त विष हरने वाली विद्या को जो शुद्ध भावो से जपता है, वह इच्छित सुख प्राप्त करता है। गाथा का चतुर्थ चरण मत्रमय है।

ॐ रोग-जल-जलण विसहर, चोरारि मइदगय रणभयाइ।
पासजिण नाम सकित्तणेण, पसमंति सव्वाइ ह्रीँ स्वाहा।।20।।

शब्दार्थ–पासजिण=पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के, **नाम सकित्तणेण**=नाम सकीर्तन से, **रोग जल जलण विसहर**=व्याधि, जल, अग्नि, विषधर का सकट **चोरारि**=चोर शत्रु, **मइंदगय**=मदोन्मत्त हस्ती, **रण भयाइ**=युद्ध का भय, **सव्वाइ**=सभी, **पसमति**=शान्त हो जाते है, **ह्रीँ**=माया बीज ह, **स्वाहा** पल्लव है।

भावार्थ–हे जगद्गुरु! त्रिलोकी नाथ! पार्श्व जिनेन्द्र! आपके नाम की धुन से आधिदैविक एव आधिभौतिक सभी व्याधिया, जल व अग्नि का उपद्रव, विषधर का सकट, चोर, शत्रु, मदोन्मत हस्ती और युद्धादि के रहे सभी भय शान्त हो जाते है।

ॐ जयउ धरणिद णमंसिय, पउमावई पमुह णिसेवियापाया।
ॐ क्लीँ ह्रीँ महासिद्धि, करेइ पास जगणाहो।।21।।

शब्दार्थ–**धरणिद णमसिय**=धरणेन्द्र नमस्कार करता है, **पउमावई पमुह**=पद्मावती आदि प्रमुख देवियो से, **पाया**=चरण कमल, **णिसेविया**= विशेष रूप से सेवित है। **जगणाहो पास जयउ**=जगन्नाथ पार्श्व स्वामिन् जय हो **ॐ क्लीँ ह्रीँ**=इन बीजाक्षरो से, **महासिद्धि करेइ**=विशिष्ट सिद्धि को करते है/देते है।

भावार्थ–हे त्रिलोक पूज्य! पार्श्वनाथ! आपको नागराज धरणेन्द्र नमस्कार करता है, पदमावती आदि प्रमुख देविए चरणो मे सेवा हेतु करबद्ध हो प्रतिक्षारत रहती है। वे जगत्पति जयवत हो। आपका मत्र ॐ क्लीँ ह्रीँ विशिष्ठ सिद्धियो को दने वाला है। इसमे कोई शका नही है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ त नमह पासणाह,
ॐ ह्रीँ श्रीँ धरणेद णमंसिय दुह पणासेइ।
ॐ ह्रीँ श्रीँ जस्स पभावेण सया,
ॐ ह्रीँ श्रीँ णासति उवद्दवा बहवे, स्वाहा।।22।।

शब्दार्थ–**धरणेद णमसिय**=धरणेन्द्र से नमस्कृत, **त पासणाह णमह**=उन पार्श्वनाथ को नमस्कार करो, **दुहं पणासेइ**=जो दु खो को नष्ट करते है। **जस्स पभावेण सया**=जिनके प्रभाव से सदा, **उवद्दवा**=उपद्रव, **सव्वे णासति**=सभी नष्ट हो जाते है।

भावार्थ–नागराज धरणेन्द्र द्वारा पूजित, नमस्कृत, विश्व वद्य श्री पार्श्वनाथ प्रभु को हे प्राणियो! तुम नमस्कार करो। वे दु ख दारिद्रय के नाशक है। जिनके स्मरण मात्र से सदा पापो का नाश एव समस्त विघ्न प्रशमन हो जाते है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ एए समरंताण मणे,
ॐ ह्रीँ श्रीँ ण होइ वाहि ण त महादुक्खं।
ॐ ह्रीँ श्रीँ णामं वि पहु मत समं,
ॐ ह्रीँ श्रीँ पयड णत्थीत्थ संदेहो।।23।।

शब्दार्थ–एए=इन पार्श्वनाथ जिनेन्द्र को, **समरताण मणे**=मन से स्मरण करने से, **ण वाहि**=न व्याधि, **ण त महा दुह**=न जन्म-जरा-मरण रूप दु ख, **असमाही**=असमाधि, **होइ**=होता है। **णामं वि**=नाम भी, **पहु मंत सम्मं**=प्रभु का नाम ही मत्र के सदृश, **पयड**=प्रत्यक्ष है। **णत्थीत्थ सदेहो**=इसमे सदेह नही है।

भावार्थ–पुरुषादानी! महायशस्विन्! जिनेन्द्र श्री पार्श्वनाथ का अन्तर्मन स्मरण करने से शारीरिक व्याधि और मानसिक सक्लेश रूप असमाधि भाव नही ठहरता है, एव जन्म जरा और मरण रूप भव भवान्तर की महावेदना भी मिट जाती है। उनका नाम ही मत्र सदृश प्रत्यक्ष प्रभावशाली है। इसमे कुछ भी सदेह नही है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ जल जलण भय तह सप्प,
ॐ ह्रीँ श्रीँ सीह चोरारि सभवे वि अप्प।
ॐ ह्रीँ श्रीँ जो समरेइ पास पहु,
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ पहवइ ण कयावि कि तस्स।।24।।

शब्दार्थ–**जल**=पानी, **जलण**=अग्नि, **सप्प**=सर्प, **सिंह**=सिह, **चोरारि**=चोर, दुश्मनो का, **अप्पवि**=थोडा भी, **भय सभवे**=भय सभवित होने पर, **जो समरेइ पास पहु**=जो पार्श्वनाथ पभु का स्मरण करता है, **तस्स कया वि**=उसको कही भी, **किंचि**=कुछ, **ण पहुवइ**=प्रभाव नही होता है।

भावार्थ–जल, अग्नि, सर्प, सिह, चोर और शत्रु का भय होने पर जगत्दोद्धारक, विघ्न निवारक पुरुषदानी श्री पार्श्वनाथ स्वामी का नाम स्मरण करता है, उसका जीवन भय मुक्त रहता है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ह्रीँ इहलोगट्ठी परलोगट्ठी,
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ जो समरेइ पासनाह तु।
ॐ ह्रॉं ह्रीँ ह्रूँ ह: ग्रॉं ग्रीँ ग्रुँ ग्र त तह सिज्झइ खिप्प,
ॐ ह्रीँ श्रीँ इह णाह समरह भगवंत।।25।।

शब्दार्थ–**इहलोगट्ठी**=इस लोक के लिए, **पर लोगट्ठी**=परलोक के लिए, **जो समरेइ पासनाह**=जो स्मरण करता है पार्श्वनाथ को, **तु त**=तो उसकी, **खिप्पं**=शीघ्र, **सिज्झइ**=सिद्धि हो जाती है। **णाह**=मे ही नही, **इह**=हे लोकवासियो! तुम, **समरह भगवंतं**=पार्श्वनाथ भगवान को भजो।

भावार्थ–जो सासारिक प्राणी इहलोक या परलोक की सुखेच्छा स कल्पतरू सदृश श्री पार्श्वनाथ प्रभु का स्मरण करत ह, उनके मनारथ अवश्यमेव शीघ्र फलते हैं। उन्हे दृढ सकल्प रखते हुए, श्रद्धा भाव से

सदाकाल स्मरण करो।

मूल मत्र–

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ग्रॉ ग्रीँ ग्रुँ ग्र

क्लीँ क्लीँ श्री कलिकुण्ड स्वामिने नम स्वाहा।।26।।

अर्थ–इसको पाठ रूप मे बोला जाता है परन्तु यह कलिकुण्ड स्वामी श्री पार्श्वनाथ प्रभु का मत्र है।

इअ सथुओ महायस्स, भतिब्भर निब्भरेण हियएण।

ता देव! दिज्ज बोहि, भवे भवे पास जिणचन्द।।27।।

शब्दार्थ–इअ संथुओ महायस्स=यह, स्तवन महायशस्वी, भतिब्भर=भक्ति रस समूह से, णिब्भरेण=परिपूर्ण, हियएण=हृदय से, ता देव=इससे हे देव! बोहि दिज्ज=बोधि दे। भवे भवे=भव-भवान्तरो मे, पास जिणचन्द=हे पार्श्व जिनचन्द्र।

भावार्थ–ये स्तवन महायशस्वी त्रिलोक पूज्य पुरुषदानी श्री पार्श्वनाथ के है। श्रद्धाभक्ति भावपूर्ण हृदय से जो इसको पढता है उसको हे पार्श्व जिनचन्द्र! भव-भव मे सम्यक् बोधि प्रदान करते है।

नोट –

1– 13, 15, 16, 18, 21 वी गाथा नवीन है, जिसमे कुछ पाठान्तर दिखाई देता है।

2– पणव सहिय के स्थान पर विग्घणासय व विप्पणासय भी मिलता है।

3– अप्प के स्थान पर खिप्प भी मिलता है।

4– नाग लक्खी महाबलो के स्थान पर नाग लक्ष्मी महाबल भी मिलता है।

णाणेण विणा ण हुन्तिचरण गुणा

ज्ञान के बिना चारित्रिक गुणो का विकास कभी सम्भव नही है। आत्म साधना के लिये ज्ञान को प्रारम्भिक अग माना गया है।

चिन्तामणि स्तोत्र

किं कर्पूरमयं सुधा-रसमयं किं चन्द्र रोचिर्मयं,
किं लावण्य मयं महामणि मयं, कारुण्य केलीमयम्।
विश्वानन्द-मयं महोदय-मय, शोभामयं चिन्मय,
शुक्ल ध्यानमयं वपु-र्जिनपतेर् भूयाद् भवालम्बनम्।।1।।

शब्दार्थ–कि कर्पूरमय=क्या कपूर सा श्वेत, सुधारसमयं=अमृतरस से युक्त, किं चन्द्ररोचिर्मय=क्या चन्द्रकात मणि सम शीतल, किं लावण्य मयं=क्या लावण्य-सम्पदाश्रुत, महामणिमय=महामणि सदृश, कारुण्य केलीमयं=करुणा के अजस्र स्रोत, विश्वानन्दमय=ससार के लिए आनन्दमय, महोदयमय=महान् अभ्युदय युक्त, शोभामयं=श्री से सम्पन्न, चिन्मय=चैतन्य स्वरूप, शुक्ल ध्यानमय=शुक्लध्यान रूप, जिनपते=जिनेन्द्र भगवान् का, वपु=शरीर, भवालम्बनम्=ससार मे आधारभूत, भूयाद्=होवे।

भावार्थ–कपूर के समान श्वेत, सुगन्धित, अमृत सदृश जीवनदायक, चन्द्रकिरण सम शीतल, उज्ज्वल चन्द्रकान्त महामणि सम प्रकाशवान्, सौन्दर्ययुक्त, करुणा भाव के अजस्र निर्झर, ससार को आनन्ददायी, महान् अभ्युदय वाले, श्री से सुशोभित, चेतन्य स्वरूप, शुक्ल ध्यान रूप हे। जिनपते! आपका उपर्युक्त आकार ससार मे शरण देने वाला होवे।

पाताल कलयन् धरा धवलयन् नाकाश-मापूरयन्,
दिक्चक्र क्रमयन् सुरासुर नर, श्रेणीं च विस्मापयन्।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधे, फेनच्छलाल् लोलयन्,
श्रीचिन्तामणि पार्श्व संभव यशो, हसश्चिर राजते।।2।।

शब्दार्थ–पाताल कलयन्=पाताल को पूरित करता हुआ, धरा धवलयन्=भूतल को श्वेत करता हुआ, आकाशमापूरयन्=आकाश को व्याप्त-घेरता हुआ, दिक्चक्रं=दिशा मण्डल को, क्रमयन्=लाघता हुआ, सुरासुर=देवो, दैत्यो, नर श्रेणीं च=और नर समूह को, विस्मापयन्=आश्चर्य चकित करता हुआ, ब्रह्माण्ड=ब्रह्माण्ड को, सुखयन्=सुखी करता हुआ, फेनच्छलात्=फेन के बहाने से, जलधे=सागर के, जलानि=जल को लोलयन्=कपायमान करता हुआ, श्रीचिन्तामणि पार्श्व संभव=श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ से उत्पन्न, यशो हस=यश रूपी हस, चिर=दीर्घकाल तक, राजते=शोभायमान हो रहा हे।

भावार्थ–चितामणि पुरुषादानी श्री पार्श्वनाथ का यश रूपी हस अपने

गोरव गरिमापूर्ण वरदावली से पाताल लोक को स्पर्श करता हुआ, अपनी श्वेतता से भूलोक को जिसने धवलित बनाया, उर्ध्वलोक को व्याप्त होता हुआ समग्र दिशाओ की सीमा को पार कर गया। उसने स्वर्गवासी देवो को विस्मित, पाताल लोक के असुरो को चकित और भूलोक के मानवो को स्तब्ध-आश्चर्यान्वित कर दिया। उसने अपनी लीला-क्रिया कलापो से सम्पूर्ण व्रह्माण्ड को सुखी बनाया, सागर के जल को झकझोर कर उसने फेनमय वना दिया। ऐसा भगवान पार्श्वनाथ का यश रूपी हस चिरकाल तक सुशोभित होता रहे।

पुण्यानां विपणिस्तमो दिनमणि· कामेभ कुम्भे सृणि,
मोक्षे निस्सरणि· सुरेन्द्रकरिणी ज्योति प्रकाशारणि·।
दाने देवमणिर् नतोत्तम जन, श्रेणि· कृपा सारिणि,
विश्वानन्द सुधाघृणि-र्भवभिदे, श्री पार्श्व चिन्तामणि ।।3।।

शब्दार्थ--पुण्याना विपणि=पुण्यो का प्रमुख केन्द्र, तमोदिनमणि=अन्धकार के लिए सूर्य, कामेभ=कामोन्मत्त, कुम्भे=हस्ती के लिए, सृणि=अकुश, मोक्षे निस्सरणि=मोक्ष महल के लिए सीढी, सुरेन्द्रकरिणी=इन्द्र पद देने वाले, ज्योति प्रकाशारणि=तेज प्रस्फुटन के लिए अरणि, दाने देवमणि=दान मे चिन्तामणि, नत उत्तम=नमस्कृत उत्तम, जनश्रेणि=मनुष्यो के समूह से, कृपा सारिणि=अनुग्रह की लहर, विश्वानन्द सुधा घृणि=ससार को आनन्द देने मे अमृत प्रवाह रूप, श्री पार्श्वचिन्तामणि=श्री चितामणि पार्श्वप्रभो, भव=ससार को, भिदे=भेदे।

भावार्थ--जेसे समस्त पदार्थो के मिलने का स्थान बाजार हे, वेसे ही आप पुण्यकर्मो-सुखो के प्रधान केन्द्र है। जिस तरह सूर्य अधकार का नाशक है, उसी तरह आप अज्ञान अधकार को दूर करने मे सूर्य से अधिक प्रकाश्यमान है, वासना रूपी मदोद्धत गजराज को वश करने के लिए अकुश व मोक्ष-प्रासाद पर चढने के लिए सोपान, देवेन्द्र पद को देने वाले हे, अर्थात् भक्तो की अभिलाषा को पूर्ण करने मे कल्पवृक्ष, कर्मो से आवृत अन्तर्ज्योति के स्फुटन के लिए अरणि, चिन्तामणि सम निष्पक्ष सर्व जगत् की चिन्ता को हरने वाले हे। ससार के श्रेष्ठ जनो से नमस्कृत तथा भक्तो के सजीवन घूटी समान हे। ऐसे श्री चितामणि पार्श्वनाथ जन्म-जरा-मरण रूप ससार का भेदन करे।

श्रीचिन्तामणि पार्श्व विश्वजनता, सजीवनस्त्व मया,
दृष्टस् तात। तत श्रिय सम्भवन्, नाशक्रमा चक्रिणम्।

मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर् बहुविधं, सिद्ध मनोवाछितं,
दुर्दैव दुरितं च दुर्दिन भय, कष्टं प्रणष्ट मम।।4।।

शब्दार्थ–तात=हे लोकरक्षक!, **श्रीचितामणि पार्श्व**=श्री चितामणि पार्श्व प्रभो!, **त्वं**=आप, **मया**=मेरे द्वारा, **विश्वजनता**=ससारी प्राणियो के लिए, **सजीवन**=प्राण स्वरूप, **दृष्टः**=देखे गए है, **तत**=इसलिए, **आशक्रम्**=इन्द्र से लेकर, **आचक्रिणम्**=चक्रवर्ती तक की, **श्रिय**=सम्पदा, **न सम्भवन्**=आपके समान नही है, **मुक्ति**=मुक्ति, **हस्तयो**=हाथो पर, **कीडति**=खेलती है, **बहुविध**=अनेक प्रकार के, **मनोवाछित**=मनोरथ, **सिद्धं**=सिद्ध हुए, **दुर्दैवं**=दुर्भाग्य, **दुरितं**=पापकर्म **दुर्दिन**=बुरे दिन, **भय**=भय, **च कष्ट**=ओर कष्ट, **प्रणष्ट मम**=विनष्ट हो गए है मेरे।

भावार्थ–हे प्रभो! मन चिन्तित आशाओ को पूर्ण करने से चिन्तामणि, सासारिक प्राणियो के जीवन सरक्षण करने से सजीवनी बुटी रूप दृष्टिगोचर हुए, आपकी अनन्य कृपा से इन्द्र का ऐश्वर्य, चक्रवर्ती की ऋद्धि ओर साधको की सिद्धि-मेरे हाथो मे खेलने लगी है, हे भगवन्! आपकी कृपा से दुर्भाग्य, दुष्कर्म, अशुभ-दिन, भय और कष्ट, ये सब मेरे नष्ट हो गये हे।

यस्य प्रौढतम प्रताप तपनः प्रोद्दाम-धामा-जगज्,
जङ्घालः कलिकाल केलि-दलनो, मोहान्ध-विध्वसक।
नित्योद्योत पद समस्त कमला, केलीगृहं राजते
स श्री पार्श्वजिनो जने हितकरश्, चितामणिः पातु माम्।।5।।

शब्दार्थ–**यस्य**=जिनकी, **प्रौढतम-प्रताप-तपन**=अति प्रचण्ड [illegible], **प्रोद्दाम-धामा**=प्रबलतर केन्द्र बनी, **जगज्जघाल**=सम्पूर्ण जगत को लाघने वाली, **कलिकाल-केलि दलन**=कलयुगी क्रीडा को दलने वाली, **मोहान्ध विध्वंसक**=मोह अन्धकार की विध्वसक है, **नित्योद्योत**=नित्य प्रकाश रूप, **पद**=चरण, **समस्त कमला**=सर्वसम्पदाओ की, **केली**=क्रीडा के लिए, **गृह**=गृह स्वरूप, **राजते**=शोभायमान हो रही है, **सः चितामणि श्री पार्श्वजिनः**=वे चिन्तामणि श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र!, **जने हितकर**=प्राणियो का हित करने वाले, **माम्**=मेरी, **पातु**=रक्षा करे।

भावार्थ–चिन्तामणि श्रीपार्श्व जिनेन्द्र का नित्य प्रकाशमान चरण समस्त लक्ष्मी का क्रीडास्थल, जिनका अत्यन्त गरिमामय यशस्वी जीवन प्रबलतम आकर्षण का केन्द्र है, ससार के मोहान्धकार को नष्ट करने वाले है, ससार के चरित्र को जानने वाले हैं, कलिकाल के प्रभाव को नष्ट करने वाले, समृद्धि से सुशोभित, सासारिक जीवों का कल्याण करने वाले ह। हे

चिन्तामणि! मेरा रक्षण करे। जो आपकी भक्ति करता हे उसके यहा लक्ष्मी का वास सदा रहता है।

विश्व व्यापि-तमो हिनस्ति तरणि र्बालोऽपि कल्पाकुरो,
दारिद्रयाणि गजावलीं हरि शिशु, काष्ठानि वह्ने कण।
पीयूषस्य लवोऽपि रोग निवह, यद्वत् तथा ते विभो,
मूर्ति स्फूर्ति मती सती त्रिजगती, कष्टानि हर्तुं क्षमा।।6।।

शब्दार्थ–अपि=भी विभो=हे प्रभो!, यद्वत्=जैसे, बालतरणि=उदित होता हुआ सूर्य, अपि=भी विश्वव्यापि=अखिल विश्व मे फैले, तम=अन्धकार को, कल्पाकुर=कल्पवृक्ष का अकुर, दारिद्रयाणि=दरिद्रता को, हरिशिशु=सिह का बच्चा, गजावलीं=हाथियो के झुण्ड को, वह्ने कण=अग्नि कण, काष्ठानि=काष्ठो को, पीयूषस्य लव अपि=अमृत का बिन्दु भी, रोगनिवह=रोगो के समूह को, हिनस्ति=नष्ट कर देता है, तथा ते=वैसे ही आपकी, स्फूर्तिमती=दीप्तिमत, सती=हुई मूर्ति=मुख मुद्रा, त्रिजगती=तीनो जगत के, कष्टानि हर्तुं=कष्टो को हरने के लिए, क्षमा=समर्थ है।

भावार्थ–हे भगवन्! प्रौढ सूर्य तो क्या,उदित होने वाला बाल सूर्य भी ससार मे फैले हुए अन्धकार को नष्ट कर देता है, कल्पवृक्ष का अकुर दरिद्रता को दूर कर देता है, सिह का नन्हा सा बच्चा भी हस्ति झुड को छिन्न-भिन्न कर देता है, अग्नि की जरा सी चिनगारी काष्ट समूह को भस्म कर देती है, अमृत का एक बिदु अनेक रोगो को नष्ट कर देता हे। इसी प्रकार आपका तेजोमय दीप्तिमत जीवन त्रिभुवन के कष्टो को नष्ट करने मे समर्थ है।

श्री चिन्तामणि मन्त्रमोकृति युत, ह्रींकार साराश्रित,
श्रीमर्हन् नमिऊण पास कलित त्रैलोक्य वश्यावहम्।
द्वेधाभूत विषापह विसहर, श्रेय प्रभावाश्रय,
सोल्लास वसहाकित, जिन फुलिगा-नन्दद देहिनाम्।।7।।

शब्दार्थ–ओकृतियुत्त=ॐकार की आकृति वाला, ह्रींकार साराश्रित=ह्रींकार सहित, श्रीमर्हन् नमिऊण पासकलित=श्री अर्ह नमिऊण पाश से आबद्ध श्रीचितामणि मत्र=श्री चिन्तामणि मत्र, त्रैलोक्य वश्यावह=त्रिभुवन को वश करने वाला, द्वेधाभूत विषापह=जगम ओर स्थावर प्राणियो से उत्पन्न विष को दूर करने वाला, विषहर=सर्प विष को हरने वाला, श्रेय प्रभावाश्रय=कल्याणकारी प्रभावक क्षमता वाला आश्रयदाता को, सोल्लासं=उल्लास सहित है, वसहाकित=व स ह पद से चिह्नित,

जिनः स्फुलिग आनंदद=जिन देव के समान आनन्द देने वाला है, देहिनां=देह धारियो को।

भावार्थ–चितामणि मत्र ऊँ शब्दाकृति वाला, ह्रीँ माया बीज से युक्त, श्रीँ बीजाक्षर से सम्पन्न, अर्ह पद से वेष्टित, नमिऊण से आबद्ध है। यह मत्र तीन लोक को वश मे करने वाला, त्रस-स्थावर जीवो से उत्पन्न विष का निवारक, वासना रूप विषय-विष को दूर कर, कल्याणकारी प्रभाव को देने वाला, समृद्धिशाली है, व स ह इन अक्षरो से चिह्नित यह चिन्तामणि मत्र समस्त देहधारियो को ऋद्धि, सिद्धि और मुक्ति के आनन्द को देने वाला हे।

ह्रीँ श्रीँकार-वरं नमोऽक्षर पर ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्व-मधिप चिंतामणी संज्ञकम्।
भाले वाम भुजे च नाभि करयोर भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चा दष्ट-दलेषु ते शिवपद, द्वि त्रैर् भवैर् यन्त्यिहो।।8।।

शब्दार्थ–ह्रीँ श्रीँकार-वरं=ह्रीँ श्रीँ बीजाक्षर से श्रेष्ठ, नमोऽक्षर परं=नम अक्षर अन्त मे है, चितामणि सज्ञक=चिन्तामणि की सज्ञा वाले, पार्श्वमधिप=पार्श्वनाथ, अधिपं=स्वामी को, हृत=हृदय, पद्मे=कमल मे, भाले=भाल मे, वाम भुजे=बायी भुजा मे, नाभि करयो=नाभि ओर दोनो हाथो पर, च भूय=और पुन, दक्षिणे भुजे=दक्षिण भुजा पर, पश्चात्=फिर, अष्ट-दलेषु=अष्ट पत्र वाले कमल मे, विनिवेश्य=धारण करके, ये योगिनो= जो योगीजन, ध्यायन्ति=ध्यान करते हैं, ते द्वि त्रै=वे दो तीन, भवै=भवो अहो=आश्चर्य है, शिव पदं=शिव पद को, यान्ति=जाते है।

भावार्थ–ह्रीँ और श्रीँ कार से समन्वित और अन्त मे नम हे उस ~ ।मणि सज्ञा वाले भगवान् पार्श्वनाथ का जो योगिजन हृदय कमल मे अष्ट कमल दल की धारणा करके ध्यान करते है, अथवा श्री चिन्तामणि मत्र को अपने भाल-मस्तक पर, वाम (बायी) भुजा, नाभि स्थल पर, या दोनो हाथो पर, दाहिनी भुजा पर धारण करते हे वे दो तीन भवो मे शिव पद को प्राप्त कर लेते है। इसमे क्या आश्चर्य है।

नो रोगा नैव शोका, न कलह कलना, नारि-मारि प्रचाराः,
नैवाधि-र्नासमाधिर्, न च दर दुरिते, दुष्ट दारिद्रता नो।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो, न हरि करि गणा, व्याल वेताल जाला,
जायन्ते पार्श्व चिंतामणि नति वशतः, प्राणिना भक्ति भाजाम्।।9।।

शब्दार्थ–भक्ति भाजा=भक्ति से ध्याने वाले, प्राणिना=प्राणियो को, पार्श्व चिन्तामणि=चिंतामणि पार्श्व प्रभू को, नतिवशतः=नमस्कार

करने से, **नो रोगा**=न रोग होते है, **न एव शोकाः**=न ही शोक होते है, **न कलह कलना**=न झगडे होते है, **न अरि-मारि प्रचारा**=न शत्रुता, महामारी का प्रसार होता है, **न एव आधि**=न ही मानसिक वेदना होती हे, **न असमाधि**=न असमाधि होती है, **न च दरदुरिते**=और न पाप रहता हे, **नो दुष्ट दारिद्रता**=न दुष्ट दरिद्रता होती है, **नो शाकिन्य**=न शाकिनी डाकिनी, **नो ग्रहा**=न मगलादि ग्रह **न हरि करि गणा**=न सिह, हाथियो का समूह, **व्याल वेताल जाला**=सर्प वेतालादि का उपद्रव ही, **जायते**=उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान् को भक्ति भाव से, ध्याने और नमस्कार करने वाले भक्तो को न रोग सताता, न शोक, न झगडा होता है, न शत्रु बनते है, न ईति-भीति अर्थात् महामारी प्रभावित करती है, न मानसिक सताप, न शारीरिक वेदना होती है और न चित्त-विक्षेप। न भय रहता हे न पाप तथा दरिद्रता, शाकिनी, भूत-पिशाच और ग्रहजनित भय, सर्प, सिह, गजराज आदि का कोई उपद्रव भी नही होता हैं।

गीर्वाण-द्रुम धेनु-कुम्भ-मणयस्, तस्यागणे रिंगिणो,
देवा दानव मानवा सविनय, तस्मै हित ध्यायिन।
लक्ष्मीस् तस्य वशाऽवशेव गुणिना, ब्रह्माण्ड सस्थायिनी,
श्री चितामणि पार्श्वनाथ मनिश सस्तौति यो ध्यायति।।10।।

शब्दार्थ–**य**=जो, **श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ**=श्रीचिंतामणि पार्श्वप्रभु को, **अनिश**=निरन्तर, **सस्तौति**=स्तुति करता है, **ध्यायति**=ध्याता ह **तस्य अगणे**=उसके आगन मे, **गीर्वाणद्रुम**=कल्पवृक्ष, **धेनु कुम्भ मणय**=कामधेनु, कामकुभ, चिन्तामणिरत्न, **रिंगिण**=क्रीडा करते है, **तस्मै**=उसके लिए **देवा दानव मानवा**=देवता, राक्षस, मानवगण, **सविनय हित ध्यायिन**=नम्र हुए हित कामना करते है, **तस्य ब्रह्माण्ड सस्थायिनी**=उसको त्रिभुवन मे रहने वाली, **लक्ष्मी**=लक्ष्मी, **गुणिना वशा**=गुणीजनो की आधीनता, **अवशाइव**=पराधीनवत् रहती है।

भावार्थ–जो भक्त कल्पतरु पार्श्वनाथ प्रभु की सदैव भाव सहित स्तुति करता हे, उनका ध्यान करता है उसके घर के आगन मे कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुम्भ और चिन्तामणि रत्न सदा विद्यमान रहते है, उसके मगलमय आरोग्यपूर्ण जीवन की देव-दानव और मानव सभी हित कामना रखते है। गुणी सत्पुरुषो के अधीन रहने वाली लक्ष्मी विवश होकर अधीन हो जाती है।

इति जिनपति पार्श्व., पार्श्व पार्श्वाख्य यक्ष,
प्रदलित दुरितौघः, प्रीणित· प्राणि-सार्थ·।
त्रिभुवन जन-वाञ्छा-दान-चिन्तामणीक,
शिवपद तरुबीजं, बोधिबीज ददातु।।11।।

शब्दार्थ–इति=इस प्रकार, **पार्श्व पार्श्वाख्य यक्ष.**=पार्श्व नामक यक्ष जिनके पार्श्व मे है, **प्रदलित दुरितौघ.**=पाप पुज के विनाशक है, **प्रीणित**=हर्षोत्पादक है, **प्राणि सार्थः**=प्राणियो के समूह को, **त्रिभुवन जनवाञ्छा**=त्रि जगत के लोगो की इच्छा पूरने मे, **दान चिन्तामणीक.**=चिन्तामणि सम है। **जिनपति पार्श्व**=ऐसे श्री पार्श्व जिनेन्द्र, **शिवपद तरुबीज**=मोक्ष वृक्ष के लिए बीज स्वरूप, **बोधि बीजं**=बोधि बीज को, **ददातु**=देवे।

भावार्थ–पार्श्व नामक यक्ष जिनकी सेवा मे निकट उपस्थित रहता है, जिन्होने सम्पूर्ण पापकर्मो के समूह का अन्त कर दिया, सबके लिए आनन्दकारी है जो कामना के अनुसार मनोरथ पूर्ण करने मे चिन्तामणि सदृश हे, वे पार्श्वनाथ जिनेन्द्र। मोक्ष रूप वृक्ष का सम्यक्त्व रूप बोध बीज मुझे देवे।

कामेभोये पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइ।

अप्राप्त पदार्थो की कामना मे व्यक्ति उन पदार्थो को प्राप्त किये बिना ही दुर्गति का मेहमान हो जाता है। कदाचित् पूर्व के सत्कर्मो से मनुष्यादि शुभ-गति भी मिल जाये तो भी अगहीनता, दारिद्रयता कुरूपता आदि के कारण दु खी बना रहता है। इस रूप मे अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने रूप कामना आर्त्तध्यान, दु ख, चिन्ता एव तनाव को ही उत्पन्न करता है। क्या इसे शुभ फल माना जा सकता है?

: श्री तिजय-पुहुत स्तोत्र :

तिजय-पुहुत्त पयासय-अट्ठ महापाडिहेर जुत्ताण।
समयक्खित्त ठियाण, सरेमि चक्क जिणदाणं।।1।।

शब्दार्थ–तिजय=तीन जगत के, पुहुत्त=समर्थ, पयासय=प्रकाशक, अट्ठ महापाडिहेर=आठ महा प्रातिहार्यो, जुत्ताण=सहित, समयक्खित्त=मनुष्य क्षेत्र मे, ठियाण=रहे हुए, सरेमि=स्मरण करता हू, चक्क जिणदाण=जिनेन्द्र देवो के समूह को।

भावार्थ–स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक को प्रकाशित करने मे समर्थ, अष्ट महा प्रातिहार्यो सहित, मनुष्य क्षेत्र मे, काल विशेष मे रहे हुए देवाधिदेव जिनेन्द्र के समूह विशेप का स्मरण करता हू।

पणवीसा य असीआ, पनरस पन्नास जिणवर समूहो
नासेउ सयल दुरिय, भवियाण भत्ति जुत्ताण।।2।।

शब्दार्थ–पणवीसा=पच्चीस, य असीआ=ओर अस्सी, पनरस=पद्रह, पन्नास=पचास, जिणवर समूहो=जिनेश्वर देव का समूह, भत्ति जुत्ताण=उपासना मे सलग्न, भवियाण=भव्यो के, सयल दुरिय=सम्पूर्ण पाप वासनाओ को, नासेउ=नष्ट करे।

भावार्थ–25, 80, 15, ओर 50 इस तरह एक सो सित्तर तीर्थकर देव का समूह ऐस प्रभु सेवा-भक्ति मे सलग्न भव्यजीवो के समस्त पापकर्मो को नष्ट करे।

बीसा पणयाला वि य, तीसा पन्नत्तरी जिणवरिंदा।
गह-भूअ-रक्ख साईणि घोरूवस्सग पणासतु।।3।।

शब्दार्थ–बीसा=बीस, पणयाला य=और पैतालीस, तीसा=तीस, पन्नत्तरी=पचहत्तर, जिणवरिंदा=जिनेन्द्र, गह=मगलादि ग्रहो, भूअ=भूत, रक्ख-साइणि=राक्षस ओर शाकिनियो के, घोरूवस्सग=घोर उपसर्गो को, पणासतु=नष्ट करे।

भावार्थ–20, 45, 30 और 75 इस तरह एक सौ सित्तर जिनेन्द्र भगवान्! मगल आदि ग्रहो, भूतो, राक्षसो ओर शाकिनियो से उत्पन्न भयकर दु खो का नाश करे।

सत्तरि पणतीसा वि य, सट्ठी पचेव जिणगणो एसो।
वाहि जल जलण हरि करि, चोरारि महाभय हरउ।।4।।

शब्दार्थ–सत्तरि=सत्तर, पणतीसा वि य=और पैतीस, सट्ठी=साठ
पंचेव=पांच, जिणगणो=जिनेश्वरो का समूह, एसो=यह, वाहि-जल
जलण-हरि-करि=व्याधि, जल, अग्नि, सिह, हस्ती, चोरारि महाभयं=चो
ओर शत्रुओ के महाभय को, हरउ=हरण करे।

भावार्थ–70, 35, 60 और 5 इस तरह एक सौ सित्तर जिनेन्द्रो क
समूह, रोग, जल, अग्नि, सिह, हाथी, चोर और शत्रुओ के महाभय का हरण
करे।

पणपन्ना य दसेव य, पण्णट्ठी तह य चेव चालीसा।
रक्खंतु मे सरीरं, देवासुर-पणमिया सिद्धा।।5।।

शब्दार्थ–पणपन्ना=पच्चपन, य दसेव=और दस, पण्णट्ठी=पैसठ,
य तह चालीसा=ओर तथा चालीस, देवासुर पणमिया=देवो और असुरो
रा नमरकृत, सिद्धा=सिद्ध, मे सरीर=मेरे शरीर का, रक्खंतु=रक्षण करे।

भावार्थ–55, 10, 65 और 40 इस तरह एक सौ सत्तर देवाधिदेव
जिनवर, जो देवो और दैत्यो से नमस्कार किये हुए है तथा सिद्ध बने है, वे
मेरे शरीर का सरक्षण करे।

ॐ हर हुँ हः सर सु स, हर हुँ हः तह य चेव सर सु स।
आलिहिय नाम गब्भ, चक्क किर सव्वओ भद्द।।6।।

शब्दार्थ–ॐ=परमेष्ठी वाचक, ह र हुँ ह=इनसे पद्मा, जया विजया,
अपराजिता का ग्रहण, तह य स र सु स=ये चार बीजाक्षर उपसर्ग निवारण
इन सोलह ह-र, हु-ह रा-र, सु स ह-र, हुँ ह, और स र सु स बीजाक्षरो
ा छाड अनुक्रम से, आलिहिय=लिखना, नाम गब्भ=नाम के साथ, चक्क=चक्र,
किर=निश्चय ही, सव्वओ भद्द=सर्वत्तोभद्र को।

भावार्थ–ॐ परमेष्ठि वाचक है। ह र हुँ ह इन चार अक्षरो से दुरित
नाशक सूर्य बीज, पाप दाहक अग्नि बीज, भूतादि नाशक क्रोध बीज, आत्म
रक्षक कवच ये सूर्य बीज मे सपुटित चार बीजाक्षर है। इनसे पद्मा जया,
तिजया अपराजिता चार देवियो को ग्रहण किया है तथा स र सु स इन चार
बीजाक्षरो से सोम्यता कारक चन्द्रबीज, तेजउद्दीपन अग्नि बीज सर्व उपसर्ग
निवारक बीज और चन्द्र बीज सपुटित है। इन को उपसर्ग हरने के लिए
ग्रहण किया है। ये सोलह अक्षर ह-र, हु-ह स-र, सु स ह-र, हुँ ह, ओर
स र सु स इन बीच के खानो को छोडकर यत्र को अनुक्रम से लिखना ओर
साधना करने वाले का नाम ॐ के साथ यत्र के मध्य मे लिखना। यह
रार्वतोभद्र नामक यत्र समझना।

ॐ रोहिणी पन्नत्ति, वज्जसिखला तह य वज्जअंकुसिया।
चक्केसरि नरदत्ता, कालि महाकालि तह य गोरी।।7।।
गधारी महज्जाला, माणवि वइरुट्ट तह य अच्छुत्ता।
माणसि महामाणसिआ, विज्जा देवीओ रक्खंतु।।8।।

शब्दार्थ–ॐ रोहिणि=रोहिणी, पन्नत्ति=प्रज्ञप्ति, वज्जसि खला=वज्रश्रृखला, तह य वज्जअकुसिया=तथा और वज्राकुशी, चक्केसरि=चक्रेश्वरी, नरदत्ता=नरदत्ता कालि=काली, महाकालि=महाकाली, तह=तथा, गौरी=गोरी।

गधारी=गॉधारी, महज्जाला=महाज्वाला, माणवि=मानवी, वइरुट्ट=वेरोट्या, तह य अच्छुत्ता=तथा ओर अच्छुप्ता, माणसि=मानसी महामाणसिया =महामानसिका, विज्जादेवीओ=विद्यादेविए, रक्खतु=रक्षण करे।

भावार्थ--ॐ ह्रीँ श्रीँ इन तीन वीजाक्षरा के साथ यत्र मे सोलह विद्या देवियो के उपर्युक्त नाम भी लिखना चाहिए।

पचदस कम्मभूमिसु, उप्पन्न सत्तरि जिणाण सयं।
विविह रयणाइ वण्णोव-सोहिय हरउ दुरियाइ।।9।।

शब्दार्थ--पचदस=पन्द्रह, कम्मभूमिसु=कर्मभूमि मे, उप्पन्नं=उत्पन्न, सत्तरिसय जिणाण=एक सो सत्तर जिनेश्वर विविह रयणाइ=विविध रत्नादिक से, वन्नोव सोहिय=वर्णो से उपशोभित, हरउ दुरियाइ=हरण करे पापो को।

भावार्थ--पन्द्रह कर्मभूमि क्षेत्र मे उत्पन्न एक सौ सत्तर तीर्थकर अनेक रत्नो के वर्णो से शोभायमान हो रहे हे वे पापकर्मो को नष्ट करे।

चउतीस अइसय-जुआ, अट्ठ महापाडिहेरकय सोहा।
तित्थयरा गय मोहा, झाएयव्वा पयत्तेण।।10।।

शब्दार्थ–चउतीस=चोतीस, अइसय जुआ=अतिशयो से युक्त, अट्ठ महापाडिहेर=अष्ठ महाप्रातिहार्यो से, कय=किये, सोहा=शोभायमान, तित्थअरा गयमोहा=मोह रहित तीर्थकर प्रभु को झाएयव्वा-पयत्तेण=ध्याना चाहिए प्रयत्न करके।

भावार्थ--चोतीस अतिशयो से सम्पन्न, आठ महाप्रातिहार्यो से शोभायमान तथा मोह विमुक्त तीर्थकर महाप्रभु का ध्यान सचेष्टा करना चाहिए।

ऊँ वरकणय सखविद्रुम मरगयघण सन्निह विगयमोह।
सत्तरिसय जिणाण, सव्वामर पूइअ वंदे स्वाहा।।11।।

शब्दार्थ–ऊँ वरकणय=श्रेष्ठ स्वर्ण सख=सख विद्रुम=प्रवाल, मरगय=पन्ना घण=मेघ, सन्निह=सदृश, विगयमोह=मोह रहित, सत्तरि

सय जिणाणं=एक सौ सत्तर जिनेन्द्र देव का जो, सव्वामरपूइय=सब देवो से पूजित, वदे=नमस्कार हो, स्वाहा।

भावार्थ–श्रेष्ठ स्वर्ण, सख, प्रवाल, पन्ना, मेघ के समान है, मोह विमुक्त है, जो देवताओ से पूजित है, ऐसे एक सौ सत्तर जिनेन्द्र भगवन्त को ॐकार सहित नमस्कार करता हू।

ॐ भवणवइ वाणवतर, जोइसवासी विमाणवासी य।
जे केवि दुट्ठ देवा, ते सव्वे उवसमतु मम स्वाहा।।12।।

शब्दार्थ–ॐ=परमेष्ठि वाचक, भवणवइ=भवनपति, वाणवतर=वाणव्यन्तर, जोइसवासी विमाणवासी अ=ज्योतिषी और वैमानिक देवो मे रहने वाले, जे के वि=जो कोई भी, दुट्ठ देवा=दुष्ट देव, ते सव्वे=वे सब, उवसमतु=उपशान्त होवे, मम=मेरे, स्वाहा।

भावार्थ–भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक आदि जो कोई दुष्ट देव हो, वे सब मेरे प्रति उपशान्त हो।

चन्दण कप्पूरेण, फलए, लिहिऊण खालिअ पीअ।
एगंतराइ गह भूअ, साइणिमुग्ग पणासेइ।।13।।

शब्दार्थ–चन्दण कप्पूरेण=चन्दन और कपूर से, फलए=काष्ठ पट पर, लिहिऊण=लिख करके, खालिअ=धोकर, पीअं=पीने से, एगतराइं=एकान्तर ज्वर, गहभूअसाईणि मुग्ग=ग्रह पीडा, भूत शाकिनी, रोग विशेष, पणासेइ=नष्ट होते है।

भावार्थ–चन्दन कपूर से काष्ट फलक या कासे के थाल पर लिख करके उसे छाया मे सूखा, धोकर पीये तो एकान्तर ज्वर, ग्रह, भूत, शाकिनी की उग्र पीडा विशेष नष्ट हो जाती है।

इय सत्तरिसय जतं, सम्म मत दुवारि पडिलिहिय।
दुरिआरि विजयवत, निब्भन्त निच्च मच्चेह।।14।।

शब्दार्थ–इय=इस, सत्तरिसय=एक सौ सत्तर का, जत=यत्र, सम्मं मंतं=सम्यक् मत्र, दुवारि पडिलिहिय=प्रवेश मार्ग पर लिखा हुआ, दुरिआरि=पाप और शत्रुओ पर, विजयवत= विजय दिलाने वाला है, निब्भन्तं=नि सदेह, निच्चमच्चेह=नित्य अर्चन करना चाहिए।

भावार्थ–यह एक सौ सित्तर तीर्थकरो का यत्र सम्यग्मत्र है। इसे प्रवेश द्वार पर लिखने से पाप और शत्रुओ से नि सदेह विजय प्राप्त होती है। अत इसका अर्चन करना चाहिए।

वज्रपंजर-स्तोत्र

ॐ परमेष्ठि नमस्कार, सार नव पदात्मक।
आत्मरक्षाकर वज्र-पञ्जराभ स्मराम्यहम्।।1।।

शब्दार्थ—नव पदात्मक=नौ पद वाले, सार=नवनीत स्वरूप, वज्र पजराभ=वज्र निर्मित पिजरे के समान, आत्म रक्षा कर=आत्मा की रक्षा करने वाले, परमेष्ठि नमस्कार=अत्यन्त स्पृहणीय पच परमेष्ठि नमस्कार को, अह स्मरामि=मै स्मरण करता हू।

भावार्थ—नमरकार महामत्र के नव पद इस जगत मे सारभूत है। यह पच परमेष्ठि नमस्कार आत्म रक्षा करने मे वज्र निर्मित पिजरे के समान है, अत मे इसका स्मरण करता हू।

ॐ णमो अरिहताण, शिरस्क शिरसि स्थित।
ॐ णमो सव्व सिद्धाण, मुखे मुख पट वरम्।।2।।

शब्दार्थ—ॐ णमो अरिहताण=नमस्कार महामत्र का यह प्रथम पद, शिरसि स्थित=शिर पर रहा, शिरस्क=मस्तक का रक्षक हे, ॐ णमो सव्व सिद्धाण=नमस्कार का यह दूसरा सिद्ध पद, मुखे=मुख पर, वर=श्रेष्ठ, मुख पट=मुख का आवरण स्वरूप हे।

भावार्थ--"ॐ णमो अरिहताण" महामत्र का यह प्रथम पद मुकुट स्वरूप मस्तक पर विद्यमान है ऐसा जाने और रक्षा करते समय मस्तक का कर से स्पर्श करे। "ॐ णमो सव्व सिद्धाण" यह मत्र मुख पर श्रेष्ठ वस्त्र के रूप मे रहा हुआ है। इसे बोलते समय मुख पर हाथ का स्पर्श करे।

ॐ णमो आयरियाण, अगरक्षाति शायिनी।
ॐ णमो उवज्झायाण, आयुध हस्तयोर्दृढम्।।3।।

शब्दार्थ—ॐ णमो आयरियाण=महामत्र का यह तीसरा पद अतिशायिनी=सर्व श्रेष्ठ, अग रक्षा=अग रक्षक हे। ॐ णमो उवज्झायाण=महामत्र का यह चतुर्थ पद, हस्तयो=हाथो मे, दृढ=सशक्त, आयुध=हथियार रूप है।

भावार्थ—'ॐ णमो आयरियाण' इस मत्र पद को सर्वश्रेष्ठ अग रक्षक के रूप मे स्वीकारे, इसे बोलते समय शरीर पर हाथ फिरावे। ॐ णमो उवज्झायाण इसका उच्चारण करते समय दोनो हाथो म शस्त्रास्त्र पकडने रूप दृढ चेष्टा करे एव शस्त्रास्त्र सन्नद्ध अपने को समझे।

ॐ णमो लोए सव्व साहूणं मोचके पादयोः शुभे।
ऐसो पंच णमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले।।4।।

शब्दार्थ–"ॐ णमो लोए सव्व साहूण"=महामत्र के इस पाचवे पद को, पादयोः=चरणो का, शुभे मोचके=हितैषी रक्षक के रूप मे धारे, "ऐसा पंच णमुक्कारो"=महामत्र के इस चूलिका रूप छट्ठे चरण को, तले=पैरो के नीचले भाग मे शिला वज्रमयी=वज्रमयी शिला जाने।

भावार्थ–"ॐ णमो लोए सव्व साहूण"=महामत्र के इस पाचवे पद को चरण रक्षक समझे, इसे बोलते समय दोनो हाथो से पावो को छूवे। "ऐसो पच णमुक्कारो" इस मत्र को पाद तल मे रही वज्र शिला के रूप मे स्वीकारे। इसको बोलते समय आसन पर हाथ का स्पर्श करने के साथ मन मे सकल्प करे कि मै वज्रमय शिला पर स्थित हू अत भू लोक एव पाताल लोक का काई विघ्न मेरा कुछ भी बिगाड नही सकता।

सव्व पाव प्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहि।
मंगलाण च सव्वेसि, खादिरागार खातिका।।5।।

शब्दार्थ–"सव्व पाव प्पणासणो"=महामत्र का यह सातवा चरण बहिः=बाहर मे, वज्रमयो=वज्रमय, वप्रः=परकोटे का रूप है। मगलाण च सव्वेसि=यह आठवा पद, खादिरागार=खैर के भरे अगारे की, खातिका= खाई रूप हे।

भावार्थ–'सव्व पाव प्पणासणो' महामत्र के इस चरण को चहु दिशा मे बने हुए वज्रमय दुर्ग क रूप मे कल्पित करे ओर यह सकल्प दोहराए कि मेरे सब ओर वज्र का अभेद्य कोट है, दोनो हाथो को चारो ओर कोट की कल्पना करते हुए अगुली घूमावे, "मगलाण च सव्वेसि' इस मत्र को खैर की लकडी के धधकते अगारो से परिपूर्ण खाई समझना। इसे बोलते समय चिन्तन भी वही करना कि वज्रमय परकोटे के बाहर चहु ओर खाई मे धधकते अगारे भरे हुए है।

स्वाहान्त च पद ज्ञेय, पढम हवइ मगल।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधान देह रक्षणे।।6।।

शब्दार्थ–स्वाहान्त=स्वाहा अन्त मे, पद=पद को, ज्ञेय=जानना चाहिए। "पढमं हवइ मंगल"=इस नववे पद को, वप्रोपरि=परकोटे पर, देह रक्षणे=शारीरिक रक्षा के लिए, वज्रमय=वज्रमय, पिधान=ढक्कन समझे।

भावार्थ–'पढम हवइ मगल' इसे किले का वज्रमय कपाट समझे।

यह सकल्प करे कि वज्रमय परकोटे पर आत्मरक्षार्थ यह वज्रमय ढक्कन है। इस पद के अन्त मे 'स्वाहा' पल्लव को भी जोड लेना चाहिए।

महाप्रभावा रक्षेय, क्षुद्रोपद्रव नाशिनी।
परमेष्ठि पदोद्भूता, कथिता· पूर्वसूरिभिः।।7।।

शब्दार्थ–इय=यह, परमेष्ठि पदोद्भूता=परमेष्ठि के पदो से उत्पन्न, क्षुद्रोपद्रव=दुष्टो के उपद्रवो को, नाशिनी=नष्ट करने वाली है। महाप्रभावा=महान प्रभावशाली, रक्षा=रक्षा कवच, पूर्व सूरिभि=पूर्वाचार्य के द्वारा, कथिता=कहा गया है।

भावार्थ–परमेष्ठि महामत्र के पदो से प्रकट महान् प्रभावशाली यह रक्षा कवच सर्व क्षुद्रोपद्रवो को नष्ट करने वाला है, ऐसा पूर्वाचार्यो का कथन है।

यश्चैव कुरुते रक्षा, परमेष्ठि पदै· सदा।
तस्य न स्याद् भय, व्याधि राधिश्चापि कदाचन।।8।।

शब्दार्थ–एव=इस प्रकार य·=जो, परमेष्ठि पदै=परमेष्ठि के पदो से, सदा रक्षा कुरुते=सदैव रक्षा करते है। तस्य कदाचन=उसको कोई, व्याधि=शारीरिक वेदना, आधि च=और मानसिक पीडा, •भय अपि न स्यात्=भय भी नही होता है।

भावार्थ–जो पुरुष इन परमेष्ठि महामत्र के द्वारा आत्म रक्षा करता है, उसे शारीरिक वेदना ओर मानसिक पीडा तथा देविक प्रकोप का भय नही रहता है। यह रक्षा कवच सर्व प्रकार के अनिष्टो एव उपद्रवो से रक्षा करने वाला है।

परियट्टणाए वजणाइ जणयइ,
वजण लद्धि च उप्पाएइ।

उत्तराध्ययन सूत्र

ज्ञान के पुन पुन आवर्त्तन से अक्षरानुसारिणी लब्धि उत्पन्न होती है। उसके प्रभाव से अक्षर या पदो के देखने मात्र से उनसे सम्बन्धित अन्य अनेक अक्षरो या पदो का ज्ञान हो जाता है, ऐसी तीक्ष्ण मेधा उपलब्ध हो जाती ह।

: ग्रह शांति स्तोत्र :

जगदगुरुं नमस्कृत्य, श्रुत्वा सद्गुरु भाषित।
ग्रह शातिं प्रवक्ष्यामि, लोकाना, सुख हेतवे।।1।।

शब्दार्थ–जगद गुरुं=जगतगुरू को, नमस्कृत्य=नमस्कार करके, सद्गुरू भाषितं=सद्गुरु द्वारा कहे हुए स्तोत्र को, श्रुत्वा=सुनकर, लोकानां सुख हेतवे=सासारिक जनो के सुख के लिए, ग्रह शाति=ग्रहो की शान्ति को, प्रवक्ष्यामि=कहता हू।

भावार्थ–त्रिभुवन के गुरू तीर्थेश प्रभु को नमस्कार करके सद्गुरु भगवन्त द्वारा कहे गये वचनो को सुनकर सासारिक जनो के सुख के लिए ग्रहो की शान्ति का उपाय कहता हू।

जन्म लग्ने च राशौ च, पीडयति यदा ग्रहा।
तदा सपूजयेद् धीमान्, खेचरै सहितान् जिनान्।।2।।

शब्दार्थ–यदा जन्म लग्ने=जब जन्म लग्न पर, राशौ च=और राशि ग्रह पर, ग्रहा पीडयंति=ग्रह परेशान करे, तदा धीमान्=तब बुद्धिमान् पुरुष, खेचरै=आकाश मे चलने वाले सूर्य, चन्द्रादि ग्रहो के, सहितान् जिनान्=साथ जिनेश्वरो का, सपूजयेद=सम्यग्तया आराधन करे।

भावार्थ–जब कभी भी जन्म लग्न या राशि पर ग्रहो की दृष्टि क्रूरता पूर्ण हो, तब बुद्धिमान पुरुष आकाश मे भ्रमण करने वाले ग्रहो के साथ जिनेश्वर देवो का समन्वय करके उन देवाधिदेव वीतराग जिनेन्द्र प्रभो की सम्यग् श्रद्धा भाव से आराधना करे।

पद्म-प्रभस्य मार्तण्डश्, चन्द्रश्चन्द्र प्रभस्य च।
वासु पूज्यस्य भू पुत्रो, बुधोऽप्यष्ट जिनेषु च।।13।।

शब्दार्थ–पद्म प्रभस्य मार्तण्ड,=पद्मप्रभ स्वामी का सूर्य ग्रह हे, चन्द्रः चन्द्र प्रभस्य च्=और चन्द्र ग्रह चन्द्रप्रभ स्वामी का है। वासु पूज्यस्य=वासु पूज्य स्वामी का, भू पुत्रो=मगल ग्रह है। बुधोऽप्यष्ट जिनेषु च्=और बुध ग्रह अष्ट जिनेश्वरो मे है।

भावार्थ–पद्मप्रभ स्वामी का सूर्य ग्रह और चन्द्रप्रभ स्वामी का चन्द्र। वासु पूज्य स्वामी का मगल ग्रह और बुध ग्रह अष्ट जिनेश्वरो का है।

विमलानन्त धर्मारा, शान्ति कुन्थुर्नमिस्तथा।
वर्धमानस्तथैतेषां, पाद पद्मे बुधौ न्यसेत्।।4।।

शब्दार्थ–विमलानन्त धर्मारा=श्री विमलनाथ, श्री अनन्तनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री अरनाथ, शान्तिकुन्थुर्नमिस्तथा=श्री शातिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री नमिनाथ, वर्धमानस्तथा=तथा वर्धमान स्वामी, एतेषां=इन जिनेन्द्र देवो के, पाद पद्मे=चरण कमलो मे बुधौ=वुध ग्रह की, न्यसेत्=स्थापना अर्थात् कल्पना करे।

भावार्थ–श्री विमलनाथ स्वामी से लेकर अरनाथ स्वामी ओर श्री नमिनाथ स्वामी एव वर्धमान स्वामी इन जिनेन्द्र देवो के चरण कमलो मे वुध ग्रह की कल्पना-धारणा करके इनकी आराधना करे जिससे ग्रहो का दुष्प्रभाव क्षीण हो जाता हे।

ऋषभाजित सुपार्श्वश्-चाभिनन्दन शीतलो।
सुमति सभव स्वामी, श्रेयासश्चैषु गीष्पति।।5।।

शब्दार्थ–ऋषभाजित सुपार्श्वा=श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ, श्री सुपार्श्वनाथ, चाभिनन्दन शीतलौ=श्री अभिनन्दन स्वामी और श्री शीतलनाथ, सुमति=श्री सुमतिनाथ, सभव स्वामी=सभवनाथ स्वामी श्रेयास च=और श्री श्रेयासनाथ स्वामी एषु=इनमे गीष्पति=गुरु ग्रह का ध्यान करे।

भावार्थ–श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री समुतिनाथ, श्री सुपार्श्व नाथ, श्री शीतलनाथ ओर श्री श्रेयास नाथ इन जिनेश्वरो मे गुरु ग्रह का ध्यान करे।

सुविधे कथित. शुक्र, सुव्रतस्य शनैश्चर.।
नेमिनाथे भवेद् राहु, केतु श्री मल्लिपार्श्वयो।।6।।

शब्दार्थ–सुविधे कथित शुक्र=श्री सुविधिनाथ का शुक्र ग्रह, सुव्रतस्य शनैश्चर=श्री मुनि सुव्रत स्वामी का शनि ग्रह, नेमि नाथे भवेद राहु=नेमिनाथ भगवान का राहु ग्रह, केतु=केतु ग्रह, श्री मल्लिपार्श्वयो=श्री मल्लिनाथ और श्री पार्श्वनाथ का कहा है।

भावार्थ–जिनेश्वर श्री सुविधि नाथ का शुक्र ग्रह, भगवान श्री मुनि सुव्रतस्वामी का शनि ग्रह, दयानिधीश्वर श्री नमिनाथ स्वामी का राहु ग्रह और केतु ग्रह श्री मल्लिनाथ प्रभु एव पुरुषदानी श्री पार्श्वनाथ स्वामी का हे।

जिनानामग्रत कृत्वा, ग्रहाणा शान्ति हेतवे।
नमस्कार शत भक्त्या, जपेदष्टोत्तर शतम्।।7।।

शब्दार्थ–जिनानामग्रत=जिनेश्वर देवो को सन्मुख, नमस्कार

कृत्वा=नमस्कार करके, शत भक्त्या=भक्ति से सौ बार, ग्रहाणा शांति हेतवे=ग्रहो की शाति के लिए, अष्टोत्तरै शत=एक सौ आठ बार, जपेद्=जप करे।

भावार्थ–जिनेश्वरो के सन्मुख भक्ति भाव से एक सौ बार नमस्कार करके ग्रहो की शाति के लिए एक सौ आठ बार स्तोत्र पाठ करे।

भद्रबाहु रुवाचैव, पचम श्रुतकेवली।
विद्या प्रवादत पूर्वाद्, ग्रह शान्ति रुदीरिता।।8।।

शब्दार्थ–एव पंचमः श्रुतकेवली=इस प्रकार पाचवे श्रुत केवली, भद्रबाहु=भद्रबाहु स्वामी ने, विद्या प्रवादत पूर्वाद्=विद्या प्रवाद पूर्व से, ग्रह शान्तिः उदीरिता=ग्रह शाति उद्धृत कर, उवाच=कही है।

भावार्थ–पाचवे श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी ने विद्या प्रवाद नामक पूर्व से ग्रह शान्ति उद्धृत करके कही है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ ग्रहाश्चन्द्र सूर्यांगारक बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतु सहिता खेटा जिनपति पुरतोऽवतिष्ठन्तु मम धन धान्य, जय विजय सुख सौभाग्य धृति कीर्ति कान्ति शाति तुष्टि पुष्टि बुद्धि लक्ष्मी धर्मार्थ कामदा'स्यु स्वाहा।

दुद्दन्ता इदिया पंच, ससाराय शरीरीण।
ते चेव णियमिया सम्म, णिव्वाणाय भवतिहि।।

पॉचो इन्द्रिया जब दुर्दान्त होकर विषयो मे दौडती है तो इस आत्मा के लिये ससार की हेतु बन जाती है-आश्रव की कारण भूत बन जाती है। किन्तु जब उन इन्द्रियो को सम्यक् प्रकार से सयमित कर ली जाती है तो सवर, निर्जरा या परम निर्वाण की निमित्त बन जाती है।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

अर्थात् अपनी इन्द्रियो को जो वश मे कर लेता है, उसकी प्रज्ञा आत्म प्रतिष्ठ हो जाती है।

महावीराष्टक स्तोत्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव, भावाश्चिद-चित
सम भान्ति ध्रोव्य व्ययजनि, लसन्तोन्त-रहिता।
जगत् साक्षी मार्ग प्रकटन परो भानुरिव यो
महावीर स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे।।1।।

शब्दार्थ–यदीये=जिनके, चैतन्ये=ज्ञान मे, ध्रौव्य व्यय जनि लसन्त= ध्रोव्य, व्यय, उत्पाद से युक्त, अन्त रहिता=अनन्त, चिद, चित=चेतन और अचेतन, भावा=पदार्थ, मुकुर इव=दर्पण के समान, सम भाति=साथ प्रतिविम्बित, जगत् साक्षी=त्रिभुवन को साक्षात् देखने वाले, भानु-इव=सूर्यवत्, य=जो, मार्ग प्रकटन पर=मोक्ष मार्ग दिखाने गे तत्पर ह वे, महावीर स्वामी=महावीर स्वामी, नयन पथगामी=दृष्टिगोचर मे=मेरे, भवतु=होवे।

भावार्थ–जिस तरह दर्पण मे रहे पदार्थ एक साथ एक ही समय मे प्रतिविम्बित होते है, उसी प्रकार सन्मति प्रकाशक वीर प्रभु के केवल ज्ञान रूपी दर्पण मे चेतन-अचेतन पदार्थ अपने-अपने उत्पाद-व्यय ओर ध्रोव्य स्वभाव से युगपत् प्रतिभासित होते है। जो सम्पूर्ण चराचर विश्व की भूत, वर्तमान, भविष्य के ज्ञाता एव द्रष्टा है, सूर्य के समान मोक्ष मार्ग को प्रकट करने वाले है, वे शासनाधिपति प्रभु महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

अताम्र यच्चक्षु कमलयुगल स्पन्द रहित,
जनान् कोपाऽपाय प्रकटयति वाऽभ्यन्तर-मपि।
स्फुट मूर्तिर्-यस्य प्रशमित-मयी वाऽति-विमला,
महावीर स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे।।2।।

शब्दार्थ–अताम्र=लालिमा रहित, स्पद रहित=स्पदन रहित, यच्चक्षु=जिनके नयन, कमल युगल=कमल युगल को, जनान्=मनुष्यो को, अभ्यन्तर अपि=आन्तरिक भी, कोपाऽपाय=क्रोध के अभाव को, प्रकटयति=प्रकट करती है, यस्य मूर्ति=जिनकी आकृति, स्फुट=स्पष्ट रूप से, प्रशमितमयी=अत्यन्त प्रशात है, अति विमला=अत्यन्त निर्मल है महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे=भगवान् महावीर स्वामी मेरे दृष्टीगोचर होवे।

भावार्थ–हे कोप विजयिन्! आपके उभयनेत्र कमल क्रोध चिह्न से रहित निश्चल है, वे आतरिक ओर बाह्य क्रोध से मनुष्यो को क्रोध जन्य

अहित और अनर्थ से बचने का ससूचन करते है और जिनकी मुखमुद्रा अत्यन्त प्रशान्त तथा जीवन अत्यन्त निर्मल है वे सन्मति प्रभु। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनगत बने।

नमन्ना केन्द्राली-मुकुट मणिभा जाल जटिल,
लसत् पादाम्भोज द्वयमिह यदीयं तनु भृताम्।
भव ज्वाला शान्त्यै प्रभवति जल वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।3।।

शब्दार्थ–**यदीय**=जिनके, **नमन्ना-केन्द्राली**=नमन करते हुए देवेन्द्र समूह के, **मुकुटमणि भा**=मुकुट के मणियो के काति पुञ्ज से, **जाल-जटिलं**=खच खचित, **लसत्-पादाम्भोज द्वय**=सुशोभित चरण युगल, **इह**=इस लोक मे, **तनु-भृता**=देहधारियो की, **भव ज्वाला शान्तयै**= भव-ज्वाला को शान्त करने मे, **प्रभवति**=समर्थ है, **स्मृत अपि**=स्मरण मात्र भी, **वा जल**=अथवा जल को, **स महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ–हे अध्यात्म योगि। आपके चरण सरोज नमस्कार करते देव-इन्द्रो के मुकुट जडित मणियो को क्राति से सुशोभित कर रहे है, इसलोक मे देहधारियो की जन्म-मरण रूप दावाग्नि को शात करने के लिए जिनका स्मरण भी जल के समान समर्थ है, वे अन्तर्यामी भगवान् महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

यदर्चा भावेन प्रमुदित मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगण समृद्ध सुखनिधि।
लभन्ते सद्भक्ता शिवसुख समाज किमुतदा,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।4।।

शब्दार्थ–**यदर्चा-भावेन**=जो पूजा के भाव से, **प्रमुदित मना**=हर्षित मन हुआ, **दर्दुर**=मेढक, **इह क्षणात्**=इसलोक मे क्षण भर मे, **स्वर्गी**=स्वर्ग का देव, **गुणगुण समृद्ध**=गुण समूह से सम्पन्न, **सुखनिधि**=सुख सम्पत्ति का, **आसीत्**=हुआ, **सद्भक्ता**=सच्चे भक्त, **शिवसुख-समाज**= कल्याण रूप अक्षय सुख समूह को, **लभंते**=पाते है, **तदा**=तब, **किं**=क्या?, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ–हे गुण रत्नाकर। आपके आगमन को सुनकर भाव-विभोर बना मेढक क्षण मात्र मे अणिमा-महिमादि अनेक गुण रूपी ऋद्धियो से

समृद्ध, सुख सम्पन्न स्वर्ग का देव हो गया तो आपकी अन्तर्हृदय से भक्ति करने वाले भक्त मोक्ष के निराबाध अक्षय सुख को प्राप्त करे तो इसमे कोई विस्मयोत्पादक विशेषता नही है, ऐसे उदात्तहृदय भगवान महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

कनत् स्वर्णाभासो-ऽप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्मा-प्येको नृपतिवर सिद्धार्थ तनय।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगतभव-रागोद्भुत गतिर्-
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।5।।

शब्दार्थ–**कनत् स्वर्ण-आभास अपि**=चमकते हुए स्वर्ण सी क्राति वाले, होकर भी, **अपगत-तनु**=शरीर से रहित, **विचित्रात्मा अपि**=अनोखे होकर भी, **एक**=अद्वितीय, **अजन्मा अपि**=जन्मरहित होने पर भी, **नृपति वर सिद्धार्थ तनय**=राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ नृप के नन्दन, **श्रीमान्**=श्री सम्पन्न, **विगत भव राग**=सासारिक राग से रहित, **अद्भुत गति**=विचित्र चरित्र वाले, **ज्ञान निवह**=ज्ञानपुज, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ–हे परमात्मन्! आप तीर्थकर पर्याय मे विशुद्ध स्वर्ण के समान देदीप्यमान देह वाले थे, फिर भी शारीरिक ममता मूर्च्छा से रहित थे, दर्शन-सुख वीर्यादि अनन्त शक्तियो से अद्वितीय है, राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ के पुत्र होकर भी आप अजन्मा, अन्तरग-बहिरग श्री सम्पदा के स्वामी होकर भी अनासक्त, परस्पर विरोधी स्वभाव वाले होने से, अद्भुत आचरण है, शरीर रहित होकर भी केवल ज्ञानपुज वाले हे दिव्य पुरुष! श्री महावीर स्वामी आप मेरे नयन के स्वामी होवे।

यदीया वाग्गगा विविध नय कल्लोल विमला,
बृहज् ज्ञानाम्भोभिर् जगति जनता या स्नपयति।
इदानी-मप्येषा बुधजन-मरालै परिचिता।
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।6।।

शब्दार्थ–**यदीया**=जिनकी, **या**=यह, **विविध नय कल्लोल विमला**= अनेक नय तरगो से निर्मल, **वाग् गगा**=वचन रूपी गगा, **बृहज्-ज्ञानाम्भोभि**=विपुल ज्ञान जल से, **जगति जनता**=ससार मे प्राणियो का, **स्नपयति**=अभिषेक कर सताप हरती हे, **इदानी अपि**=इस समय भी **बहुजन मरालै**=विद्वत् जन रूपी हसो से, **परिचिता**=पहिचाने जाते हं वे, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर

होवे।

भावार्थ–नैगमादि नय अथवा स्यादस्ति आदि स्याद्वाद सप्तभगी रूप तरगो से निर्मल वचन रूपी गंगा ज्ञान जल समूह से ससार के सतप्त प्राणियो को स्नान करा कर्ममल को दूर करती है। जिनागम मे निबद्ध उस वाणी का परिचय राजहस के रूप उत्तम पुरुष आज भी करते है। हे विद्वत् जगत् शिरोमणि प्रभु महावीर हमारे नयन गोचर होवे।

अनिर्वारोद्रेकस् त्रिभुवनजयी कामसुभट.
कुमारावस्थाया-मपि निज बला-द्येन विजित।
स्फुरन् नित्यानंद प्रशमपद राज्याय स जिनः
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।7।।

शब्दार्थ–येन कुमारावस्थाया अपि=जिसने कुमार अवस्था मे भी, स्फुरन् नित्यानद=लहराते नित्य आनन्द वाले, प्रशम=प्रशान्त, पद राज्याय=शिवपद के साम्राज्य के लिए, निज बलात्=अपने योग बल से, अनिर्वार-उद्रेकः=न हटने योग्य उद्रेक वाले, त्रिभुवन जयी=त्रिलोक विजयी, काम सुभटः=काम योद्धाओ को, विजितः=जीता, स. जिनः=वे जिनेश्वर, महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ–हे काम विजयिन्! जिसने तीन लोक के जीवो को अपने अधीन कर रखा है, ऐसे मोहकर्म के दुर्जेयीमद से इठलाते पचशर को नित्य आनन्द रूप प्रशम पद के साम्राज्य को पाने हेतु अपने प्रबल पराक्रम से कुमार अवस्था मे ही कन्दर्प सर्प के दर्प को जीत लिया ऐसे जिनेश्वर श्री वीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

महा-मोहातक प्रशमन पराऽऽकस्मिक भिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर् विदित महिमा मगलकर।
शरण्यः साधूना भवभय भृता-मुत्तम गुण.,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।8।।

शब्दार्थ–महामोहातक=भीषण मोह के आतक को, प्रशमन=सर्वथा शान्त करने, पराऽऽकस्मिक=तत्पर आकस्मिक, भिषक्=वैद्य, निरापेक्ष=निष्कारण, बन्धु=बन्धु, विदित महिमा=प्रख्यात महिमा वाले, मंगलकर=हित करने वाले, भव-भय-भृतां=जन्म मरण के भय से घबराये, साधूना शरण्य=सज्जनो को, शरण दाता, उत्तम गुण=सर्वश्रेष्ठ गुण वाले, महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ–जो मोहनीय कर्म की महा-व्याधि को शात करने के लिए अपूर्व निष्णात वेद्य है, ससार के चर-अचर सभी जीवो पर निष्कारण वात्सल्य दृष्टि रखने वाले हैं, जिनकी महिमा सर्वविदित हे, जो निष्काम भाव से हित और कल्याण करने वाले है, ससार के दु ख द्वन्द्वो, जन्म-मरण के दु खो से भयाकुल सज्जन-पुरुषो की रक्षा करने वाले हे सर्वोत्तम गुणो के स्वामी है, वे त्रिलोकीनाथ श्री महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

महावीराष्टक स्तोत्र, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
य पठेच्छृणु-याच्चापि, स याति परमा गतिम्।।9।।

शब्दार्थ–भागेन्दुना भक्त्या=भागचन्द्र द्वारा भक्ति से, कृत=रचे गये=महावीराष्टकं स्तोत्र=पद्यमय महावीर अष्टक स्तोत्र को, य पठेत्=जो पढेगा, च शृणुयात्=और सुनेगा, स परमा=वह श्रेष्ठ, गति=गति को, याति=जाता है।

भावार्थ–इस महावीर अष्टक स्तोत्र की रचना भक्ति से प्रेरित होकर भागचन्द्र ने की है। जो भक्ति रस मे निमग्न होकर पढता एव सुनता हे, वह भी श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है।

लेखक अपनी लेखनी मे चाहे सो लिख सकता हे।
वह चाहे तो असत्य को सत्य रूप मे रख सकता है।।
पर ए लेखक! अपनी काली करतूतो से तू कहा तक-
जनता को गुमराह कर प्रतिष्ठा बनाये रख सकता है?

गुरु ही शिष्यो के जीवन का किनारा होता हे।
किनारा ही किनारा करले तो कौन सहारा होता हे?
"गुरुरस्तु दीपवत मार्ग दर्शक" कहा विचारक ने।
गुरु ही तो अधकार मय जीवन का उजारा होता हे।।

ये सब जो खडे है तुम्हारे विरोध मे सच्चे हितेषी हे।
झूठला कर तुम्हे तुम्हारे ही कलापो के ये अन्वेषी हे।।
इनकी प्रतिक्रियाओ मे स्वय को फैक कर देखो जरा-
तारीफो के पुल बाधते है जो रात-दिन वे विद्वेषी है।।

: श्री पद्मावत्यष्टकम् :

श्रीमद् गीर्वाण चक्र स्फुट मुकुट तटी दिव्य माणिक्य माला।
ज्योति-र्ज्वाला कराल-स्फुरित मुकुरिका घृष्ट पादारविन्दे।
व्याघ्रोरोल्का-सहस्त्र ज्वलदनल-शिखा, लोल-पाशाकुशाढ्ये।
ॐ क्रीँ ह्रीँ मंत्र रूपे! क्षपित कलिमले, रक्ष मा देवी! पद्मे।।1।।

शब्दार्थ–श्रीमदगीर्वाण चक्रस्फुट=श्री युत देव समूह के स्पष्ट, मुकुटतटी=मुकुटाग्र भाग मे, दिव्य माणिक्य माला=माला के दिव्य मणिमाणको की, ज्योति-र्ज्वाला=ज्योति की ज्वालाओ से, कराला=भयानक रूप से, स्फुरित=फुरकते, मुकुरिका=मुकुट जडित काच के टुकडो से, घृष्ट पादारविन्दे=घिसते चरण कमलो वाली, व्याघ्रोरोल्का=व्याघ्र हृदय स्थल पर उल्काओ की, सहस्त्र ज्वलदनल=हजारो जलती अग्नि, शिखा लोल=शिखाओ के समान चचल, पाशाकुशाढये=पाश और अकुश वाली, क्षपित कलिमले=कलिमल को नष्ट करने वाली, ॐ क्रीँ ह्रीँ मत्र रूपे= इस मत्र वाली, पद्मे देवि=पद्मावति देवि! माम् रक्ष=मेरी रक्षा करो।

भावार्थ–ऋद्धिवत देव वर्ग के स्वच्छ मुकुटो के किनारो पर जडे दिव्य मणि माणक्य माला के तेज-आभा पुज-सी चमकती, मुकुट के किनारो से घिसे जाने वाले चरण कमलो वाली, व्याघ्र हृदय स्थल पर उल्काओ की हजारो अग्नि-शिखाओ से चमकते पाश और अकुश को धारण करने वाली, ॐ ऑ क्रीँ ह्रीँ मत्र रूप, कलिमल को नष्ट करने वाली, हे देवि पद्मावति! मेरी रक्षा करो।

भित्त्वा पातालमूल चलचल-चलिते! व्याल लीला कराले!
विद्युद्दण्ड प्रचण्ड प्रहरण सहिते, सद् भुजैस्तर्जयन्ती।
दैत्येन्द्र क्रूर-दष्ट्रा कटकट-घटित, स्पष्ट भीमाट्टहासे!
माया-जीमूतमाला कुहरित गगने! रक्ष मा देवि! पद्मे।।2।।

शब्दार्थ–पाताल मूल=पाताल के पेदे को, भित्वा=तोडकर, चल चल चलिते=चल चल शब्द से चलायमान, व्याल लीला कराले=सर्प लीलाओ के समान भयानक, विद्युत् दण्ड प्रचण्ड=विद्युत रूपी दण्ड के प्रचण्ड, प्रहरण सहिते=हथियारो से युत, सदभुजै =श्रेष्ठ भुजाओ से, दैत्येन्द्र=दैत्यराज को, तर्जयन्ती=तर्जना देती हुई, क्रूर दष्ट्रा=क्रूर दाढो मे, कट कट घटित=कट कट आवाज होने से, स्पष्ट भीमाट्टहासे=स्पष्ट भयकर अट्टहास है जिसका, मायाजीमूतमाला=मायावी बादलो के समूह से,

कुहरित गगने=छाया हुआ है आकाश, पद्मे देवि। माम् रक्ष=हे पद्मावति। देवि मेरी रक्षा करो।

भावार्थ–पाताल मूल को भेदकर ऊपर की ओर चपल गति से चलने वाली, सर्पो के सग क्रीडा करने से भयकर लगने वाली, विद्युत दण्ड सा प्रचण्ड शस्त्र हाथ मे रखने वाली, सुदृढ हाथो से दुष्ट दैत्येन्द्रो को तर्जना देकर हटाने वाली, विकराल दाढो के कट कट रूप आवाज से भयकर अट्टहास करने वाली, मायावी मेघाम्बर को चीरकर मार्ग बनाने वाली हे देवि पद्मावति। मेरी रक्षा करो।

कूजत्कोदण्ड काण्डो ड्डमर विधुरित क्रूर घोरोपसर्गं।
दिव्य वज्रातपत्र प्रगुण-मणिरणत् किङ्किणी क्वाण रम्यम्।
भास्वद् वैडूर्य दण्ड मदन-विजयिनो, विभ्रतो पार्श्वभर्त्तु।
सा देवी पद्महस्ता विघटयतु महाडामर मामकीनम्।।3।।

शब्दार्थ–कूजत्कोदण्ड=शब्दायमान धनुष के, काण्डो ड्डमर=काण्ड से उडाया, विधुरित=दूर किया गया है, क्रूर घोरोपसर्ग=भयानक उपसर्ग, दिव्य=ऐसे दिव्य, वज्रात पत्र=वज्ररूपी छत्र को, प्रगुण मणिर्=श्रेष्ठ मणियो से, अणत् किकिणी क्वाण रम्य=छोटी-छोटी घटियो के आवाज से रमणीय, भास्वद्=चमकते हुए, वैडूर्य दण्ड=वैडूर्यमणि वाले दण्ड को, विभ्रत=धारण किये, मदन विजयिन=कामदेव पर विजय पाने वाले, पार्श्वभर्त्तु=पार्श्वनाथ स्वामी का, पद्म हस्ता=हाथ मे कमल रखने वाली, सा देवी मामकीन=वह देवि मेरे, महाडामर विघटयतु=महाडामर तत्र को विघटित करे।

भावार्थ–जिसने शब्द रूपी धनुष टकार से भयकर उपसर्गो को दूर किया, काम विजयीन् पार्श्व प्रभु पर वैडूर्य मणि का हीरो से जडित तेजस्वी छत्र दण्ड धारण कराने वाली, उस छत्र की छोटी छोटी घटिओ की मधुर आवाज से मनोहर लगने वाली और हाथ मे कमल धारण करने वाली हे देवि। पद्मावति मेरे घोर दु खजन्य काले बादलो को छिन्न-भिन्न करो।

भृगी कालीकराली परिजनसहिते। चण्डि चामुण्डि। नित्ये।
क्षा क्षीँ क्षू क्षौँ क्ष क्षणार्द्ध क्षत रिपुनिवहे। ह्रौँ महामन्त्र वश्ये।
भ्राँ भ्रीँ भ्रूँ भ्रौँ भ्र भृगसग भ्रकुटि पुट तट त्रासितोद्दाम दैत्ये।
स्राँ स्रीँ स्रूँ स्रौँ स्र प्रचण्डे। स्तुति शतमुखरे। रक्ष मा देवि पद्मे।।4।।

शब्दार्थ–भृगी काली कराली=भयानक काली भवरी, परिजनसहिते=परिजनो के साथ, चण्डि=हे चण्डी। चामुण्डि=हे चामुण्डि नित्ये=हे नित्य

क्षां क्षीँ क्षूं क्षौँ क्षणार्द्ध=इन बीजाक्षरो से क्षणभर मे, क्षत रिपु निवहे=शत्रु समूह को नष्ट करने वाली, ह्रौँ महामन्त्र वश्ये=ह्रौँ मत्राधिराज के वशीभूत होने वाली, भ्रॉ भ्रीँ भ्रूँ भृंगसंगे=भवरो के साथ भृकुटि पुट तट=वाकी चुकी भृकुटि प्रयोग से, त्रासितोद्दाम=भयकर परेशान कर भगा दिया, दैत्ये=दैत्यों को, स्रॉ स्रीँ स्रूँ स्रौँ प्रचण्डे=इन बीजाक्षरो से प्रचण्ड, स्तुति शत मुखरे=सैकडो स्तुतियो से गूजित, पद्मे=हे पद्मावति, देवि=देवी, माम् रक्ष=मेरी रक्षा करो।

भावार्थ—भृगी काली कराली इत्यादि देवियो के परिवार वाली, चण्डी चामुण्डी और नित्या नाम धारण करने वाली, क्षा क्षीँ क्षू क्षौँ क्ष इन बीजाक्षर मत्रो से आधे क्षण मे ही शत्रुओ को नष्ट करने वाली, ह्रौँ महामत्र से सिद्ध होने वाली भ्रॉ भ्रीँ भ्रूँ भ्रौँ मत्र मे से दो भ्रमर और दो ओठ मे रखकर भयकर राक्षसो को परेशान करने वाली, स्रॉ स्रीँ स्रूँ स्रौँ और कही पर झवा झवी झवू झव इन बीजाक्षरो से भयकर आवेश होने पर भी सैकडो स्तुति से मुखरित, हे पद्मावति देवि! मेरी रक्षा करो।

चञ्चत् काञ्ची कलापे! स्तनतट विलुठत्तार-हारावलीके!
प्रोत्फुल्लत् पारिजात द्रुम कुसुम महामञ्जरी पूज्यपादे!
ह्रॉ ह्रीँ क्लीँ ब्लूँ समेतै भुवनवशकरी! क्षोभिणी द्राविणी त्व।
ऑ ईं ऊँ पद्महस्ते! कुरु कुरु घटने! रक्ष मा देवी! पद्मे।।5।।

शब्दार्थ—चञ्चत् काञ्चीकलाप=फुरक रहा है काची कलाप, स्तनतट विलुठत्=स्तनतट पर लटक रहा है, तार हारावलीके=चचल हार पक्ति, प्रोत्फुल्लत्पारिजात द्रुम=खिले हुए पारिजात पेड के, कुसुम मञ्जरी=फूलो की महामजरी, पूज्यपादे=पूज्य चरण कमलो मे, ह्रॉ ह्रीँ क्लीँ ब्लूँ समेतै=इन बीजाक्षरो वाली, भुवनवशकरी=त्रिभुवन को वश मे करने वाली, त्वं क्षोभिणी=आप दुर्दान्त दुष्टो को क्षुभित करने वाली, द्राविणी=द्रवित करने वाली, ऑ ईं, ऊँ पद्महस्ते=कमल हस्त मे रखे हुए, घटने कुरु कुरु=घटनाओ को करो करो, पद्मेदेवि!=हे पद्मावति! देवि, माम् रक्ष=मेरी रक्षा करो।

भावार्थ—कमर मे झण-झणाट शब्द करने वाला सुन्दर कदोरा धारण करने वाली, वक्ष स्थल पर उत्तम मणिओ के झूलते हार वाली, विकसित हुए पारिजात के पुष्पो और मजरियो से पूजित चरण कमल वाली, ह्रॉ ह्रीँ क्लीँ ब्लूँ इन शक्ति बीजो से त्रिभुवन को वश करने वाली, शत्रुओ को क्षुभित करने वाली, रूष्टो को द्रवित-प्रसन्न करने वाली ऑ ईं ऊँ इन बीजो से मैत्रीभाव स्थापित

करने व बढाने वाली, और हाथ मे पद्म धारण करने वाली हे पद्मे देवि! मेरी रक्षा करो।

लीला व्यालोल नीलोत्पल दल-नयने! प्रज्वलद् वाड्वाग्नि।
त्रुट्य-ज्ज्वाला स्फुलिग स्फुर दरुण-कणोदग्र वज्राग्र-हस्ते।
ह्रॉ ह्रीँ हूॅ ह्रौँ ह्र हरन्ती हर हर हर हुकार भीमैक नादे।
पद्मे! पद्मासनस्थे! अपनय दुरित देवि! देवेन्द्र वन्द्ये।।6।।

शब्दार्थ–लीला व्यालोल=क्रीडा से चचल हुए, नीलोत्पलदल नयने=नील कमल पत्र सदृश नेत्र वाली, प्रज्वलत्=जलती हुई, वाड्वाग्नि=वडवाग्नि की, त्रुट्य ज्ज्वाला स्फुलिग=टूटती ज्वालाओ की चिनगारियो से, स्फुरत अरूण कणोदग्र=चमकते भयानक तीक्ष्ण लाल कणो वाले, वज्राग्र हस्ते=वज्र को दाहिने हाथ मे धारण करने वाली, ह्रॉ ह्रीँ हूॅ ह्रौँ ह्र हरन्ती=इन अक्षरो वाली, हरती हुई, हर हर हर हुकार भीमेक नादे=हर हर हर के हुकार रूप भयकर नाद वाली, पद्मासनस्थे= कमलासन पर विराजमान, देवेन्द्र वन्द्य=देवताओ से वन्दनीय, पद्मे देवि! दुरित अपनय=हे पद्मावति देवि! मेरे पाप को दूर करो।

भावार्थ–क्रीडा से चचल, नीलकमल की पखुडी सम आखो वाली, प्रलयकार धधके वडवानल की ज्वालाओ के तीक्ष्ण उडते लाल कणो से भी भयकर तेजस्वी, वज्र को दाहिने हाथ मे धारण करने वाली, ह्रॉ ह्रीँ हूॅ ह्रौँ ह्र बीज मत्रो से दु खो को हरने वाली, हर हर हर हु ऐसी भयकर आवाज करने वाली, पद्मासन पर विराजमान, देवेन्द्रो से स्तुत हे देवि! पद्मावति मेरे दु खो को दूर करो।

कोप व झ स हस कुवलय कलितोद् दाम-लीला प्रबन्धे।
ज्रॉ ज्रीँ ज्रूॅ ज्र पक्ष बीजै शशिकर धवले! प्रक्षरत्क्षीर गौरे।
व्याल व्याबद्ध जूटे! प्रबल बल महाकाल कूट हरन्ती।
हा हा हुकार नादे! कृत कर मुकुल! रक्ष मा देवि! पद्मे।।17।।

शब्दार्थ–कोप व झ स ह स=इस मत्र से, कुवलय कलितोद्दाम= नीलकमल से घटित मालाओ की, लीला प्रबन्धे=क्रीडा विशेष मे बधी, ज्रॉ ज्रीँ ज्रूॅ ज्र पक्ष बीजै=इन पक्ष बीजो से, शशिकर धवले=चन्द्र किरणो सम श्वेत वर्ण वाली, प्रक्षरत्=झरते हुए, क्षीर गौरे!=दूध सदृश गोरवर्ण वाली, व्याल व्याबद्धजूटे=सर्प का मस्तक पर जूडा बाधे हुए प्रबलबल महाकालकूट हरन्ती=विशिष्ट शक्ति वाले महाकाल कूट को हरती हुई हा हा हुकार नादे=हा हा के हुकारनाद वाली कृतकर-मुकुल=किया

है हाथ का मुकुल, पद्मेदेवि! माम रक्ष=हे पद्मावति देवि। मेरी रक्षा करो।

भावार्थ–अष्टाक्षर वाले विद्यारूपी विकसित कमल के सुन्दर आभूषण वाली, उत्कृष्ट लीला करने वाली, ज्रॉ ज्रीँ ज्रूँ ज्र बीज मत्रो से पावन, चन्द्रकिरण सम उज्ज्वल और दुग्ध धारा की तरह गौरवर्ण वाली, भयकर सर्पो से बधे हुए अबोडे वाली, महा भयकर काल कूट को नष्ट करने वाली, हा हा हु ऐसी आवाज करने वाली, और हाथ में कमल रखने वाली हे देवि पद्मावति। मुझ हाथ करबद्ध खडे हुए भक्त का रक्षण करो।

प्रातर्बालार्क रश्मि-च्छुरित घनमहा सान्द्र सिंदूर धूली।
संध्या रागारुणागी त्रिदशवर वधू-वन्द्य पादारविन्दे।
चञ्च च्चण्डासिधारा प्रहत रिपुकुले। कुण्डलोद् घृष्ट-गल्ले।
श्रा श्रीँ श्रूँ श्रौँ स्मरन्ती मदगज गमने। रक्ष मा देवि। पद्मे।।8।।

शब्दार्थ–प्रातर्बालार्क=प्रात कालीन बालसूर्य की, रश्मि-च्छुरित= किरणो से मिले हुए, घन महासान्द्र सिदूर धूली=मेघ सदृश गहरी सिन्दूर धूलवाली, सध्या रागारुणागी=सध्या-कालिन राग-सी अरुण अंग वाली, त्रिदशवर वधूवन्द्य=देवताओ की स्त्रियो से वन्दनीय, पादारविन्दे=चरण कमलो वाली, चञ्चच्चण्डासिधारा=चचल, प्रचण्ड तलवार की धार से, प्रहत रिपुकुले=शत्रु कुल को नष्ट करने वाली, कुण्डलोद् घृष्टगल्ले=कुण्डल से घिसते गालवाली, श्रा श्रीं श्रूँ श्रौं स्मरन्ती=इनको स्मरण करती हुई, मदगजगमने=मदोन्मत्त हाथी की चालवाली, पद्मे देवि माम् रक्ष=हे पद्मावति देवि। मेरी रक्षा करो।

भावार्थ–प्रात कालीन बाल सूर्य की किरणो से घिरी प्रगाढ सिन्दूरी रज कणो वाली, सध्या वर्ण-सी लाल कान्ति वाली, देवांगनाओ से वन्दन कराने वाले चरण कमल वाली, प्रचण्ड तलवार की धार से शत्रुकुल को नष्ट करने वाली, कुण्डलो से रगड खाते गाल वाली, श्रा श्रीँ श्रूँ श्रौँ बीजाक्षरो को हरक्षण जपने वाली, मद मस्त हाथी की चाल से चलने वाली हे देवि। पद्मावति मेरा रक्षण करो।

दिव्यं स्तोत्र पवित्र पटुतर पठता, भक्ति पूर्व त्रिसध्यं।
लक्ष्मी सौभाग्यरूप दलित-कलिमल, मगल मंगलानाम्।
पूज्यं कल्याण माला जनयति सततं, पार्श्वनाथ प्रसादात्।
देवी पद्मावतीत प्रहसित-वदना, या स्तुता दानवेन्द्रै।।9।।

शब्दार्थ–त्रिसध्य भक्ति पूर्व=तीनो सन्धिकाल मे भक्ति सहित, दिव्य पवित्रं स्तोत्र=इस दिव्य पवित्र स्तोत्र को, पटुतर पठता=अत्यधिक

सावधानी से पढने वालो को, **लक्ष्मी सौभाग्य रूप**=लक्ष्मी, सौभाग्य ओर सोन्दर्य देने वाली, **दलित कलिमल**=कलिमल को नष्ट करने वाली, **मगलाना मगल**=मगलो का मगल, **पूज्यं स्तोत्र**=यह पूज्य स्तोत्र, **पार्श्वनाथ प्रसादात्**=पार्श्वनाथ प्रभु की कृपा से, **सतत कल्याण माला**=निरन्तर कल्याण माला को, **जनयति** =उत्पन्न करता हे। **इत. दानवेन्द्रे.**=इधर दानवी राजाओ से, **स्तुता**=स्तुति की गई, **या**=जो **प्रहसित वदना**=हसमुख आकृति वाली, **पद्मावती देवी**=हे पद्मावति देवि।

भावार्थ—सन्धिकाल मे भक्ति पूर्वक सुबह, मध्याह्न, सायकाल शुद्धता से पढने वाले को निरतर सौभाग्य और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है व सम्पूर्ण पाप कर्मो का नाश होता है। सर्व मगलो मे मगल इस स्तोत्र से भक्तो का प्रभु पार्श्वनाथ की कृपा से प्रसन्न वदना, राक्षसो से स्तुत देवी पद्मावति निरन्तर कल्याण पर कल्याण करती है।

पूज्य श्री हुक्म्यष्टकम्

गृह मोह ममत्व विनाश कर, शुभ सयम भाव रत विरतम्।
सुसमाधि युत गणि कीर्ति धर, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।1।।
प्रशमादि विकास गुणै कलित-मुपदेश-सुधा वलित मुदितम्।
महिते जिन-कार्ये-पथे निरत, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।2।।
भव-पातक-मान-रुजा-रहित, सुख दायक-भाव युत सततम्।
भव भीति हर शिव सत्य वर, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।3।।
तपसा सहित विदुषा मजित, शशिपूर्ण सुशोभित दिव्य मुखम्।
रवि तुल्य-विभासित दीप्ति-धर, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।4।।
मनसा, वचसा, वपुषा विमल, करुणा-धिषणा-गरिमादि युतम्।
सुनयै सुगुणै सुकृतै-रनघ, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।5।।
नगरे नगरे सुख-शातिकर, बहु-शिष्य-जनै विनयाभिनुतम्।
निज कर्म विदार कर विशद प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।6।।
शरणा गत धारक रक्ष पर, जगती-प्रथित सुयशो भरितम्।
जन सकट नाशक भक्ति रत, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।7।।
भवसागर-पक-निमग्न-नृणा, जिन भाषित बोध सुख प्रददौ।
तमह गुण सागर बुद्धि-निधि, प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।8।।
गुरु हुक्म्यष्टक स्तोत्रम्, मुनिज्ञानेन निर्मितम्
पठन्ति ये नरा भक्त्या, सिद्धि-सोध व्रजन्ति ते।।9।।

रत्नाकर पञ्चविंशतिः

उपजाति वृत्तम

श्रेय श्रिया मगल केलि सद्म!, नरेन्द्र देवेन्द्र! नताघ्रि पद्म।
सर्वज्ञ सर्वातिशय प्रधान!, चिरञ्जय ज्ञान कला निधान!।।1।।

शब्दार्थ--श्रेय=हे श्रेयस्कर!, **श्रियॉ**=लक्ष्मी के, **मगल**=मगलमय, **केलि सद्म**=क्रीडा के सदन, **नरेन्द्र देवेन्द्र**=नरेन्द्रो और देवेन्द्रो से, **नताघ्रि पद्म**=नमस्कृत चरण कमल वाले, **सर्वज्ञ**=सब कुछ जानने वाले, **सर्वातिशय प्रधान**=सर्व अतिशयो से प्रधान, **ज्ञान कला निधान**=ज्ञान रूपी कलाओ के भण्डार, **चिरंजय**=चिरकाल तक जयवत हो।

भावार्थ--हे श्रेय श्री धाम! आप कल्याणकारी लक्ष्मी के रमण के मगलमय स्थान है, आपके चरणो मे पृथ्वी पति और स्वर्गाधिपति आकर नमस्कार करते है। आप सर्व वस्तुओ की सर्वकालिक अवस्थाओ के विज्ञाता है। सवोत्तम सर्व अतिशयो के धारक है, ज्ञान-सूर्य की कलाओ के अक्षय भण्डार है। हे भगवन्! आपकी सदा काल जय हो।

जगत्त्रयाधार! कृपाऽवतार! दुर्वार ससार विकार वैद्य!
श्री वीतराग! त्वयि मुग्धभावा-द्विज्ञ प्रभो विज्ञ पयामि किचित्।।2।।

शब्दार्थ--जगत्-त्रयाधार=हे तीन लोक के आधार!, **कृपावतार**=हे दया के अवतार!, **दुर्वार ससार**=अत्यन्त कठिनाई से हटाये जाने वाले ससार रूपी, **विकार वैद्य**=विकारो के चिकित्सक, **श्री वीतराग**=श्री वीतराग, **विज्ञ प्रभो!**=हे सर्वज्ञ प्रभो!, **त्वयि**=आपके सम्मुख, **मुग्ध भावात्**= निश्छल भाव से, **किंचित् विज्ञ पयामि**=कुछ निवेदन करता हू।

भावार्थ--हे त्रिलोक रक्षक! आप उर्ध्व, अध, मध्य लोक के आधार है, अकारण अनुग्रह दृष्टि रखने वाले है, ससार के हेतु भूत दुष्कर विकार-व्याधि के आप सफल चिकित्सक, राग-द्वेष से रहित सब कुछ जानने वाले सर्वज्ञ है। प्रभो! आपके सामने निश्छल भाव से आत्म निवेदन कर रहा हू।

कि बाल लीला कलितो न बाल, पित्रो पुरो जल्पति निर्विकल्प
तथा यथार्थ कथयामि नाथ!, निजाशय सानुशयस्तवाग्रे।।3।।

शब्दार्थ--बाल-लीला कलित=बाल भाव की लीला से युक्त, **बाल**=बालक, **पित्रो पुर**=माता-पिता के सामने, **निर्विकल्प**=विकल्प रहित, **कि न जल्पति**=क्या नही कहता है, **सानुशय**=पश्चाताप पूर्वक,

यथार्थ निजाशय=अपने यथार्थ अभिप्राय को, **तव अग्रे**=आपके आगे, **कथयामि**=कहता हू।

भावार्थ–हे अन्तर्यामी! जिस प्रकार बालक माता-पिता के सामने अपनी बाल सुलभ चेष्टा रूप बातो को बिना किसी दुराव-लुकाव के, सरल भाव से यथा तथ्य रखता है, उसी प्रकार हे क्षमासिन्धु! आपके सामने पश्चातापपूर्वक स्व जीवन के दुष्कृत्यो को सरल भाव से सत्य/तथ्य रूप मे निसकोच रखता हू, सुनिये।

दत्त न दान परिशीलित च, न शालि शील न तपोऽभि तप्तम्।
शुभो न भावोऽप्य भवद् भवेऽस्मिन्, विभो मया भ्रात महो मुधैव।।4।।

शब्दार्थ–विभो=प्रभो!, **मया**=मैने, **न दान दत्त**=न दान दिया, **न शालि शील**=न उत्तम शील, **परिशीलित**=परिपालना की, **न तप अभितप्त**=न तप तपा, **न शुभ भाव अपि**=न शुभ भाव भी, **अभवत्**=हुआ, **अस्मिन् भवे**=इस भव मे, **अहो**=आश्चर्य, **मुधा एव**=व्यर्थ ही, **भ्रान्त**=घूमता रहा।

भावार्थ–हे आदर्श शिरोमणे! धन-सम्पत्ति होने पर भी, मैने कभी न दान दिया, न अहिसादि शीलव्रतो को धारण किया, दैहिक ममतावश न तपश्चर्या की और तो ओर शुभभाव भी नही रख पाया। प्रभो! मैने यह जन्म व्यर्थ ही गवा दिया।

दग्धोऽग्निन्ना क्रोध मयेन-दष्टो, दुष्टेन लोभाऽऽख्य महोरगेण।
ग्रस्तोऽभिमानाऽजगरेण मायाजालेन बद्धोऽस्मि कथ भजे त्वाम्।।5।।

शब्दार्थ–क्रोधमयेन=क्रोध रूपी इस, **अग्निना**=अग्नि से, **दुग्ध**=जला, **दुष्टेन**=दुष्ट, **लोभाख्य**=लोभ नामक, **महा-उरगेण**=महा भयानक सर्प से, **दष्ट**=डसा गया, **अभिमान अजगरेण**=अहकार रूपी अजगर से, **ग्रस्त**=निगला गया, **माया जालेन**=मायारूपी जाल से, **बद्ध**=बाधा गया, **अस्मि**=हू, **कथं त्वा भजे**=कैसे आपको भजूॅ।

भावार्थ–हे परमात्मन! क्रोध रूपी अग्नि ने मुझको जलाया, लोभ नामक विषधर ने डसा, मान रूपी अजगर ने निगला ओर माया के पाश मे बुरी तरह जकडा गया। कैसे मैं आपकी सेवा-भक्ति/उपासना करू?

कृत मयाऽमुत्र हित न चेह, लोकेऽपि लोकेश! सुख न मेऽभूत्।
अस्मादृशा केवलमेव जन्म, जिनेश! जज्ञे भव-पूरणाय ।।6।।

शब्दार्थ–लोकेश=हे लोक स्वामिन्, **मया**=मैंनें, **अमुत्र इह च**=परलोक ओर इस लोक मे, **हित न कृत**=हित नही किया **लोकेऽपि**=

ससार मे भी, मे **सुखं**=मुझे सुख, न **अभूत्**=नही हुआ, **जिनेश**=हे जिनेश्वर, **अस्मादृशां**=हमारे जैसो का, **जन्म केवल**=जन्म मात्र, भव **पूरणाय एव**=भव पूर्ति के लिए हुआ, **जज्ञे**=समझे।

भावार्थ–हे पूर्ण परमेश्वर! मैने अपना हित न पहले जन्म मे किया और न इस जन्म मे साधा, जिससे इस ससार मे सुखानुभव कर सकू, हे जिनेश्वर देव! इस देव दुर्लभ नर जन्म का मिलना केवल भव पूर्ति हेतु हुआ ऐसा समझे।

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञ वृत्त! त्वदास्य पीयूष मयूख लाभात्।
द्रुत महानन्द रस कठोर-मस्माद्दशा देव तदश्मतोऽपि।।7।।

शब्दार्थ–**मनोज्ञ वृत्त**=हे सुन्दर चारित्रधर!, **यद्मनः**=जो मन, **त्वत् आस्य**=आपके मुख चन्द्र की, **पीयूष मयूख लाभात्**=अमृत मय किरणो के लाभ से, **महानन्द रस**=महानन्द रस का पान करके, **अपि**=भी, **न द्रुतं**=पिघला नही, **मन्ये**=हे देव! मानता हू, **अस्पादृशां**=हमारे जैसो का, **अश्मत**=पत्थर सा, **कठोर**=कठोर, **तत्**=वह हृदय,

भावार्थ–हे अमृत पायक! यह मेरा मन महानन्ददायी रस से आप्लावित करने वाली दिव्य देशना रूपी किरणो से लाभान्वित नही हुआ तो, हे देव! मानता हू कि मुझ जैसे का हृदय पत्थर से भी अत्यधिक कठोर हे।

त्वत्त सुदुष्प्राप्यमिद मयाऽऽप्त, रत्नत्रय भूरि-भव-भ्रमेण।
प्रमाद निद्रा-वशतो गतं तत् , कस्याऽग्रतो नायक! पूत्करोमि।।8।।

शब्दार्थ–**नायक**=हे स्वामिन्, **मया**=मैने, **भूरि**=बहुत, **भव भ्रमेण**=भव भ्रमण करते, **सुदुष्प्राप्यं**=अति कठिनाई से प्राप्त होने वाले, **इद**=यह, **रत्नत्रयं**=रत्नत्रय, **त्वत्त**=आपसे, **आप्त**=प्राप्त किया, **तत्**=वह, **प्रमाद निद्रा वशत**=प्रमाद और निद्राधीन होने से, **गत**=चला गया, **कस्य अग्रत**=किसके आगे, **पूत्करोमि**=पुकार करूँ।

भावार्थ–हे दया सिन्धो! चार गति, चौरासी लाख जीव योनि रूप अपार ससार सागर मे परिभ्रमण करते हुए आपके प्रसाद से अत्यन्त दुर्लभ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रत्नत्रय की प्राप्ति हुई। परन्तु उन दुर्लभ अमूल्य रत्नो को प्रमाद और निद्रा के अधीन होकर खो दिया। भगवन्! अव मै किसके सामने यह पुकार करूँ?

वैराग्य रङ्ग पर वञ्चनाय, धर्मोपदेशो जन रञ्जनाय।
वादाय विद्याऽध्ययन च मेऽभूत्, कियद् ब्रुवे हास्यकर स्वमीश!।।9।।

शब्दार्थ–**ईश**=हे जगदीश्वर, मे **वैराग्य रग**=मेरा वैराग्य का रग,

पर वंचनाय=दूसरो को ठगने के लिए, धर्मोपदेश=धर्म का उपदेश, जन रजनाय=लोगो को रीझाने के लिए, च विद्याध्ययन वादाय=और विद्या-अध्ययन वाद-विवाद के लिए, अभूत=हुआ, स्व=अपनी, हास्य कर=हसी करने वाले, कियत् बुव्रे=कितने कार्यो को कहूँ।

भावार्थ–हे जगतपते! मैने आत्मोद्धारक वैराग्य का अवलम्बन दूसरो को ठगने के लिए, धर्म का उपदेश लोगो को खुश/वशीभूत करने के लिए ओर विद्या अध्ययन प्रतिवादी को हराने के लिए किया। हे महामहिम! मै अपना हास्यास्पद क्रिया-कलाप किन-किन शब्दो मे कहू?

परापवादेन मुख सदोष, नेत्र परस्त्री जन वीक्षणेन।
चेत परापाय विचिन्तनेन, कृत भविष्यामि कथ विभोऽह।।10।।

शब्दार्थ–मुख परापवादेन=मुख दूसरो की निन्दा करने से, नेत्र परस्त्री जन वीक्षणेन=आखे पराई स्त्रियो को देखने से, चेत· परापाय=चित्त दूसरो का बुरा, विचिन्तनेन=विचारने से, सदोषं=दोषी हुआ, अह=मै, विभो=हे प्रभो!, कथ कृत भविष्यामि=कैसे कृत कृत्य होऊँगा?

भावार्थ–हे वीतराग प्रभो! मैने दूसरो की निष्कारण बदनामी करके मुख को गदा बनाया, पर स्त्रियो को माता ,भगिनी, पुत्री तुल्य न देख विकारी भावना से देख अपने नेत्रो को विकारमय बनाया और दूसरो का अनर्थ का चिन्तन करने से मेरा चित्त भी मलिन बना हुआ है। अब मे कैसे कृतार्थ होऊँगा?

विडम्बित यत्स्मर-घस्मरार्ति-दशा वशात्स्व विषयान्धलेन।
प्रकाशित तद् भवतो ह्रियैव, सर्वज्ञ! सर्व स्वयमेव वेत्सि।।11।।

शब्दार्थ–विषयान्धलेन=विषयासक्त होकर, स्मरघ स्मर=कामदेव के स्मरण से, अर्ति=पीडित, दशावशात्=दशा के अधीन बन, यत् स्व= जो अपनी, विडिम्बित=विडम्बना की, तत ह्रियैव=उसे लज्जित होकर ही, भवत=आपके समक्ष, प्रकाशित=प्रकट किया, सर्वज्ञ सर्वं=हे सर्वज्ञ प्रभो! आप सब, स्वयमेव वेत्सि=स्वय ही जानते हो।

भावार्थ–हे काम-विजयिन्! विषयोन्मत्त बना उनके स्मरण चिन्तन से जो क्लेश सताप पाया, अपनी दयनीय-दुर्दशा की, उसे आपके सामने लज्जानुभव करते हुए, रखा। हे सर्वज्ञ! आप सब कुछ अपने आप ही जानते हो।

ध्वस्तोऽन्य मन्त्रै परमेष्ठि मन्त्र, कुशास्त्र वाक्यै-र्निहताग-मोक्ति ।
कर्तु वृथा कर्म कुदेव सङ्गा-दवाञ्छि हि नाथ! मति भ्रमो मे।।12।।

शब्दार्थ–**अन्य मन्त्रै**=दूसरे मन्त्रों से, **परमेष्ठि मन्त्र**=महामत्र नवकार, **ध्वस्त**=विनष्ट किया, **कुशास्त्र वाक्यै**=कुशास्त्र वाक्यो से, **आगमोक्तिः**=जिनागम की उक्तिया, **निहता**=विनष्ट की, **कुदेव सगात्**=कुदेव की सगति से, **वृथाकर्म**=अनावश्यक कार्य, **कर्तुं**=करने के लिए, **अवांछि**=चेष्टाएं की, **नाथ**=हे नाथ, **मे**=मेरा, **ही**=निश्चय ही, **मति भ्रमः**=मति भ्रम हुआ।

भावार्थ–हे देवाधिदेव जिनेश्वर! अनादि सिद्ध नमस्कार महामत्र को पाकर भी मैने इसका अवमूल्यन, अनादर किया एव अन्य सम्मोहन, उच्चाटन आदि मत्रो का प्रभाव दिखा, नमस्कार मत्र के प्रति अनास्था उत्पन्न करने का प्रयास किया। अन्य धर्मशास्त्रो की वाक्यावली सूक्ति, श्लोक, गाथा आदि के द्वारा जिनागम के कथन को असत् ठहरा, उनके महत्त्व को घटाता रहा, कुदेव की सगति के कारण जो कार्य नही करने चाहिए उनको सहर्ष करता रहा। यह मेरा मति भ्रम नही था तो और क्या था?

विमुच्य दृग् लक्ष्य गत भवन्त, ध्याता मया मूढ धिया हृदन्त ।
कटाक्ष वक्षोज-गभीर नाभी, कटी-तटीया सुदृशा विलासा ।।13।।

शब्दार्थ–**दृग्लक्ष्य गत**=दृष्टिगोचर हुए, **भवन्त विमुच्य**=आपको छोडकर, **मूढ धिया मया**=मूर्ख बुद्धि मैंने, **हृदयन्तः**=हृदय मे, **सुदृशा**=सुन्दर मृगनयनी स्त्रियों के, **कटाक्ष**=नेत्र कटाक्षो, **वक्षोज**=स्तनो, **गभीर नाभी**=गहरी नाभि, **कटी-कटीया**=पतली कमर, **विलासा**=चित्ताकर्षक हाव-भाव पूर्ण विलासो को, **ध्याता**=चाहा।

भावार्थ–दिव्य प्रभो! मैने आप जैसे सुरूपवान् दिव्य दीप्तिमत सुदेव को देखकर भी, दिखने मे सुन्दर मनमोहक ललनाओ के तिरछे कटाक्षो, कुम्भ सदृश उरोज व सुडोल कमर को देख तथा मधुर सलाप इत्यादि का क्षण चिन्तन कर कामदेव की ही आराधना की। हे काम विजयिन्! मुझ वासना कीट को धिक्कार।

लोलेक्षणा वक्त्र निरीक्षणेन, यो मानसे राग लवो विलग्नः।
न शुद्ध सिद्धात पयोधि मध्ये, धौतोप्य-गात् तारक कारण कि।।14।।

शब्दार्थ–**मानसे**=मानस पर, **लोलेक्षणा**=चंचल दृष्टि वाली स्त्रियो के, **वक्त्र**=मुख, **निरीक्षणेन**=देखने से, **यः राग लवः**=जो राग भाव, **विलग्नः**=विशेष रूप से सयुक्त हो गया, **शुद्ध सिद्धान्त**=शुद्ध सिद्धान्त रूपी, **पयोधि मध्ये**=सागर मे, **धौतः अपि**=धोने पर भी, **न अगात्**=नही गया, **तारक! कारण कि**=हे तिरण तारणहार! क्या कारण हे?

भावार्थ–हे निर्विकारी प्रभो! चचल मनोहर मृगनयनियो के मुख दर्शन से मानस पटल पर जो स्नेह आकर्षण उत्पन्न हो गया है, उसे शुद्ध सिद्धान्त सागर मे धोने का प्रयत्न किया, मगर वह धुला नही। हे भवजल तारक प्रभो! इसका क्या कारण है?

अग न चङ्ग न गणो गुणाना, न निर्मल कोऽपि कला विलास ।
स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च कापि, तथाप्यहकार कदर्थितोऽह ।।15।।

शब्दार्थ–अग न चंग=शरीर स्वस्थ नही है, **गुणाना**=गुणो का, **गणो न**=समूह नही है, **कः अपि निर्मल**=कोई भी निर्मल, **कला विलास न**=न मनोरजक कला है, **का अपि स्फुरत् प्रभा**=कोई दमकने वाली काति भी, **च**=और, **न प्रभुता**=न ही शासन है, स्वामित्व है, **तथा**=फिर **अपि**=भी, **अहकार अह कदर्थित**=मैं अहकार मे फूल रहा हू।

भावार्थ–हे परमात्मन्! मै शरीर से न सुन्दर, स्वस्थ एव बलिष्ठ हू, न कोई गुणो का वास है, न मन बहलाने वाला विज्ञान और न ही निरखने वाली प्रतिभा तथा न ही कोई स्वामित्व, फिर भी मै अहकार से गर्वित हो रहा हू।

आयु-र्गलत्याशु न पापबुद्धि-र्गत वयो नो विषयाभिलाष ।
यत्नश्च भैषज्य विधौ न धर्मे, स्वामिन् महामोह-विडम्बना मे ।।16।।

शब्दार्थ–आयु=आयु, **आशु गलति**=शीघ्रता से गल रही हे, **न पाप बुद्धि**=पाप मति नही, **वय गत**=उम्र बीत गई, **नो विषयाभिलाष**= विषयेच्छा नही, **भैषज्य विधौ**=दवा करने मे, **यत्न**=यत्न किया, **न धर्मे**= धर्माचरण मे नही, **स्वामिन्**=हे मालिक, **महामोह**=भयकर मोह की, **विडम्बना**=विडम्बना है, **मे**=मेरी।

भावार्थ–हे मोहविजेत! आयु प्रतिक्षण घटती जा रही है पर पाप-वासना नही, उम्र ढलती जा रही है मगर विषयेच्छा ज्यो की त्यो तरुणाई लिये हुए है। शक्तिमान बनने की दवा लेता हू परन्तु धर्म का आचरण जीवन मे स्वस्थ सतुलित बनाने का उपक्रम नही। हे स्वामिन्! यही प्रबल मोह दशा की स्थिति हे।

नात्मा न पुण्य न भवो न पाप, मया विटाना कटुगीर पीय।
अधारि-कर्णे त्वयि केवलार्के, परिस्फुटे सत्यपि देव धिग्माम् ।।17

शब्दार्थ–त्वयि केवलार्के=तुम्हारे केवल ज्ञान रूपी सूर्य मे, **परिस्फुटे सति अपि**=प्रकाशमान होने पर भी, **मया**=मेने, **न आत्मा**=न आत्मा, **न पुण्य**=न पुण्य, **न भवः**=न ससार, **न पाप**=न पाप, **इय विटाना**=ऐसी

नस्तिको की, कटुगी=मिथ्या वाणी, **अपि कर्णे**=भी कानो मे, **अधारि**=धारण की, **माम् धिक्**=मुझे धिक्कार है

भावार्थ—हे सद्धर्म दिवाकर! जीव-अजीव, पुण्य-पाप, लोक-परलोक सभी अनादि शाश्वत स्वयसिद्ध है। ऐसी आपकी स्पष्ट दिव्य देशना होने पर भी इनके अस्तित्व के विरुद्ध मायावी धूर्त पुरुषो की असत् वाणी को सुना ही नही, सत्य रूप स्वीकारा। यह सब आप जैसे परम प्रतापी दिनकर की विद्यमानता मे घटित हुआ। मुझे धिक्कार है।

न देव पूजा न च पात्र पूजा, न श्राद्ध धर्मश्च न साधुधर्म।
लब्ध्वापि मानुष्य-मिदं समस्त, कृत मयाऽरण्य विलाप तुल्यम्।।18।।

शब्दार्थ—**न देव पूजा**=न देव की उपासना की, **न पात्र पूजा**=न सुपात्र की सेवा भक्ति की, **न श्राद्ध धर्म**=न श्रावक धर्म का पालन किया, **न साधु धर्मः**=न साधुत्व धर्म की आराधना की, **इद मानुष्य**=यह नर जन्म, **लब्ध्वा अपि**=पाकर भी, **मया समस्तं**=मेरे द्वारा सब कार्य, **अरण्य विलाप तुल्यं कृतं**=अरण्य रोदन सदृश किये गए है।

भावार्थ—हे देवेन्द्र वद्य! मनुष्य जन्म को पाकर भी न कभी मैने वीतराग देवो की उपासना की, न सुपात्र-सर्वस्व त्यागी महापुरुषो एव साधर्मिक सज्जनो की आवभगत की, न श्रावक धर्म की पालना की और न ही साधु धर्म की आराधना। हे नाथ! मैने वन मे क्रन्दन करने वाले पुरुष की भाति निरर्थक क्रिया-कलापो मे जीवन के अमूल्य क्षण और जीवनी शक्ति को गवॉ दिया।

चक्रे मया-ऽसत्स्वपि कामधेनु, कल्पद्रु चिन्तामणिषु स्पृहार्त्ति।
न जैनधर्मे स्फुट-शर्मदेऽपि, जिनेश मे पश्य विमूढ भावम्।।19।।

शब्दार्थ—**मया**=मैने, **कामधेनु कल्पद्रु चिन्तामणिषु**=कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि के, **असत्सु अपि**=नही होने पर भी, **स्पृहार्तिः**=इच्छा की, **स्फुट शर्मदेऽपि**=प्रकट सुखकर होने पर भी, **जैन धर्मे**=जिन धर्म की, **न चक्रे**=चाह न की, **जिनेश**!=हे जिनेश्वर, **मे विमूढ भावं पश्य**=मेरे मूर्खत्व को देखा?

भावार्थ—वर्तमान मे अविद्यमान और नाशवान् कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि जो रत्न है, उनको पाने की इच्छा से दु खो को सहन किया लेकिन प्रत्यक्ष तदनुरूप अवस्था वाला जैन धर्म था, उसके बारे मे जानने तक की इच्छा न की। हे जिनेन्द्र! आप मेरी मूर्खता को तो देखे?

सद्भोग लीला न च रोगकीला, धनागमो नो निधनाऽगमश्च।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते, व्यचिन्ति नित्य मय काऽधमेन।।20।।

शब्दार्थ–मयका=मुझ, अधमेन=पापात्मा ने, नित्य चित्ते=सदा चित्त मे, सद् भोग लीला=काम-क्रीडा का विचार किया, न च रोग कीला=ओर रोग का घर है यह नही सोचा, धनागम=धन उपार्जन का सोचा, न च निधनागम=और मृत्यु के आने का नही, दारा=स्त्रियो के सहवास, ससर्ग का चिन्तन किया, न नरकस्य कारा=नरक की कारागृह हे ऐसा, न व्यचिन्ति=विचार नही किया।

भावार्थ–हे प्रभो! मैने काम-भोग का ही चिन्तन किया मगर ये भोग रोग के सदन है, इसका विचार नही किया, धन की आय का स्रोत नित्य नये दूढता रहा परन्तु मृत्यु की सनिकटता को भूल गया, अप्सराओ सी नव योवनाओ के चिताकर्षक चेष्टाओ का विचार किया किन्तु शक्ति सक्षय सक्लेश-सताप तथा दु खमय अवस्था के शिकार होने का किचित् भी विचार नही किया।

स्थित न साधो-र्हृदि साधु वृत्तात्, परोपकारान्न यशोऽर्जित च।
कृत न तीर्थोद्ध-रणादि कृत्य, मया मुधा हारित-मेव जन्म।।21।।

शब्दार्थ–साधो हृदि=साधुओ के हृदय मे, साधु वृत्तात्=श्रेष्ठ आचरण करके, न स्थित=स्थान नही बनाया, परोपकारात्=परोपकार करके, यश. न अर्जित=यश नही कमाया, च=और, तीर्थः उद्धरणादि=तीर्थ के विकास जन्य, न कृत्य कृत=कार्य नही किया, मया जन्म=मैने नर जन्म मुधा एव हारित=व्यर्थ ही हारा।

भावार्थ–हे तीर्थपते! मैने सदाचरण से सज्जनो के हृदय को नही जीता, अर्थात् उनका प्रिय पात्र नही बना, असहाय अनाथ को सहारा देकर, भलाई करके यश भी सचित नही किया, चतुर्विध तीर्थ सघ की सेवा रूप श्रेष्ठ प्रवृत्ति करके उत्थान नही किया। हा! हा! मैने यह जन्म यो ही खो दिया।

वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु, न दुर्जनाना वचनेषु शान्ति।
नाऽध्यात्म लेशो मम कोऽपि देव, तार्य कथङ्कार-मय भवाब्धि।।22।।

शब्दार्थ–गुरु-उदितेषु=गुरुजनो के कहने पर, न वैराग्य रग=विरक्ति नही जागी, दुर्जनाना वचनेषु=दुर्जनो के वचनो से भी, न शाति=न शाति मिली, मम कोऽपि=मेरे भीतर कही भी, न अध्यात्म लेश=लेशमात्र अध्यात्म नही है, देव=हे देव!, अय भवाब्धि=यह भव सागर, कथकार

तार्य.=किस तरह से पार होऊँगा?

भावार्थ—हे अध्यात्म योगिन्! सद्गुरु के समझाने पर भी वैराग्य भाव जागृत नही हुआ ससार की आसक्ति नही घटी, फिर दुर्जनो के अप्रिय वचनो से शाति कैसे हो सकती है? आत्म सामायिक रूप समता मुझ मे लेशमात्र भी नही। तब यह भव सागर मै कैसे तैर सकूगा?

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य-मागामि जन्मन्यपि नो करिष्ये।
यदीदृशोऽह मम तेन नष्टा, भूतोद् भवद् भावि भव त्रयीश! ।।23।।

शब्दार्थ—मया पूर्वे भवे=मैने पहले जन्म मे, **पुण्य न अकारि**=पुण्य नही किया, **आगामि जन्मनि अपि**=अगले जन्म मे भी, **नो करिष्ये**=नही करूगा, **यदि**=अगर, **ईदृश अहं**=ऐसा मै हू, **ईश**=हे ईश्वर, **तेन मम**= उससे मेरा, **भूतोद् भवद् भावि**=भूत वर्तमान और भविष्य, **भव त्रय**=जन्म तीनो, **नष्टा**=नष्ट हो गए।

भावार्थ—हे परमेश्वर! मैने पूर्व जन्म मे पुण्य का सचय नही किया और वर्तमान मे जो प्रवृत्ति है उसके अनुसार अगले जन्म के लिए भी पुण्योपार्जन नही कर पा रहा हू। यह मनुष्य भव तो नानाविध सकल्प-विकल्पो मे बीत रहा है। इस प्रकार हे प्रभो मेरे तीनो ही भव नष्ट हो गए।

कि वा मुधाऽह बहुधा सुधाभुक्, पूज्य त्वदग्रे चरित स्वकीय।
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप, निरुप-कस्त्व किय-देत-दत्र।।24।।

शब्दार्थ—सुधा भुक् पूज्य=हे देवो से पूज्य!, **कि वा अह**=अथवा क्या मै, **बहुधा मुधा त्वदग्रे**=नानाविध व्यर्थ ही आपके आगे, **स्वकीय चरित जल्पामि**=अपना चरित्र कहू, **यस्मात् त्वं**=क्योकि आप तो, **त्रिजगत् स्वरूप**=तीनो लोक के स्वरूप **निरूपक**=कहने वाले हो, **अत्र** ... **कियत्**=इस विषय मे यह कथन कितना है?

भावार्थ—हे देवेन्द्र! मै अपना दूषित चरित्र आपके आगे कितना कहू? आप तो सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप की सभी अवस्था को जानने वाले है, अत मेरे सम्पूर्ण चरित्र को जानते ही है। इस से इस विषय मे मेरा ज्यादा कहना व्यर्थ है। अब आप ही मेरे उद्धार का उपाय बतलाईये।

शार्दूल दीनोद्धार धुरन्धर-स्त्वद-परो, नास्ते-मदन्य कृपा।
पात्र-नाऽत्र जने जिनेश्वर! तथाऽप्येता न याचे श्रिय।
कि त्वर्हन्निद-मेव केवल-महो, सद्बोधि रत्न शिव।
श्री रत्नाकर! मगलैक-निलय! श्रेयस्कर प्रार्थये।।25।।

शब्दार्थ–**जिनेश्वर**!=हे जिनेश्वर, **अत्र**=यहा, **जने**=ससार मे, **त्वद् पर**=आपके अतिरिक्त, **दीनोद्धार धुरन्धर**=दीनो का उद्धार करने मे समर्थ, **न आस्ते**=नही है, **मदन्य**=मेरे अलावा, **कृपा पात्रं न**=कृपा पात्र नही हे, **तथापि**=फिर भी, **एताम् श्रिय**=इस सासारिक लक्ष्मी को, **न याचे**=नही मागता हू, **अर्हन्**=हे अरिहत देव, **श्री रत्नाकर**=हे श्री रत्नाकर, **मगल एक निलय**=मगल के एकमात्र आगार!, **अहो**=आश्चर्य, **केवल इद एव**=केवल यही, **श्रेयस्कर शिव**=कल्याण कारक शिव स्वरूप, **सदाबोधि रत्न**=सद्बोधि रूप रत्न को, **प्रार्थये**=मागता हू।

भावार्थ–हे जिनेन्द्र देव! दीन जनो का उद्धार करने मे एकमात्र आप ही समर्थ है। आपके अतिरिक्त अन्य कोई तारने वाला नही और न ही मुझ जेसा कोई अन्य दया का पात्र है। हे स्वामिन्! मै आपसे लौकिक सम्पत्ति नही चाहता हू, लेकिन जो कल्याणकारी शिव स्वरूप को देने मे समर्थ, मगल के मूल केन्द्र है, मै आपसे सम्यक्त्व रूप बोधि रूप रत्न की प्रार्थना करता हू, वह प्रदान करे।

प्रसाधन सामग्री के बिना शृगार नही होता।
धर्म को अपनाए बिना जीवनोद्धार नही होता।।
उन्नत जीवन की चाह रखने वाले दोस्तो !
स्वार्थ को त्यागे बिना परोपकार नही होता।।

चले अन्दर कतरनी तो क्यो करेगी हाथ की माला।
मरी जब तक न इच्छाए मिले न मुक्ति का प्याला।।
गर है मोक्ष की इच्छा तो मन को करो वश मे-
तुम्हारी वासनाओ ने तुम्हे बदनाम कर डाला।।

होठो पर मुस्कान है मगर दिल मे ज्वाला है।
कहने को भला है मगर करणी का काला है।।
क्या कहे इन जगवासी मानवो को अरे सज्जनो!
दिखने को प्रसन्न है मगर पीते विष का प्याला है।।

अमित गति द्वात्रिंशिका

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।1।।

शब्दार्थ–देव=हे देव! ममात्मा=मेरी आत्मा, सदा=हमेशा, सत्त्वेषु मैत्री=समस्त प्राणियो पर मैत्री भाव को, गुणिषु प्रमोद=गुणीजनो पर प्रमोद भाव को, क्लिष्टेषु जीवेषु=दु खी जीवो पर, कृपा परत्वम्=दया भाव को, विपरीतवृत्तौ=विपरीत भाव व आचार वालो पर, माध्यस्थ भाव=तटस्थ भाव को, विदधातु=धारण करे।

भावार्थ–हे परमात्म देव! ससार के समस्त त्रस-स्थावर प्राणियो पर सदैव मैत्री भाव रहे, गुणी-सज्जनो को देखकर मन प्रमुदित बने, दु खियो के प्रति हृदय से करुणा स्रोत बहे और विपरीत वर्ताव रखने वालो के प्रति तटस्थ/मध्यस्थ भाव रख सकू। ऐसी शक्ति मुझे दीजिए।

शरीरत कर्तु-मनन्त शक्ति, विभिन्न-मात्मान-मपास्त दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खङ्ग-यष्टि, तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति.।।2।।

शब्दार्थ–जिनेन्द्र!=हे जिनेन्द्र प्रभो, कोषात् खङ्ग यष्टि इव=म्यान से तलवार की तरह, अनन्त शक्तिं=अनन्त शक्तिवान्, अपास्त दोष=दोषो से रहित, आत्मान=आत्मा को, शरीरत=शरीर से, विभिन्न कर्तु=अलग करने के लिए, तव प्रसादेन=आपकी कृपा से, मम शक्ति=मेरी शक्ति, अस्तु=हो।

भावार्थ–हे जिनराज! आपकी अनुग्रह दृष्टि से मुझमे ऐसी शक्ति प्रकट हो कि मै अनन्त शक्ति सम्पन्न स्वात्मा को और सर्व वैभाविक विकारो को शरीर से ऐसे पृथक् कर दू जैसे कोई म्यान से तलवार अलग की हो।

दु खे सुखे वैरिणिबधु वर्गे, योगे वियोगे भुवने वने वा।
निराकृताऽशेष ममत्व बुद्धे, सम मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ!।।3।।

शब्दार्थ–नाथ=हे स्वामिन!, निराकृताशेष ममत्व बुद्धे=समस्त पदार्थो से निर्ममत्व बुद्धि वाले, मे मन=मेरा मन, दु खे सुखे=दु ख और सुख मे, वैरिणी बन्धु वर्गे=दुश्मनो व बन्धुओ मे, योगे-वियोगे=सयोग और वियोग में, भवने वने वा=महलो अथवा जगल मे, सदा=हमेशा अपि सम अस्तु=भी समान वृत्ति रखने वाले हो।

भावार्थ–हे स्वामिन्! मेरा मन दु ख मे अथवा सुखपूर्ण अवस्था मे,

अनिष्ट करने वाले दुश्मनो पर, सहोदर बन्धुओ पर, अनिष्ट वस्तु का सयोग अभीप्सित वस्तु या प्रिय व्यक्ति का वियोग होने पर, जगल मे या भवन मे ममत्व बुद्धि को हटाता हुआ सदा अनुकूल प्रतिकूल उभयावस्था मे समत्व भाव बना रहे। हे प्रभो! यही प्रार्थना, आपसे करता हू।

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठता सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपका विव।।4।।

शब्दार्थ–मुनीश=हे मुनीश्वर!, **तमो धुनानौ**=अन्धकार के विनाशक, **दीपको इव**=द्वय दीपकवत्, **त्वदीयौ पादौ**=आपके दोनो चरण, **ममहृदि**= मेरे हृदय मे, **लीनौ इव**=तन्मयता के समान, **कीलितौ इव**=बन्धे हुए की तरह, **स्थिरौ निषातौ इव**=स्थिरता धारण किए हुए के समान, **बिम्बितौ इव**=चित्राकित की तरह **सदा तिष्ठता**=सदा विराजमान रहे।

भावार्थ–हे मुनीश्वर! अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाले आपके दीपक सदृश द्वय चरण कमल, मेरे हृदय मे लीनता धारण किये हुए, ठोक कर स्थापित किए हुए से, व स्थिर रूप से रखे चित्राकित की तरह विराजमान रहे।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिन, प्रमादत सचरता इतस्तत ।
क्षता विभिन्ना मलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनिष्ठतं तदा।।5।।

शब्दार्थ–देव=देवाधिदेव!, **इत तत**=इधर से उधर, **सचरता**=घमते हुए, **यदि**=गर, **एकेन्द्रियाद्या**=एकेन्द्रियादि, **देहिन**=देहधारी प्राणियो का, **क्षताः**=विनाश हुआ हो, **विभिन्ना**=अलग किये गए हो, **मलिता**=परस्पर मे मिला दिये हो, **निपीडिता**=पीडित किए हो, **तदा**=तो, **तत्**=वह, **दुरनुष्ठित**=दुराचरण, **मिथ्या अस्तु**=निष्फल हो।

भावार्थ–हे देवाधिदेव जिनदेव! इधर से उधर परिभ्रमण करते हुए यदि एकेन्द्रिय आदि देहधारी नष्ट हो गए हो, उन्हे अलग-थलग कर दिऐ हो अथवा मिला दिए हो, सताये गए हो, तो वह हिसामय दुराचरण मेरा निष्फल होवे।

विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाऽक्ष वशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धे-र्यद-कारि लोपन, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृत प्रभो!।।6।।

शब्दार्थ–प्रभो=हे प्रभो!, **विमुक्ति मार्ग-प्रतिकूल**=मोक्ष मार्ग के प्रतिकूल, **वर्तिना**=आचरण करने वाले से, **दुर्धिया मया**=मुझ दुर्बुद्धि वाले से **कषायाऽक्ष**=कषाय और इन्द्रियो के, **वशेन**=अधीनता वश, **चारित्र शुद्धे**=चारित्र शुद्धि का, **यत् लोपन अकारि**=जो कुछ विलोप किया है

मम तत्=मेरा वह, दुष्कृतं मिथ्या अस्तु=दुष्कर्म निष्फल होवे।

भावार्थ–हे प्रभु! आपने मुक्ति का जो मार्ग बतलाया है, उसके प्रतिकूल आचरण, मैने कषाय वश अथवा वैषयिक सुख की आकाक्षा पूर्ति हेतु दुर्बुद्धि से यदि किया हो, चारित्र शुद्धि के मार्ग को विलुप्त किया हो, तो वह मेरा दुष्कृत्य निष्फल हो।

विनिन्दना ऽऽलोचन गर्हणैरहं, मनो वच· काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भव दु:ख कारणं, भिषग् विषं मंत्र गुणैरिवाऽखिलम्।।7।।

शब्दार्थ–भिषग्=वैद्य औषध से, मंत्र गुणै=मत्रवादी मत्र से, अखिल=समस्त, विष इव=विष हरणवत, अहं=मै, विनिंदना आलोचन-गर्हणै:=निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा, मनो वच काय कषाय=मन, वचन, काया तथा कषाय से, निर्मित=उपार्जित, भव दु:ख कारणं-पाप=भव भवान्तर के दु:ख भूत पाप कर्मो को, निहन्मि=नष्ट करता हू।

भावार्थ–हे अन्तर्यामिन् प्रभो! मैने मन वचन और कायिक योगो एव कषायिक वृत्ति से भव-दु:ख ज्वाला के विवर्धक जो पाप कर्म उपार्जित किये है, उन की आत्मसाक्षी से निदा, गुरु साक्षी से बहिष्कार कर स्वात्मा से अलग करता हू। अर्थात् निन्दा, आलोचना, गर्हा के द्वारा नष्ट करता हू। जैसे कोई कुशल वैद्य, औषध और मत्र कर्म के गुणो से समस्त विष को नष्ट करता है।

अतिक्रमं यं विमते-र्व्यतिक्रमं, जिनाऽतिचारं सुचरित्र कर्मण·।
व्यधा-मनाचार-मपि प्रमादत:, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।।8।।

शब्दार्थ–जिन=हे जिनेश्वर देव !, सुचरित्र कर्मण:=उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का, प्रमादत=प्रमाद से, य=जो, अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार ःनाचामपि=अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार भी, व्यधा=लगे हे, तस्या शुद्धये=उसकी शुद्धि के लिए, प्रतिक्रम करोमि=प्रतिक्रमण करता हू।

भावार्थ–हे जिनेश्वर देव! ग्रहण किए हुए चारित्र धर्म के शुद्ध आराधना मे प्रमाद वश मैने अशुभ भावना, दुष्सकल्प-विकल्पात्मक अतिक्रमण किया हो, उन सकल्प-विकल्प के अनुरूप साधन एकत्र किये हो, योजनानुरूप कार्य करने हेतु कदम बढाया हो और तद् अनुसार क्रिया-कलाप किया हो। इन अतिक्रम-व्यतिक्रम अतिचार और अनाचार सम्बन्धी कोई दोष लगा हो उनकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हू।

क्षति मन शुद्धि विधेरतिक्रम, व्यतिक्रम शीलेवृत्ते-विलघनम्।
प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तन, वदन्त्य-नाचार-मिहातिसक्तताम्।।9।।

शब्दार्थ–प्रभो=हे परमात्मन्!, इह मन शुद्धि विधे=इस मन शुद्धि के विधान के, क्षति=हानि को, अतिक्रम=अतिक्रम, शीलवृते विलघन व्यतिक्रम=शीलाचार के उल्लघन को व्यतिक्रम, विषयेषु वर्तनं अतिचार=विषय मे प्रवर्तन को अतिचार और, महातिसक्तता अनाचार=अत्यधिक आसक्ति को अनाचार, वदन्ति कहते है।

भावार्थ–हे परमेश्वर! मन शुद्धि को नष्ट करने रूप अतिक्रम, शीलाचार के सरक्षण के उल्लघन रूप व्यतिक्रम, इन्द्रियजन्य विषय-वासना मे प्रवृत्ति करने रूप अतिचार और उन विषयो मे आसक्ति रखकर जो अनाचारमय प्रवृत्ति की है। यह सब दोष आपके प्रसाद से मेरे दूर हो।

यदर्थ मात्रा पद वाक्य हीन, मया प्रमादाद् यदि किच-नोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवल बोध लब्धिम्।।10।।

शब्दार्थ–मया प्रमादाद्=मैने प्रमाद से, यदि यत्=गर जो, अर्थ-मात्रा-पद-वाक्य-हीन=अर्थ मात्रा पद और वाक्य से हीन, किचित् उक्त=कुछ कहा हो तो, मे तत्=मेरा वह अपराध, क्षमित्वा=क्षमा करके, सरस्वती देवी केवल बोध=हे सरस्वती देवी! केवल ज्ञानरूपी, लब्धि विद्धातु=लब्धि को प्रदान करे।

भावार्थ–अल्पज्ञता के कारण मैने प्रमाद वश अर्थ-मात्रा पद और वाक्य से हीन गर कुछ भी कहा हो, जिन सिद्धान्त वचनो के विरुद्ध बोला हो, तो वह अपराध हे आगम भारते! क्षमा करे, मुझे केवल बोध रूप शक्ति देवे।

बोधि समाधि परिणाम शुद्धि, स्वात्मोपलब्धि शिव सौख्य सिद्धि।
चिन्तामणि चितित वस्तु दाने, त्वा वन्द्यमानस्य ममाऽस्तु देवि!।।11।।

शब्दार्थ–देवि=हे सरस्वती देवी!, चितित वस्तु दाने=सोची गई वस्तु के दान मे, चितामणि=चिन्तामणि के समान, त्वा=आप, वंद्यमानस्य मम=वन्दन करने वाले मुझको, बोधि=सुज्ञान, समाधि=स्वरूप लीनता, परिणाम शुद्धि=भावो की शुद्धि, स्वात्म· उपलब्धि=अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति, शिव सौख्य सिद्धि=मोक्ष सुख की उपलब्धि, अस्तु=हो।

भावार्थ–आगम महोदधि! आप मनोवाछित वस्तु को प्रदान करने मे चितामणि सदृश है। आपकी वन्दना करने वाले मुझ को आपके प्रसाद से यथार्थ बोध चित्त समाधि, भावो की शुद्धि, आत्मस्वरूप की उपलब्धि परम

कल्याण रूप मोक्ष सुख की सिद्धि हो।

यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैः, य स्तूयते सर्व नराऽमरेन्द्रैः।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रैः, स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम्।।12।।

शब्दार्थ—यः सर्व=जो समस्त, मुनीन्द्र वृन्दै स्मर्यते=मुनियो के नाथ से स्मरण किया जाता है, य सर्व नरा अमरेन्द्रै=जो सभी नराधिपतियो और देवेन्द्रो से, स्तूयते=स्तुति किया जाता है, य वेद पुराण शास्त्रै=जो वेदो, पुराणो, शास्त्रो से, गीयते=गाया जाता है, स देव देव=वह देवाधिदेव अरिहत प्रभो! मम हृदये आस्ताम्=मेरे हृदय मे विराजमान रहे।

भावार्थ—जिनको गणाधिपति, गच्छ नायक सदा स्मरण करते हैं, जिनका देवराज इन्द्र और नराधिपति नरेन्द्र स्तवन करते है, जिनकी वेद, पुराण और शास्त्र विरदावली गाते है वे देवाधिदेव! अरिहत मेरे हृदय मे सदा विराजित रहे।

यो दर्शन ज्ञान सुख स्वभाव, समस्त ससार विकार बाह्य.।
समाधि गम्य. परमात्म सज्ञ, स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम्।।13।।

शब्दार्थ—य· दर्शन ज्ञान सुख स्वभाव=जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख स्वभाव से सम्पन्न है, समस्त ससार विकार बाह्य.=सासारिक मोह माया एवं समस्त विकारो से रहित है, समाधि गम्य=समाधि को प्राप्त है, समाधि भाव से प्राप्त होने योग्य है, परमात्म सज्ञ=परमात्म कहलाते है, स देव देव=वे देवो के स्वामी देवाधिदेव, मम हृदये आस्तां=मेरे हृदय मे विराजते रहे।

भावार्थ—जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुख स्वभाव वाले, ससार के विकारो से पूर्णत विमुक्त, समाधि भाव मे स्थित है और योगी पुरुष जिसे परमात्मा कहकर पुकारते है। वे देवाधिदेव मेरे अन्तर्हृदय मे विराजमान रहे।

निषूदते यो भव दु.ख जाल, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्त-र्गतो योगि निरीक्षणीय., स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम्।।14।।

शब्दार्थ—य भव दुख जाल=जो भव दुखो की परम्परा को, निषूदते=नष्ट करते है, य. जगदन्तराल=जो जगत् के मध्य स्थिति को, निरीक्षते=देखते है, अन्तर्गत य=जो भीतर मे स्थित है, योगि निरीक्षणीय.=योगी महात्मो से देखने योग्य है, स देव देव=वे देवाधिदेव, मम हृदये आस्ता=मेरे हृदय मे विराजमान् रहे।

भावार्थ–जो दु खमय जन्म मरण के जाल काटते है, सम्पूर्ण जगत को अपने मे देखते है, योगि महात्माओ द्वारा अर्न्तहृदय मे निरीक्षण करने योग्य हैं, ऐसे वे देवाधिदेव। मेरे अन्तर्हृदय मे विराजमान रहे।

विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो-, यो जन्म मृत्यु व्यसनाद् विमुक्त ।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलक, स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।।15।।

शब्दार्थ–य· **विमुक्ति मार्ग प्रतिपादक**=जो मोक्ष मार्ग का कथन करने वाले हे, **य. जन्म मृत्यु व्यसनात् विमुक्त**=जो जन्म-मरण दु खो से रहित है, **त्रिलोक लोकी**=तीन लोक को देखते है, **विकल**=शरीर रहित हे, **अकलक**=निष्कलक है, **स देव देव हृदये मम आस्ता**=वे देवाधिदेव मेरे हृदय मे विराजमान रहे।

भावार्थ–जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाले, जन्म-जरा-मरण रूप दु खो से रहित, त्रिभुवन को देखने वाले, अशरीरी, निष्कलक है, ऐसे देवाधिदेव मेरे हृदय मे सदा विराजमान रहे।

क्रोडी कृताऽशेष शरीरि वर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषा ।
निरिन्द्रयो ज्ञानमयो ऽनपाय, स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।।16।।

शब्दार्थ–**अशेष**=सर्वत्र, **क्रोडी कृता**=व्याप्त रहने वाले, **शरीरि वर्गा**=प्राणि वर्ग को, **रागादय दोषा**=राग आदि दोष, **यस्य न सन्ति**=जिसके नही है, स **निरीन्द्रिय:**=वे अतीन्द्रिय, **ज्ञानमय**=ज्ञानमय, **अनपाय**=अनीश्वर हे, **देव देव मम हृदये आस्ता**=देवाधिदेव मेरे अन्त करण मे विराजमान होवे।

भावार्थ–जो ससार के समस्त प्राणिवर्ग को अपने वश मे रखने वाले, राग-द्वेष, विषय-कषाय दोषो से सर्वथा रहित, अतीन्द्रियवान्, ज्ञानमय, अक्षीण स्वभावी है, ऐसे देवाधिदेव मेरे हृदय मे सदा विराजमान रहे।

यो व्यापको विश्व जनीन वृत्ति·, सिद्धो विबुद्धो धुत कर्म बन्ध ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकार, स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।।17।।

शब्दार्थ–य **व्यापक**=जो सर्व व्यापक है, **विश्वजनीन वृत्ति**=विश्व कल्याण की स्वभाविक प्रवृत्ति है, **सिद्ध**=सिद्ध है, **विबुद्ध**=ज्ञायक स्वभाववाले हे. **धुत कर्म बन्ध**=कर्मबन्धनो के नाशक है, **ध्यात**=ध्याने से, **सकल विकार**=सम्पूर्ण विकार, **धुनीते**=नष्ट होते है, **सदेव देव. मम हृदये आस्ता**=वे देवाधिदेव मेरे हृदय मे विराजमान रहे।

भावार्थ–सासारिक दु खो से उद्धार करने का स्वभाव जिनका सहज

है, जो ज्ञान दृष्टि से सर्वव्यापक है, सकल सिद्धियो के केन्द्र, आत्मसिद्धि पाने से कृतकृत्य, ज्ञायक, सर्व बन्धनो से मुक्त है, जिनको ध्याने से अन्त.करण के वेषयिक विकार नष्ट हो जाते हैं, वे देवाधिदेव। मेरे अन्तर्हृदय मे सदा विराजमान रहे।

न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषैः, यो ध्वान्त सघैरिव तिग्म रश्मि।
निरजन नित्य-मनेक-मेक, त देव-माप्त शरणं प्रपद्ये।।18।।

शब्दार्थ–ध्वान्त. संघैः=घनीभूत अन्धकार से, तिग्म रश्मिः इव=सूर्य स्पर्शित नही होती वैसे, यः कर्म कलक दोषै=जो कर्म कलक के हेतुभूत रागादि दोषो से, न स्पृश्यते=स्पृष्ट नही होते है, निरजन=कर्म अजन से रहित, नित्य=शाश्वत, अनेक=अनेक होकर के, एकं=एक स्वरूप को प्राप्त हे, तं आप्तं देवं=उस महान देव की, शरण प्रपद्ये=शरण ग्रहण करता हू।

भावार्थ–जिस प्रकार सूर्य, अन्धकार को स्पर्श नही करता, उसी प्रकार जो कर्म कलक आदि के हेतुभूत रागादि दोषो से स्पर्श नही करते हे, ऐसे कर्म अजन से रहित, शाश्वत अनेक होकर एक रूपात्मक स्वरूप धारण किये हुए, उन महान् देव की शरण को स्वीकार करता हू।

विभासते यत्र मरीचि माली, न विद्यमाने भुवनाव-भासी।
स्वात्म स्थितं बोधमय प्रकाश, त देव-माप्त शरण प्रपद्ये।।19।।

शब्दार्थ–भुवनावभासी=ससार को प्रकाशित करने वाले, मरीचि माली=सूर्य, यत्र विद्यमाने=जहा विद्यमान रहने पर, न विभासते=शोभा नही पाता, स्वात्म स्थित=स्वात्मा मे स्थित, बोधमय प्रकाश=ज्ञानमय प्रकाश वाले, त आप्त देव शरण प्रपद्ये=उस आप्त देव की शरण स्वीकारता हू।

भावार्थ–जिस देव के साक्षात् उपस्थित रहने पर लोक प्रकाशक सूर्य शोभा नही पाता, जो अपने आत्मा मे स्थित है, ज्ञानमय प्रकाश वाले है मै उसी महापुरुष की शरण स्वीकार करता हू।

विलोक्यमाने सति यत्र विश्व, विलोक्यते स्पष्ट-मिद विविक्त।
शुद्धं शिव शान्त-मनाद्यनन्त, त देव-माप्त शरण प्रपद्ये।।20।।

शब्दार्थ–यत्र विलोक्यमाने सति=जिसके देखने पर, इद विश्व= यह सारा जगत, स्पष्ट विविक्त विलोक्यते=स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् दिखाई देता है, शुद्धं=शुद्ध, शिव=कल्याण, शात=शात स्वरूप वाले, अनाद्यनन्त=आदि, अन्त से रहित, आप्त=महान, त=उस, देव शरण

प्रपद्ये=देव की शरण को लेता हू।

भावार्थ–जिसको देख लेने पर यह सम्पूर्ण विश्व स्पष्ट पृथक्-पृथक् दिखाई देता है। जो शुद्ध व शात है, आदि अन्त से रहित, शिव स्वरूप है। मे उसी आप्त देव की शरण को लेता हू।

येन क्षता मन्मथ मान मूर्च्छा, विषाद निद्रा भय शोक चिन्ताः।
क्षय्योऽनलेनेव तरु प्रपंच-स्तं देव-माप्त शरण प्रपद्ये।।21।।

शब्दार्थ–अनलेन=अग्नि से, तरु प्रपच. क्षय्यः इव=जैसे वृक्षो का समूह भस्म कर दिया जाता है, **येन**=जिन्होने, **मन्मथ मान मूर्च्छा विषाद**=इन काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, **निद्रा, भय, शोक, चिन्ता क्षता**= निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि दोष क्षय कर दिये गए है, **तं आप्तं देव शरण प्रपद्ये**=उस महादेव की शरण को प्राप्त होता हू।

भावार्थ–जिस तरह अग्नि से वृक्षो का समूह जल कर भस्मीभूत हो जाते है, उसी प्रकार जिसने काम-विकार, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक और चिन्ता आदि विकारो को नष्ट कर दिया, उसी देवाधिदेव की शरण लेता हू।

न सस्तरोऽश्मा न तृण न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मित।
यतो निरस्ताक्ष कषाय विद्विष, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मत।।22।।

शब्दार्थ–विधानत.=विधान रूप से, **न सस्तर**=न आसन है, **अश्मा**=पाषाण है, **न तृण**=न तृण पुज है, **न मेदिनी**=न पृथ्वी है, **नो विनिर्मित फलक**=न ही बनाया हुआ काष्ठ का बाजौट है, **यत.**=क्योकि, **सुधीभि**=बुद्धिमानो ने, **निरस्त. अक्ष कषाय विद्विष**=विषय-कषाय रूप शत्रुओ से रहित, **सुनिर्मल आत्मा एव**=परम निर्मल आत्मा ही, **मत.**=माना गया है।

भावार्थ–न ध्यान का आसन, न शय्या, न पत्थर, न तृण, न भूमि है और न काष्टफलक-पाटा है, किन्तु जिसके अन्तर से विषय-कषाय रूप शत्रु हट गये है, उसी निर्मल आत्मा को ज्ञानियो ने ध्यान का आसन माना है।

न सस्तरो भद्र! समाधि साधन, न लोक पूजा न च सघ मेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्म रतो भवाऽनिश, विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम्।।23।।

शब्दार्थ–भद्र=हे भद्र!, यत=क्योकि, न संस्तर=न आसन है, न लोकपूजा=न सासारिक पूजा, न च सघ मेलनम्=और न सघ सम्मेलन

है, समाधि साधनं=समाधि का साधन, ततः=इसलिए, सर्वां बाह्य-वासनाम्=समस्त बाह्य वासनाओ को, विमुच्य=छोडकर, अनिशमपि=निरन्तर भी, अध्यात्म रत. भव=अध्यात्म मे लीन रहो।

भावार्थ–हे भद्र! समाधि का साधन न शय्या है, न लोकपूजा है और न सघ का एकत्रीकरण है, इसलिए सभी लोकैषणाओ को छोडकर अपने अध्यात्म स्वरूप मे निरन्तर तल्लीन रहो।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषा न कदाचनाऽहम्।
इत्थ विनिश्चित्य विमुच्य बाह्य, स्वस्थ सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै।।24।।

शब्दार्थ–केचन बाह्याः अर्थाः=कोई बाह्य पदार्थ, मम न सन्ति=मेरे नही है, अहं तेषा=मै उनका, न कदाचन भवामि=कदापि नही हू, इत्थ विनिश्चत्य=ऐसा दृढ निश्चय करके, बाह्य विमुच्य=बाहरी पदार्थो को छोडकर, भद्र=हे भद्रात्मन्, त्व सदा=तुम सदा, स्वस्थ भव=स्वात्मा मे स्थिर रहो।

भावार्थ–बाह्य कोई भी पदार्थ मेरे नही और न कभी उनका हू, ऐसा अडिग निश्चय करके हे भद्र पुरुष! बाह्य वस्तुओ की मूर्च्छासक्ति, सप्राप्त करने की लालसा एव सरक्षण करने की कामना का परित्याग करके तू सदा अपने आत्म स्वरूप मे स्थिर रह।

आत्मान-मात्मन्य-वलोक्य मानस्, त्व दर्शन ज्ञानमयो विशुद्ध।
एकाग्रचितः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्।।25।।

शब्दार्थ–आत्मनं=आत्मा को, आत्मनि=आत्मा मे, अवलोक्यमान=देखते हुए, त्वं दर्शन ज्ञानमय विशुद्ध=तुम दर्शन ज्ञानमय, निर्मल हो, खलु=निश्चय ही, यत्र तत्र अपि=जहा तहा भी, स्थित=रहा हुआ, एकाग्रचित· साधु=स्थिरचित्त बना साधु, समाधि लभते=समाधि को प्राप्त करता है।

भावार्थ–हे आत्मन्! तू अपने आत्मा को अपनी आत्मा मे देख! तू अनन्त दर्शन ज्ञानमय शुद्ध स्वभाव वाला है। इस प्रकार एकाग्र चित्त होकर जहा कही भी साधु रहा, आत्म समाधि को प्राप्त कर लेता है।

एक· सदा शाश्वति को ममाऽऽत्मा, विनिर्मल साधिगम स्वभाव।
बहिर्भवा सन्त्य परे समस्ता, न शाश्वता कर्म भवा स्वकीया।।26।।

शब्दार्थ–मम आत्मा=मेरी आत्मा, सदा एक·=सदा एकाकी, शाश्वतिक·=शाश्वत है, विनिर्मल=शुद्ध, साधिगम स्वभाव=वह ज्ञान

स्वभाव से युक्त हे, **अपरे समस्ता**=अन्य समस्त, **बहिर्भवा**=बाहरी पदार्थ, **कर्मभवा**=कर्म जनित है, **स्वकीया शाश्वता न सन्ति**=स्वकृत शाश्वत नही हे।

भावार्थ–मेरी आत्मा सदैव एककी, शाश्वत है सम्पूर्ण कर्म मल से रहित शुद्ध हे, ज्ञान स्वभावी है, इसके अतिरिक्त अन्य जितने भी बाह्य पदार्थ ओर राग द्वेषादि भाव है, वे सब कर्मजनित है, अशाश्वत है।

यस्याऽस्ति नेक्य वपुषाऽपि सार्द्ध, तस्याऽस्ति कि पुत्र कलत्र मित्रै।
पृथक् कृते चर्मणि रोम कूपा, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये।।27।।

शब्दार्थ–**यस्य वपुषा सार्द्ध अपि**=जिसका शरीर के साथ भी, **न ऐक्य**=एक्यता नही है, **तस्य पुत्र कलत्र मित्रै**=उसका पुत्र, स्त्री और मित्रो के साथ, **कि अस्ति**=क्या है? **चर्मणि पृथक् कृते**=चमडी को अलग करने पर, **शरीर मध्ये**=शरीर के मध्य मे, **रोम कूपा**=छिद्र, **हि कुत्त**=ही केसे, **तिष्ठन्ति**=रहेगे।

भावार्थ–जिस आत्मा का शरीर के साथ भी एकत्व नही, उसका पुत्र, स्त्री ओर मित्रो के साथ एकत्वपन कैसे रह सकता है? चमडी को शरीर से अलग करने पर रोम के छिद्र शरीर मे कैसे रह सकते है?

सयोगतो दु ख-मनेक भेद, यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी।
ततस्त्रिधाऽसौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृति-मात्मनीनाम्।।28।।

शब्दार्थ–**यत शरीरी**=क्योकि शरीरधारी, **जन्म वने**=जन्म रूप अरण्य मे, **सयोगत**=सयोग से, **अनेक भेद दु ख**=अनेक प्रकार के दु खो को, **अश्नुते**=पाता है, **अत**=इसलिए, **आत्मनीना**=आत्मा की, **निवृत्ति यियासुना**=मुक्ति चाहने वाले को, **असौ त्रिधा**=वह सयोग तीनो प्रकार से, **परिवर्जनीय**=छोडने योग्य है।

भावार्थ–बाह्य पदार्थो मे ममत्व भाव का सयोग होने से यह प्राणी उत्पत्ति रूप जगल मे अनेक प्रकार के दु खो को पाता है। इसलिए इन दु खो से मुक्त बनने के इच्छुक को मनसा, वाचा, कर्मणा इनका त्याग कर अपनी आत्मा का सरक्षण करना चाहिए। इन सयोगो का त्याग तीनो प्रकार से करना उसके लिए योग्य है।

सर्व निराकृत्य विकल्प जाल, ससार कान्तार निपात हेतुम्।
विविक्त-मात्मान-मवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्व परमात्म तत्त्वे।।29।।

शब्दार्थ–**ससार कान्तार**=ससार रूपी वन मे, **निपात हेतु**=गिरने

का कारण, सर्व विकल्प जालं=सम्पूर्ण विकल्प जाल को, निराकृत्य=हटाकर, विविक्तं आत्मानं=एक मात्र आत्मा को, अवेक्ष्यमाण=देखते हुए, त्वं परमात्व तत्त्वे=तुम परमात्म स्वरूप मे, निलीयसे=लीन रहो।

भावार्थ–रासार वन मे भटकाने वाले सर्वविकल्प जाल को दूर हटाकर एकमात्र सबसे भिन्न स्वात्मा को देखते हुए, हे आत्मन्! तुम परमात्म तत्त्व मे लीन रहो।

स्वयं कृतं कर्म यदात्माना पुरा, फल तदीयं लभते शुभाऽशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृत कर्म निरर्थकं तदा।।30।।

शब्दार्थ–आत्मना=आत्मा ने, पुरा यत् कर्म=पहले जो कर्म, स्वयं कृतं=स्वयं ने किये है, तदीयं शुभाऽशुभं फलं=उनके शुभ अथवा अशुभ फल, स्फुट लभते=स्पष्ट रूप से प्राप्त होता ही, यदि परेण दत्त=अगर दूसरे के द्वारा दिया, लभ्यते=प्राप्त होता है, तदा=तब, स्वय कृतं कर्म=अपने किये कर्म, निरर्थक=व्यर्थ हो जायेगे।

भावार्थ–हे आत्मन्! जिस जीव ने पूर्व काल मे जैसे कर्म सचित किए है, वह उन्ही का शुभा-शुभ फल पाता है। अगर कोई दूसरे द्वारा दिए कर्मों का फल पाने लगेगा तब उसके स्वय के किए कर्म व्यर्थ साबित हो जायेगे।

निजार्तितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किचन।
विचारयन् नेव मनन्य मानस, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्।।31।।

शब्दार्थ–निजार्जित कर्म विहाय=अपने उपार्जित कर्मो को छोडकर, कोऽपि=कोई भी, कस्याऽपि=किसी भी, देहिन=प्राणी को, किंचन न ददाति=कुछ नही देता है, एवं विचारयन्=ऐसा विचार करते हुए, आत्मन्=हे आत्मन्!, परः ददाति इति=दूसरा देता है ऐसी, शेमुषी विमुच्य=बुद्धि को छोडकर, अनन्य मानस=एकाग्रचित हो।

भावार्थ–अपने सचित कर्मो को छोडकर कोई किसी भी प्राणी को सुख या दु:ख कुछ भी नही देता। ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्र चित्त वन। और दूसरा देता है इस बुद्धि को हटा। इस चिन्तन से तू अपने आपको राग द्वेष से बचा लेगा।

यैः परमात्माऽमित गति वन्द्य, सर्व विवक्तो भृश-मनवद्य।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते मुक्ति निकेत विभव वर ते।।32।।

शब्दार्थ–यैः=जिन पुरुषो ने, अमित-गति वन्द्य=अपरिमित ज्ञान

होने से या अमितगति द्वारा वन्दनीय, **सर्व विविक्त**=सम्पूर्णकर्मो से विमुक्त, **भृश अनवद्य**=अत्यन्त निर्दोष, **परमात्मा**=परमात्मा, **मनसि**=मन मे, **शश्वत्**=निरन्तर, **अधीते**=चिन्तन करते है, **ते विभव वर**=वे श्रेष्ठ वैभव वाले, **मुक्ति निकेत**=मुक्ति महल को, **लभन्ते**=प्राप्त होते है।

भावार्थ–जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी होने से अमितगति आचार्य द्वारा वन्दनीय है, जो कर्मो से सर्वथा विमुक्त होने से सबसे भिन्न है, पूर्ण निर्दोष है, उनका जो सतत मन मे चिन्तन करते है, वे पुरुष सर्वश्रेष्ठ आत्म श्री वाले मोक्ष महल को पाते है।

इति द्वात्रिंशता वृत्तै., परमात्मान-मीक्षते।
योऽनन्य गत चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्।।33।।

शब्दार्थ–**य अनन्य-गत चेतस्क**=जो एकाग्रचित्त होकर, **इति द्वात्रिंशता**=इन बत्तीस, **वृत्तै**=पद्यो से, **परमात्मानं**=परमात्मा का, **ईक्षते**=दर्शन करता है, **असौ**=वह, **अव्यय**=अविनाशी, **पद**=पद को, **याति**=प्राप्त होता है।

भावार्थ–इस प्रकार बत्तीस छदो का जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का चिन्तन करता है। वह अविनाशी शिव पद को पा लेता है।

पुण्य प्रसाद से तीर्थकर सा उच्च स्थान मिलता है।
पुण्य प्रसाद से चक्रवर्ती सा सम्मान मिलता है।।
पर को साता पहॅचाने धर्म का सहयोग करने से ही।
व्यक्ति को ऐसा विपुल ऐश्वर्य सुख सम्मान मिलता है।।

आपके भाव आपको स्वर्ग मे ले जा सकते है।
आपके भाव आपको नरक मे ले जा सकते हैं।।
भावो पर ही जीवन की साधना टिकी है सुज्ञो।
स्वर्ग नरक अपवर्ग सब कुछ भावो से पा सकते है।।

: संतिकर-स्तोत्र :

संतिकरं संतिजिणं, जगसरण जय सिरीइ दायार।
समरामि भत्त पालगं, णिव्वाणी गरुड कय सेव।।1।

भावार्थ–जो शान्ति करने वाले, सासारिक जीवो के लिए शरण रूप, जय ओर लक्ष्मी को देने वाले, भक्तो की रक्षा करने वाले, निर्वाणी देवी और गरूड यक्ष से सेवित हे। ऐसे श्री शातिनाथ प्रभु को मैं स्मरण करता हू।

ॐ स नमो विप्पोसहि पत्ताण, सति सामि पायाण।
झ्रौ स्वाहा मतेण, सव्वासिव-दुरिय-हरणाण।।2।।

भावार्थ–जिनको विप्रुडौषध लब्धि प्राप्त है। "ॐ नमो विप्पोसहि पत्ताण झ्रो स्वाहा" इस मत्र पद से जपने वाले के सर्व उपद्रवो एव पापो को हरने वाले, श्री शाति नाथ स्वामी के चरण कमलों मे ॐ कार सहित मेरा नमस्कार हो।

ॐ सति नमुक्कारो, खेलोसहि माई लद्धिपत्ताण।
सौं ह्रीँ नमो सव्वोसहि-पत्ताण य देइ सिरि।।3।।

भावार्थ–ॐ ह्रीँ सहित श्री शान्तिनाथ स्वामी को किया जाने वाला नमस्कार श्लेष्मोषध ओर सर्वोषध सम्पन्न लब्धि वालो को श्री प्रदान करता है। जेसा कि उल्लेख मिलता है, "ॐ ह्रीँ नमा खेलोसहि लद्धिपत्ताण" "ॐ ह्रीँ नमो सव्वोसहि लद्धि पत्ताण।"

वाणी तिहुअण सामिणी, सिरीदेवी जक्खराय गणिपिडगा।
गह दिसिपाल सुरिंदा, सया वि रक्खन्तु जिण भत्ते।।4।।

भावार्थ–वाणी अधिष्ठात्री त्रिभुवन स्वामिनी सरस्वती देवी, श्री देवी, यक्षराज, गणिपिटक, सूर्यादि नवग्रह, दिशापाल और देवेन्द्र ये सव जिन भक्तो की सदा रक्षा करे।

रक्खंतु मम रोहिणी, पण्णत्ती वज्जसिखला य सया।
वज्जकुसि चक्केसरि, नरदत्ता काली महाकाली।।5।।
गोरी तह गंधारी, महजाला माणवी य वइरुट्टा।
अच्छुत्ता माणसिआ, महामाणसिया उ देवीओ।।6।।

भावार्थ–रोहिणी[1], प्रज्ञप्ति[2], वज्रश्रृखला[3], वज्राकुशी[4], चक्रेश्वरी[5], नरदत्ता[6], काली[7], महाकाली[8], गौरी[9], गधारी[10], महाज्वाला[11], मानवी[12], वैरॉट्या[13], अछुप्ता[14], मानसिका[15] और महा मानसिका[16] ये सोलह विद्या देविया मेरा रक्षण करे।

जक्खा गोमुह महजक्ख, तिमुह जक्खेस तुम्बरु कुसुमो।
मायग विजयऽजिअ, बभो, मणुओ सुर कुमारो।।7।।
छम्मुह पयाल किन्नर गरूडो, गधव्व तह य जक्खिदो।
कूबेर वरुणो भिउडी, गोमेहो पास मायगा।।8।।

भावार्थ–गोमुख[1], महायक्ष[2], त्रिमुख[3], यक्षेश[4], तुम्बरु[5], कुसुम[6], मातग[7], विजय[8], अजित[9], ब्रह्म[10], मनुज[11], सुर कुमार[12], षण्मुख[13], पाताल[14], किन्नर[15], गरुड[16], गधर्व[17], यक्षेन्द्र[18], कुबेर[19], वरुण[20], भृकुटि[21], गोमेध[22], पार्श्व[23] और मातग[24] ये तीर्थकर भगवतो के शासन रक्षक यक्ष गण है।

देवीओ चक्केसरि अजिआ, दूरिआरि कालि महाकाली।
अच्चुअ सता जाला, सुतारयाऽसोय सिरिवच्छा।।9।।
चडा विजयकुसि पण्णत्ति, निव्वाणि अच्चुआ धरणी।
वइरूट्टऽछुत्त गधारि, अब पउमावई-सिद्धा।।10।।

भावार्थ–चक्रेश्वरी[1], अजिता[2], दुरितारी[3], काली[4], महाकाली[5], अच्युता[6], शान्ता[7], ज्वालामालिनी[8], सुतारका[9], अशोका[10], श्रीवत्सा[11], चण्डा[12], विजया[13], अकुशी[14], प्रज्ञप्ति-पन्नगी[15], निर्वाणी[16], अच्युता-बाला[17], धरणी[18], वैरॉट्या[19], अच्छुप्ता[20], गाधारी[21], अम्बा[22], पद्मावती[23] और सिद्धायिका[24]। ये शासन रक्षिका देविया है।

इउ तित्थ रक्खण रया, अण्णे वि सुरा सुरीउ चउहा वि।
वतर जोइणि पमुहा, कुणतु रक्ख सया अम्ह।।11।।

भावार्थ–ये शासन रक्षा करने मे तत्पर चौबीस यक्ष और यक्षिणीए, और अन्य भी देव-देविया, व्यन्तर व योगिनीए प्रमुख सदा मेरा रक्षण करे।

एव सुदिट्ठि सुरगण सहिओ, सघस्स सति जिणचदो।
मज्झवि करेउ रक्ख, मुणि सुदर सूरि थुअ महिमा।।12।।

भावार्थ–इस प्रकार सम्यग्दृष्टि देवो के समूह वाले श्री शान्ति नाथ प्रभु श्री सघ की तथा मेरी रक्षा करे, जिनकी महिमा पूर्ण स्तुति मुनि सुन्दर सूरि ने की हे।

इअ सतिनाह सम्मदिट्ठि य, रक्ख समरेइ तिकाल जो।
सव्वोवद्दव रहिओ, स लहइ सुह सपय परम।।13।।

भावार्थ–इस शान्ति नाथ स्तोत्र का जो सम्यग्दृष्टि तीनो काल रक्षा के लिए स्मरण करता है। वह समस्त उपद्रवों से रहित परम सुख को प्राप्त होता है।

जिन पंजर-स्तोत्र

ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्ह अर्हद्भ्यो नमो नम
ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्ह सिद्धेभ्यो नमो नम
ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं आचार्येभ्यो नमो नम
ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्ह उपाध्यायेभ्यो नमो नम
ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्ह गौतम स्वामी प्रमुख सर्व साधुभ्यो नमो नम ।।1।।

एष पञ्च नमस्कार, सर्व पाप क्षयंकर ।
मगलानां च सर्वेषा, प्रथम भवति मगलम्।।2।।

उपरोक्त यह पाच नमस्कार सम्पूर्ण पापो को नष्ट करने वाले हैं और सभी मगलो मे उत्कृष्ट मगल है।

ॐ ह्रीँ श्रीँ जये विजये, अर्ह परमात्मने नम ।
कमल प्रभ सूरीन्दो, भाषते जिन पजरम्।।3।।

"ॐ ह्रीँ श्रीँ जये! विजये! अर्ह परमात्मने नम" इस मत्र से परमात्मा को नमस्कार करके श्री कमल प्रभ सूरि' श्री जिन पजर नामक स्तोत्र को कहते हैं।

एक भक्तोपवासेन, त्रिकाल य पठेदिदम्।
मनोऽभि-लषित सर्व, फल स लभते ध्रुवम्।।4।।

जो एकासन या उपवास करके प्रात काल, अपराह्न, सध्या तीनो समय इस स्तोत्र को पढता है, वह निश्चय ही सभी मन वाछित फलो को प्राप्त करता है।

भूशय्या ब्रह्मचर्येण, क्रोध लोभ विवर्जित ।
देवताग्र पवित्रात्मा, षण्मासै-र्लभते फलम्।।5।।

जो पवित्रात्मा क्रोध और लोभ से रहित होकर भू-शय्या और ब्रह्मचर्य पालना करते हुए इस स्तोत्र की नियमित साधना छ महिने तक करता है फल को प्राप्त करते है।

अर्हन्त स्थापयेन, मूर्ध्नि, सिद्ध चक्षु-र्ललाटके।
आचार्य श्रोत्रयो-र्मध्ये, उपाध्याय तु नासिके।।6।।

साधुवृन्द मुखस्याग्रे, मन. शुद्धि विधाय च
सूर्य चन्द्र निरोधेन, सुधी सर्वार्थ सिद्धये।।7।।

बुद्धिमान पुरूष सर्वार्थ की सिद्धि के लिए सूर्यनाडी और चन्द्रनाडी

को रोक कर ओर मन को पवित्र बनाकर के अरिहन्त को मस्तक मे, सिद्ध को ललाट/भ्रूमध्य मे, आचार्य को दोनो कानो के मध्य, उपाध्याय को नासिक पर, और साधु समुदाय को मुखाग्र भाग पर स्थापित करे।

दक्षिणे-मदन द्वेषी, वाम पार्श्वे स्थितो जिन ।
अङ्ग सन्धिषु सर्वज्ञ, परमेष्ठी शिवकर ।।8।।

अरिहत परमात्मा को काम नाशक के रूप मे दक्षिण पार्श्व की ओर, जिन रूप मे वाम पार्श्व की तरफ सर्वज्ञ, परमेष्ठी और शिवकर रूप मे अगो की सन्धि स्थानो का रक्षण करे।

पूर्वाशा च जिनो रक्षेद्, आग्नेयी विजितेन्द्रिय ।
दक्षिणाशा पर ब्रह्म, नैर्ऋती च त्रिकालवित्।।9।।

पश्चिमाशा जगन्नाथो, वायव्या परमेश्वर ।
उतरा तीर्थन् कृत्-सर्वामीशानेऽपि निरजन ।।10।।

पाताल भगवानर्हन्, नाकाश पुरुषोतम ।
रोहिणी प्रमुखा देव्यो, रक्षन्तु सकल कुलम्।।11।।

अरिहत देव जिनेश्वर के रूप मे पूर्व दिशा की, विजितेन्द्रिय रूप मे आग्नेयी विदिशा की, पर ब्रह्म के रूप मे दक्षिण दिशा और त्रिकालज्ञ के रूप मे नैर्ऋती-विदिशा की रक्षा करो।

जगन्नाथ के रूप मे पश्चिम दिशा, परमेश्वर के रूप मे वायव्य विदिशा की, तीर्थकर के रूप मे उत्तर दिशा और सर्व निरंजन के रूप मे ईशान विदिशा की रक्षा करो।

अरिहत के रूप मे पाताल की, पुरूषोत्तम के रूप मे आकाश की रक्षा करो। रोहिणी देवी समग्र कुल का रक्षण करो।

ऋषभो मस्तक रक्षेद्, अजितोऽपि विलोचने।
सभव कर्ण युगलेऽभिनन्दनस्तु नासिके।।12।।

ओष्ठौ श्री सुमती रक्षेद् दन्तान् पदमप्रभो विभु ।
जिह्वा सुपार्श्व देवोऽय, तालु चन्द्र प्रभाभिध ।।13।।

कण्ठ श्री सुविधी रक्षेद्, हृदय जिन शीतल ।
श्रेयान्सो बाहु युगल, वासुपूज्य कर द्वयम्।।14।।

अगुली-र्विमलो रक्षेद, अनन्तोऽसौ नखानपि
श्री धर्मोऽप्यु-दरास्थीनि, श्री शाति-र्नाभि मण्डलम्।।15।।

श्री कुन्थु-र्गुह्यक रक्षेद्, अरो लोम कटी तटम्।
मल्लिररूरु पृष्ठ-मस, पिण्डिका मुनि सुव्रत ।।16।।

पादागुली-र्नमी रक्षेद्, श्री नेमीश्चरण द्वयम्।
श्री पार्श्वनाथ सर्वांगं, वर्धमानश् चिदात्मकम्।।17।।

श्री ऋषभदेव प्रभो मस्तक, श्री अजितनाथ आखो की, श्री सभवनाथ दोनो कानो की, श्री अभिनन्दन स्वामी द्वय नासिका की, श्री सुमति नाथ अधरोष्ठ, श्री पदम्प्रभु स्वामी दातो की, श्री सुपार्श्वनाथ जीभ की, श्री चन्द्र प्रभ स्वामी तालु की, श्री सुविधिनाथ कठ की, श्री शीतलनाथ प्रभो हृदय की, श्री श्रेयास नाथ दोनो भुजाओ की, श्री वासुपूज्य स्वामी दोनो हाथो की, श्री विमलनाथ अगुलियो की, श्री अनन्तनाथ नखों की, श्री धर्मनाथ उदर की और अस्थियो की, श्री शातिनाथ नाभि मण्डल की, श्री कुथुनाथ गुह्य प्रदेश की, श्री अरनाथ रोम किडनी की, श्री मल्लीनाथ छाती, पीठ भाग की, श्री मुनिसुव्रत स्वामी दोनो जघाओ की, श्री नेमिनाथ पैरो के अगुलियो की, श्री नेमिनाथ दोनों पैरो की, श्री पार्श्वनाथ सर्वांग की, और श्री महावीर स्वामी ज्ञान स्वरूपात्मा की रक्षा करो।

पृथ्वी जल तेजस्क वाय्वाकाशमय जगत.
रक्षेदशेष पापभ्यो, वीतरागो निरजन ।।18।।

श्री अरिहत परमात्मा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशात्मक जगत का, वीतराग निरजन के रूप मे सब पापो से रक्षा करे।

राजद्वारे श्मशाने च, सग्रामे शत्रु सकटे।
व्याघ्र चौराग्नि-सर्पादि, भूत प्रेत भयाश्रिते।।19।।
अकाले मरण प्राप्ते दारिद्रयापत् समाश्रिते।
अपुत्रत्वे महादु खे, मूर्खत्वे रोग पीडिते।।20।।
डाकिनी शाकिनी ग्रस्ते, महाग्रह गणार्दिते
नद्युत्तारेऽध्व-वैषम्ये, व्यसने चापदि स्मरेत्।।21।।

राजद्वार, श्मशान, सग्राम, शत्रुओ से आयी आपत्ति, बाध, चोर, अग्नि, सर्प, प्रमुख हिंसक प्राणियो तथा भूत प्रेत के भय के समय, अकाल मरण के समय, दारिद्रता रूप आपत्ति के समय, पुत्र प्राप्ति के लिए महा सक्लेश के समय मूर्खता के समय, रोग की वेदना के समय, डाकिनी शाकिनी के लगने पर, महाग्रहो के समुदाय से दु खी होने पर, नदी पार करते समय, मार्ग की विषमता के समय कष्ट और परेशानी मे इसका स्मरण करना चाहिए।

प्रातरेव समुत्थाय, य स्मरेज्-जिनपजरम्
तस्य किचिद् भय नास्ति, लभते सुख सम्पद ।।22।।

प्रात काल मे उठकर जो जिन पजर स्तोत्र का स्मरण करता है उसे किसी प्रकार का कोई भय नही सताता और सुख सपति की प्राप्ति होती है।

जिन पज्जर नामेद, य स्मरेदनु-वासरम्
कमलप्रभ सुरीन्द्र, श्रिय स लभते नर ।।23।।

जिन पजर नाम के इस स्तोत्र को जो प्रतिदिन स्मरण करता है, वह मनुष्य कमल के समान काति वाला, चक्रवर्ती की समृद्धि को प्राप्त करता है।

प्रात समुत्थाय पठते कृतज्ञो, य स्तोत्र मेतज्जिन पजरस्य
आसादेयत् स कमल प्रभाख्यो, लक्ष्मी मनोवाछित पूरणाय।।24।।

प्रात काल मे उठकर जो कृतज्ञपुरूष इस जिन पजर नामक स्तोत्र को पढे वह मन की इच्छा को पूर्ण करने वाली श्री कमलप्रभ नाम से प्रसिद्ध ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

श्रीरुद्रपल्लीय वरेण्यगच्छे, देव प्रभाचार्य पादाब्ज हस ।
वादीन्द्र चूडामणि-रेष जैनो, जीयाद सौ श्री कमल प्रभाख्य ।।

श्री रूद्रपल्लीय नामक श्रेष्ठ गच्छ मे श्री देव प्रभाचार्य के चरण कमल हस समान और जैन वादीन्द्र चूडामणि श्री कमलप्रभ नाम के सूरि जयवत हो।

दूध मे पडा खट्टास दूध को फाड देता हे।
मन मे पडा खट्टास व्यवहार मे आड देता हे।।
ईर्ष्या द्वेष रूप खट्टास के कारण ही हे सुज्ञो।
जीवन बर्बादी के कगार पर आ खडा होता हे।।

चचला सी चपलता नन्हे बालको मे होती हे।
सिद्धो की सफलता गहन साधको मे होती हे।।
कभी-कभी स्वार्थ भरी कुटिलता की वहुतायत।
धर्म सस्थाओ के सक्रिय सचालको मे हाती हे।।

: श्री लघु शांति-स्तव :

शान्तिं शान्ति निशान्तं, शान्तं शान्ताऽशिवं नमस्कृत्य।
स्तोतुः शान्ति निमित्तं, मंत्र पदैः शान्तये स्तौमि।।1।।

शब्दार्थ–स्तोतुः=स्तुति कर्त्ता के, **शांति निमित्तं**=शान्ति हेतु, **शान्तिं निशान्तं**=शान्ति रूपी प्रभात, **शान्ताऽशिव**=अशुभ को शान्त करने वाले, **शान्तं शांति**=सौम्य स्वभाव वाले शान्ति नाथ का **शान्तये**=शान्ति के लिए, **मंत्र पदैः स्तौमि**=मत्र पदो सहित स्तवन करता हू।

ओमिति निश्चित वचसे, नमो नमो भगवतेऽर्हते पूजाम्।
शांति जिनाय जयवते, यशस्विने स्वामिने दमिनाम्।।2।।

शब्दार्थ–दमिनां=दमितेन्द्रिय, **स्वामिने**=नाथ, **यशस्विने जयवते**= यशधारी हो, **ओमिति**=ओम इस, **निश्चित वचसे**=निश्चय वचन वाले, **पूजा अर्हते**=आराधना के योग्य, **भगवते**=भगवान्, **शाति जिनाय**=शान्ति जिनेश्वर के लिए, **नमो नम**=बारम्बार नमस्कार है।

सकलातिशेषक महासंपत्ति समन्विताय शस्याय।
त्रैलोक्य पूजिताय च, नमो नम शान्ति देवाय।।3।।

शब्दार्थ–सकलातिशयेक=सर्वाधिक अतिशय वाले **महासपत्ति समन्विताय**=अष्ट महाप्रतिहार्यो के ऐश्वर्य से युक्त, **शस्याय**=सुशोभित, **त्रैलोक्य पूजिताय**=और त्रिभुवन पूज्य, **शान्ति देवाय**=देवाधिदेव शान्ति देव को, **नमो नमः**=बारम्बार नमस्कार करता हू।

सर्वामर सुसमूह स्वामिक, सपूजिताय निर्जिताय।
भुवनजन पालनोद्यत, तमाय सतत नमस्तस्मै।।4।।

शब्दार्थ–सर्वामर=समस्त देवो के, **सुसमूह**=श्रेष्ठ समूह के, **स्वामिक संपूजिताय**=स्वामियो से सपूजित, **निर्जिताय**=अजेय, **सततं**=निरन्तर, **भूवन जन पालनः**=भुवन के लोगो की पालना मे **उद्यतः**=तत्पर, **तमाय**=रहने वाले, **तस्मै नमः**=उन शान्ति नाथ देव को नमस्कार हो।

सर्वदुरितौघ नाशनकराय, सर्वाऽशिव प्रशमनाय।
दुष्टग्रह भूत पिशाच, शाकिनीनां प्रमथनाय।।5।।

शब्दार्थ–सर्वदुरितौघ=सारे पाप समूह को, **नाशन कराय**=नष्ट करने वाले **सर्वोऽशिव प्रशमनाय**=समस्त अकल्याण को विशेषत शमित करने वाले, **दुष्ट ग्रह भूत पिशाच, शाकिनीना**=दुष्ट ग्रह, भूत, पिशाच और

शाकिनियो का, प्रमथनाय=मन्थन करने वाले शान्ति देव को नमस्कार हो।

यस्येति नाममत्र, प्रधान-वाक्योपयोग कृत तोषा।
विजया कुरुते जनहित-मिति च, नुता नमत तं शान्तिम्।।6।।

शब्दार्थ-यस्येति नाम मत्र=जिनके नाम मत्र के, प्रधान वाक्योपयोग कृत=मुख्य वाक्य के प्रयोग से, तोषा=सतुष्ट होने वाली, विजया=विजया देवी, जन हित मिति च कुरुते=लोगो का हित साधने वाली है। इति=इसलिए नुता=स्तुतित, त शान्ति नमत=शान्ति नाथ को नमस्कार करो।

भवतु नमस्ते भगवती! विजये! सुजये! परापरैरजिते!
अपराजिते! जगत्या, जयतीति जयावहे! भगवति!।।7।।

शब्दार्थ-भगवती! विजये=हे भगवती! विजय, परापरै=आगे से आगे, अजिते=नही जीती जाने वाली, सुजये=श्रेष्ठ जयवत जगत्या=ससार मे, अपराजिते=अपराजित नाम वाली, जयति=जय को प्राप्त होती है। इत. भगवति=इससे आप, जयावहे=जय रूप हो, ते=उससे, नम भवतु =आपको नमस्कार होवे।

सर्वस्यापि च सघस्य, भद्र-कल्याण-मगल-प्रददे!
साधूना च सदा शिव, सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे जीया।।8।।

शब्दार्थ-सर्वस्यापि सघस्य=समस्त श्री सघ मे भी, भद्र कल्याण मगल प्रददे=हे भद्रे! कल्याण और मगल करने वाली, सदा साधूना च= ओर सदैव साधुओ को, शिव=कल्याण, सुतुष्टि=सतोष, पुष्टि प्रदे=पुष्टि देने वाली जीया=जीवित रहे।

भव्याना कृत सिद्धे! निर्वृत्ति, निर्वाण जननि सत्त्वानाम्।
अभय-प्रदान-निरते, नमोऽस्तु स्वस्ति प्रदे! तुभ्यम्।।9।।

शब्दार्थ-भव्याना=भव्यात्माओ को, कृत सिद्धे=मुक्त करने वाली, सत्त्वाना=सतोगुणी प्राणियो को, निर्वृत्ति=कर्म रहित बनाने वाली, निर्वाण जननि=मोक्ष प्रसूता, अभय प्रदान निरते=निर्भय बनाने मे लगी हुई, स्वस्ति प्रदे=कल्याण दात्री, तुभ्यं नमोऽस्तु=तुम्हे नमस्कार हो।

भक्ताना जन्तूना शुभावहे, नित्यमुद्यते देवि!।
सम्यग्दृष्टीना, घृति-रति-मति-बुद्धि प्रदानाय।।10।।

शब्दार्थ-भक्ताना जन्तूना=भक्त प्राणियो का, शुभावहे=शुभ करने वाली, सम्यग्दृष्टीनां=सम्यग्दृष्टिवान् को, घृति रति मति बुद्धि=धैर्य,

प्रेम, मति और बुद्धि प्रदानाय=देने मे, नित्य उद्यते=हमेशा तत्पर रहने वाली, देवि=हे शासन देवी! नमोऽस्तुते=आपको नमस्कार हो।

जिनशासन-निरतानां शांति नतानां च जगति जनतानाम्।
श्री सम्पत्त कीर्ति यशो वर्द्धिनि, जय देवि! विजयस्व।।11।।

शब्दार्थ–देवि!=हे देवी! जिन शासन निरतानां=जिन शासन की सेवा मे लगे, शांति नतानां=शान्ति हेतु विनम्र बने, जगति जनतानां=सासारिक प्राणियो के, श्री सम्पत्त कीर्ति यशो वर्द्धिनि=लक्ष्मी, सप, सम्पत्ति, यश और कीर्ति को बढाने वाली, जय विजयस्व=जय विजय को प्राप्त हो।

सलिलानल विष विषधरः, दुष्ट-ग्रह राज रोग रण-भयत।
राक्षस रिपु-गण मारी, चौरेति-श्वापदादिभ्य।।12।।

शब्दार्थ–सलिल=जल, अनल=अग्नि, विष=जहर, विषधर=सर्प, दुष्ट ग्रह=कष्टदायी क्षुद्र ग्रह, राज=राज्य का आतक रोग=व्याधि रण भयतः=सग्राम के भय से, राक्षस=राक्षस, रिपुगण=शत्रुओ के समूह, मारी=प्राणहारी प्लेग, चौरे=चोरो, श्वापदादिभ्य=और पशुओ आदि से रक्ष रक्ष=रक्षा करो, रक्षा करो।

अथ रक्ष रक्ष सुशिवं,
कुरु कुरु शाति च कुरु कुरु सदेति
तुष्टि कुरु कुरु पुष्टि कुरु कुरु,
स्वस्ति च कुरु कुरु त्वम्।।13।।

शब्दार्थ–अथ=इनसे त्व=तुम, रक्ष रक्ष=बचाओ, बचाओ सुशिवं=मगल, कुरु कुरु=करो, करो, सदा शाति कुरु कुरु=हर पल शाति करो, करो, तुष्टि कुरु कुरु=सतोष करो, करो, पुष्टि च=ओर पुष्टि, कुरु कुरु=करो-करो, स्वस्तिं च कुरु कुरु=और कल्याण करो-करो।

भगवति! गुणवति! शिव-शान्ति,
तुष्टि पुष्टि स्वस्तीह कुरु कुरु जनानां।
ओमिति नमो नमो ह्रॉं ह्रीँ ह्रू ह्र यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा।।14।।

शब्दार्थ–भगवति=हे मा भगवती, गुणवति=हे गुणशालिनी, इह=इस लोक मे, जनाना=मनुष्यो का, शिव=कुशल, शान्ति तुष्टि पुष्टि=शान्ति संतोष पोषण, स्वस्तिः=भलाई, कुरु कुरु=करो करो, इति=इस प्रकार ॐ=ओकार से युक्त, नमो नमो=नमस्कार की गई बीजाक्षर वाली सकट हरो।

एव यन्नामाक्षर पुरस्सरं, सस्तुता जयादेवी।
कुरुते शान्ति नमतां, नमो नम शान्तये तस्मै।।15।।

शब्दार्थ–एव=इस प्रकार, यत्=जो, नामाक्षर पुरस्सरं=नामाक्षर सहित, सस्तुता=स्तुति की गई, जया देवी=जया देवी, नमता=झुकने पर, शान्ति=शान्ति को, कुरूते=करती है। तस्मै शान्तये नमो नम=शान्ति के लिए उसे बारम्बार नमस्कार हो।

इति पूर्व सूरि दर्शित, मत्र पद, विदर्भित. स्तव शान्ते।
सलिलादि भय-विनाशी, शान्त्यादि करश्च भक्ति-मताम्।।16।।

शब्दार्थ–इति=इस प्रकार, पूर्व सूरि=पूर्वाचार्यो द्वारा, दर्शित=दर्शाये, मंत्रपद विगर्भित=मत्र पदो से युक्त, शान्तेस्तव=शान्थिनाथ भगवान् का स्तवन, सलिलादि=जलादि समस्त प्रकार के, भयविनाशी=भयो को नष्ट करने वाला, भक्तिमता=भक्तजनो को, शान्त्यादि=शान्ति आदि, कर=करने वाला है।

यश्चैन पठति सदा, श्रृणोति भावयति वा यथायोग।
स हि शान्ति पद यायात्, सूरि· श्रीमानदेवश्च।।17।।

शब्दार्थ–य· एन=जो इसको, सदा पठति=हमेशा पढता है। श्रृणोति च=और सुनता है, वा यथायोग=अथवा यथायोग्य शान्ति के अनुसार, भावयति=आचरण करता है। स=वह, हि=निश्चय ही, सूरि= आचार्य, श्रीमान=ऐश्वर्यवान् देव· च=और देव स्वरूप, शान्ति पद=शान्ति पद को, यायात्=प्राप्त होता है।

उपसर्गाः क्षय यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न वल्लय·
मन· प्रसन्नता-मेति, पूज्य माने जिनेश्वरे।।

अधुवे असासयम्मि ससारम्मि

यह ससार अध्रुव, अशाश्वत है। ओर दु खो से परिपूर्ण है। तू इसकी अनित्यता को समझ ओर ममत्व बन्धन से ऊपर उठकर परमात्मभाव की शाश्वतता मे लीन हो जा। वही एक ऐसा स्थान या भाव है जहॉ पर्याय परिवर्तन होते हुए भी सब कुछ स्वरूप मे ही रमण होता है।

गृह शान्ति-स्तोत्र

सन्ति सुधा वरिसकर, गुण रयणरोहणाचल।
सव्वन्नु मणोहर सोक्खधर, णमसामो सार आलय।।1।।
ॐ क्लीँ श्रीँ नेमी मज्झ, गेह सुह सिद्धिए परिआलउ।
क्रै आगच्छह सन्निहिं, सभवो, ॐ ह्रीँ श्रीँ सुहदो ।।2।।
पुत्त कलत्त गिहमूह, पाउ, ॐ क्लौँ ब्लौ ह्रॉं सुविहिणाहो।
धण मणि कुडुम्ब बाहू, अवउ सव्व विग्ध सहतीउ ।।3।।
ॐ ॐ श्रीँ धम्मप्पहू हियय कुच्छि रक्खउ निगेतणस्स।
दयउ दासाइ चलणे, ॐ क्रॉं श्रीँ सति किवालवो।।4।।
पिट्ठत्तो अणत जिणो ह्लॉं हूँ, ॐ श्रीँ वण्णावलि-गुत्तो।
ॐ श्रीँ क्लौँ मुणि सुव्वओ, पुरओ रक्ख रक्ख केवल विउलो।।5।।
ॐ ह्रीँ क्रॉं क्रीँ ब्लूँ ब्लॉं, नमिउड्ड ककुहत्तो पाउ गिह।
रक्ख रक्ख हूँ अजिओ, पायालेहि सुहणिहि कुणउ ।।6।।
चन्दत्तो निम्मलयरु, ॐ ह्रीँ चन्दप्पहू प्पयासे करउ।
ॐ ऐ श्रीँ क्लौँ क्लीँ ब्लौ, उसभो रक्खउ विदिसत्तो मे।।7।।
ॐ ह्रीँ सुपास जिणो, सास कास सूलस्स सव्वयाइ।
गुज्झ रोग कडुअत्तो पाउ, ॐ श्रॉं श्रीँ विमलजिणो।।8।।
ॐ ह्रीँ श्रीँ मल्लिप्पहू, सुह मल्लि कुसुमाइ विआसउ मे।
दुह दरिद्दं पणासउ, पणबीस य धणुमित्त देहो।।9।।
सचक्क परचक्क भय, छिदउ, ॐ क्रॉं क्रीँ अरो सुहदो य।
वद्धमाणो सव्वन्नू, ॐ ह्रीँ श्रीँ सिव लच्छि देउ।।10।।
सुगई पउमप्पहो मम, ह्रीँ श्रीँ क्लीँ वण्णसेणि सकलिओ।
विस विसहर सलिलाण, भय लुरन्तु अमर-महिओ।।11।।
कप्पतरु परिवाडिय, नन्दण वण सम मम गिह कुणन्तु।
वसुपुज्ज सीयल जिणा, ॐ ऐँ श्रीँ ह्रीँ ब्लूँ सव्वया।।12।।
सिज्जन्सो ॐ ऐँ श्रीँ, सप्प-मियारि सावय-गणे वारउ।
ॐ कुन्थू रिउ दलउ, देउ आरुग्ग दीहाउस मे।।13।।
डाईणी साईणीओ रिकिणी दुट्ठाउ कीलिया होन्तु।
ॐ हूँ फड् फड् साहा ह्रीँ ह्रॉं पास अभिनन्दणो य।।14।।
विहरमाण जिणा मुणी जक्खा लोगपाला गहा देवी।
सव्वे इमे पसन्ना, कप्पतरुव्व इच्छिय फलन्तु।।15।।

श्री गौतम स्वामी स्तोत्र

(आचार्य जिनप्रभ)

ॐ नमस्त्रि जगन्नेतुर्, वीरस्याग्रिम सूनवे।
समग्र लब्धि माणिक्य रोहणायेन्द्र भूतये।।1।।
पादाम्भोज भगवतो गौतमस्य नमस्यताम्।
वशी भवन्ति त्रैलोक्य सम्पदो विगता पद।।2।।
तव सिद्धस्य बुद्धस्य पादाम्भोज रज कण।
पिपर्ति कल्प शाखीव कामितानि तनू मताम्।।3।।
श्री गौतमाक्षीण महानसस्य तव कीर्तनात्।
सुवर्ण पुष्पा पृथिवी-मुच्चिनोति नरश्चिरम्।।4।।
अतिशेषेतरा धाम्ना भगवन्! भास्करी श्रियम्।
अति सौम्यतया चान्द्रीमहो ते भीम-कान्तता।।5।।
विजित्य ससार माया बीज मोह मही पतिम।
नर स्यान् मुक्तिराज श्री नायकरत्त्व प्रसादत।।6।।
द्वादशागी विधौ वेधा श्रीन्द्रादि सुर सेवित।
अगण्य पुण्य नैपुण्य तेषा साक्षात् कृतोऽसि यै।।7।।
नम स्वाहा पति ज्योतिस्-तिरस्कारित नुत्विषे।
श्री गोतम गुरो! तुभ्य वागीशाय महात्मने।।8।।
इति श्री गौतम! स्तोत्र, मत्र ते स्मरतोऽन्वहम्।
श्री जिनप्रभ सूरेस्त्व, भव सर्वार्थ सिद्धये।।9।।

चुप रह कर असत्य को सत्य करार दिया जाता है।
समय पर चुप रहकर सत्य से इन्कार किया जाता है।।
क्या हर जगह चुप्पी साधने वाले मानव द्वारा-
अधर्म अनीति का प्रश्रेय लिया व दिया नही जाता है?

संघ समर्पण भावना

सघ हमारा अविचल मगल, नन्दन वन सा महक रहा।
हम सव इसके फूल व कलिया, सुन्दरतम निज सघ अहा।।
वीर प्रभु के उपदेशो ने, सघ की महिमा गाई है।
सुर-नर वन्दन करे सघ को, सघ साधना भाई है।।
सघ समष्टि का हित करता, व्यष्टि उसमे शामिल है।
सघ हेतु निज स्वार्थ तजे जो, वही प्रशसा काबिल है।।
व्यक्तिवाद विद्वेष बढाता, सघवाद दे प्रेम सदा।
व्यक्तिभाव को छोड समर्पण, सघ भाव मे रहे सदा।।
व्यक्ति अकेला निर्बल होता, सघ सबल होता माने।
"सघे शक्ति कलौ युगे" की, सत्य भावना पहचाने।।
एक सूत्र कोई भी तोडे, रस्सी हस्ती को बाधे।
एक एक मिल बना सघ यह, दुस्सम्भव को भी साधे।।
सघ श्रेय मे आत्म श्रेय है, ऐसा दृढ विश्वास मेरा।
सघ मे मुझमे भेद न कोई, बोल रहा हर श्वास मेरा।।
सघ परम उपकारी हमको, सघ ने सम्यक् बोध दिया।
सघ न होता हम क्या होते, सघ ने हमको गोद लिया।।
शैशव, यौवन, वृद्धावस्था, सदा सघ उपकारी है।
भव सागर से तारण हारा, हम इसके आभारी हे।।
नगर चक्र, रथ, पद्म, चद्र, रवि, सागर, मेरु की उपमा।
सूत्र नन्दि मे सघ गौरव की, क्या कोई है कम महिमा।।
प्रेम सूत्र मे बधा सघ है, हिल-मिल आगे बढते है।
निन्दा, विकथा तज गुणिजन के, गुणगान मन मे धरते हे।।
दूर हटा छल, छद्म, अह को, सरल, सहज, सद्भाव धरे।
पर हित हेतु तज निज इच्छा, सहज सुकोमल भाव वरे।।
नाम अमर है उन वीरो का, जिनने सघ सेवा धारी।
अपना कुछ ना सोच, किया, सर्वस्व सघ पे बलिहारी।।
यही प्रार्थना वीर प्रभु से, ऐसी शक्ति दो हमको।
सघ सेवा मे झोके जीवन, और न कुछ सूझे हमको।।
सघ हेतु कुर्बान हमारा, तन-मन जीवन सारा हे।
सघ हमारा ईश्वर, हमको, सघ प्राण से प्यारा है।।

रचे भले सघ गौरव गाथा, उऋण न हो उपकारो से।।
अरिहत सिद्ध सुदेव हमारे, गुरु निर्ग्रन्थ मुनीश्वर है।
जिन भाषित सद् धर्म दयामय, नित्य यही अन्तर स्वर है।।
सद् गुरु आज्ञा ही प्रभु आज्ञा, इसमे भेद न कोई है।
शास्त्र-शास्त्र मे जगह-जगह पर, वीर वचन भी वो ही है।।
सघ नायक! सघ मालिक हम सब, साधु मार्ग अनुयायी है।
और नही दूजे हम कोई, बस तेरी परछाई है।।
रत्नत्रय शुद्ध पालन करके, तोडे कर्मो की कारा।
नाना गुण का धाम सघ है, घर-घर गूजे यह नारा।।
स्वार्थ-मान को छोड, सघ की, सेवा जो नर करता है।
इह-पर लौकिक कष्ट दूर कर, सौख्य सपदा वरता है।।

।। मेरी भावना ।।

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो।।1।।

विषयो की आशा नही जिनके, साम्य भाव धन रखते है।
निज पर के हित साधन मे जो, निशदिन तत्पर रहते है।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते है।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के, दुख समूह को हरते है।।2।।

रहे सदा सत्सग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे।
उन्ही जैसी चर्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नही सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करू।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, सतोषामृत पिया करू।।3।।

अहकार का भाव न रक्खू, नही किसी पर क्रोध करू।
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरू।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करू।
बने जहा तक इस जीवन मे औरो का उपकार करू।।4।।

मैत्री भाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे
दीन दुखी जीवो पर मेरे उर से करुणा-स्रोत

दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतो पर, क्षोभ नही मुझको आवे।
साम्य भाव रखू मै उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।5।।

गुणि जनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊ नही कृतघ्न कभी मै, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे।।6।।

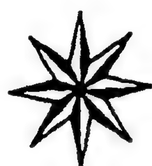
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षो तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही, भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।।7।।

होकर सुख मे मग्न न फूले, दु ख मे कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नही भय खावे।
रहे अडोल अकम्प निरतर, यह मन दृढतर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग मे, सहन-शीलता दिखलावे।।8।।

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी ना घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड जग, नित्य नये मगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे।।9।।

ईति भीति व्यापे नही जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मारी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फेल सर्व हित किया करे।।10।।

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय, कटुक, कठोर शब्द नही, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दु ख सकट सहा करे।।11।।



रत्नाकर पच्चीसी

शुभ केलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो।
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण गत काम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा ससार मे।
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार मे।।1।।

ससार दुख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो।
जय श्रीश! रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा अवतार हो।
हे वीतराग! विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए
क्याकि प्रभो! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए।।2।।

माता पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली।
करता नही क्या अज्ञ बालक, बाल्यवश लीलावली?
अपने हृदय के हाल को, त्यो ही यथोचित रीति से।
मै कह रहा हू आपके, आगे विनय से प्रीति से।।3।।

मैने नही जग मे कभी, कुछ दान दीनो को दिया।
मै सच्चरित भी हू नही, मैने नही तप भी किया।
शुभ भावना मेरी हुई, अब तक न इस ससार मे।
मै घूमता हू व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि धार मे।।4।।

क्रोधाग्नि मे रात-दिन हा, जल रहा हू हे प्रभो!
मै लोभ नामक साप से, काटा गया हू हे विभो!
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञान वश मे ग्रस्त हू।
किसी भाति हो स्मृत आप, माया-जाल मे व्यस्त हू।।5।।

लोकेश! पर-हित भी किया, मैने न दोनो लोक मे।
सुख-लेश भी फिर क्यो मुझे हो, झीकता हू शोक मे।
जग मे हमारे से नरो का, जन्म ही बस व्यर्थ है
मानो जिनेश्वर! वह भवो की, पूर्णता के अर्थ है।।6।।

प्रभु! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रस मे डूबकर, सद्वृत्त वह होता नही
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बडा बस है यही।।7।।

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैने लिया।
बहु काल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैने किया।
हा, खो गया वह भी विवश, मै नीद आलस के रहा।
बतलाईये, उसके लिए, रोऊँ प्रभो किसके यहॉ? ।।8।।

ससार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया।
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मो का दिया।
झगडा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी।
निर्लज्ज हो कितनी उडाऊँ, हे प्रभो! अपनी हसी।।9।।

परदोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ।
लखकर पराई नारियो को, हा नयन दूषित हुआ।
मन भी मलीन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भाति होगी लोक मे, मेरी भलाई हे प्रभो! ।।10।।

मैने बढाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी।
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दु ख राक्षसी।
हा! आपके सम्मुख्र उसे, अति लाज से प्रकटित किया।
सर्वज्ञ! हो सब जानते स्वयमेव ससृति की क्रिया।।11।।

अन्यान्य मन्त्रो से परम, परमेष्ठि-मत्र हटा दिया।
सच्छास्त्र-वाक्यो को, कुशास्त्रो से दबा मैने दिया।
विधि-उदय को करने वृथा, मैने कुदेवाश्रय लिया।
हे नाथ, या भ्रमवश अहित, मैने नही क्या-क्या किया? ।।12।।

हा! तज दिया मैने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको।
अज्ञान वश मैने किया, फिर देखिये किस पाप को?
वामाक्षियो के कुछ कटाक्षो, पर सदा मरता रहा।
उनके विलासो का हृदय, मे ध्यान मै धरता रहा।।13।।

लखकर चपल-दृग-युवतियो, क मुख मनोहर रसमयी।
जो मन-पटल पर राग भावो, की मलिनता बस गयी।
वह शास्त्र-निधि के शुद्ध जल, से भी न क्यो धोई गई?
बतलाईए, यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई।।14।।

मुझमे न अपने अग के, सौन्दर्य का आभास है।
मुझमे न गुणगण है विमल, मुझमे न कला विलास है।
प्रभुता न मुझमे स्वप्न को, भी चमकती है देखिये।
तो भी भरा हू गर्व से, मै मूढ हो किसके लिए? ।।15।।

हा। नित्य घटती आयु है, पर पापमति घटती नही।
आई बढौती पर विषय से, कामना हटती नही।
मे यत्न करता हू दवा, मे धर्म मै करता नही।
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हू, नाथ। बच सकता नही।।16।।

अघ-पुण्यको, भव-आत्मा को, मैने कभी माना नही,
हा, आप आगे है खडे, दीनानाथ से यद्यपि यही।
तो भी खलो के वाक्य को, मैने सुना कानो वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा।।17।।

सत्पात्र-पूजन देव पूजन, कुछ नही मैने किया,
मुनिधर्म श्रावकधर्म का भी, नही सविधि पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मै उसे खेता रहा,
मानो अकेला घोर वन मे, व्यर्थ ही रोता रहा।।18।।

प्रत्यक्ष सुखकर जिनमत से, प्रीति रही मेरी नही।
जिननाथ। मेरी देखिये, है मूढता भारी यही।
हा। कामधुक कल्प द्रुमादिक के यहा रहते हुए,
मेने गवाया जन्म को, धिक्कार दु ख सहते हुए।।19।।

मेने न रोका रोग दु ख, सभोग सुख देखा किया,
मन मे न माना मृत्यु भय, धन लाभ ही लेखा किया।
हा। मे अधम पुद्गल सुखो, का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन मे न मै डरता रहा।।20।।

सद्वृत्ति से मन मे न मैने, साधुता हा। साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैने न की कुछ अर्जिता।
चहु तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नही,
नर-जन्म पारस तुल्य निज, मैने गवाया व्यर्थ ही।।21।।

शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नही।
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो, सहना मुझे आता नही
अध्यात्म-विद्या है न मुझमे, है न कोई सत्कला,
फिर देव। कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला?।।22।।

सत्कर्म पहले जन्म मे, मैने किया कोई नही,
आशा नही जन्मान्य मे, उसको करूगा मै कही।
इस भाति का यदि हू जिनेश्वर, क्यो न मुझको कष्ट हो?
ससार मे फिर जन्म तीनो, क्यो न मेरे नष्ट हो?।।23।।

हे पूज्य! अपने चरित को, बहुभाति गाऊँ क्या वृथा?
कुछ भी नही तुमसे छिपी, है पापमय मेरी कथा।
क्योकि त्रिजग के रूप हो, तुम ईश हो, सर्वज्ञ हो,
प्रथ के प्रदर्शक हो, तुम्ही, मम चित्त के मर्मज्ञ हो।।24।।

दीनोद्धारक धीर आप सा, अन्य नही है,
कृपापात्र भी नाथ! न मुझसा, अपर कही है।
तो भी मागू नही धान्य धन, कभी भूल कर
अर्हन्! केवल बोधिरत्न, होवे मगलकर।।25।।

श्री रत्नाकर गुणगान यह
दुरित दुख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना
मगलमय सबको करे।।

इधर की बात सुन जो उधर कहता है।
उधर की बात सुन जो इधर कहता है।।
नारद विद्या का भेद खुल जाने पर क्या-
वह उनकी नजरो से गिरे बगर रह सकता हे।।

सम्प्रदाय के व्यामोह मे जकडा जा रहा है साधक।
उत्सूत्र भाषण करके भी अकडा जा रहा है साधक।।
अभिमान को ठेस पहँचाने वाली बाते सुनकर।
यज्ञ-आहुत्ति वत् भडका जा रहा है साधक।।

भेद ढका ही अच्छा खोलने मे कोई सार नही।
प्याज बंधा ही अच्छा छिलने मे कोई सार नही।।
सत्य और झूठ को परखो मौन रहकर तुम-
बात है समझने की यह बोलने मे कोई सार नही।।

